वैश्वीकृत समाज और 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास

(2000-2015)

VAISHVIKRIT SAMAJ AUR 21VIN SADI KE HINDI UPANYAAS

(2000-2015)

(GLOBALIZED SOCIETY AND 21ST CENTURY'S HINDI NOVEL)

पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक	शोधार्थी
डॉ.पूनम कुमारी	मंजू कुमारी

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई-दिल्ली -110067
2018

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 24/12/ **2018**

DECLARATION

I declare that the research work done in this Ph.D. Thesis entitle **"VAISHVIKRIT SAMAJ AUR 21VIN SADI KE HINDI UPANYAAS (2000-2015)" (GLOBALIZED SOCIETY AND 21st CENTURY'S HINDI NOVEL)** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Manju
MANJOO KUMARI
(RESEARCH SCHOLAR)

DR. PUNAM KUMARI
(SUPERVISOR)
CIL/SLL&CS, JNU
NEW DELHI-110067

24.12.18
PROF. GOBIND PRASAD
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS, JNU
NEW DELHI-110067

सादर

मम्मी-पापा

के

त्याग और संघर्षशील जीवन को…

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका: अपनी कहानी, अपनी जुबानी I-VII

अध्याय एक : वैश्वीकरण का उद्भव और विकास 1-31

1.1वैश्वीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.2-वैश्वीकरण का अर्थ और विकास

1.3- समाज, साहित्य और वैश्वीकरण

अध्याय दो : वैश्वीकृत समाज और 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास 32-61

2.1वैश्वीकृत पश्चिमी समाज की रूपरेखा

2.2वैश्वीकृत तीसरी दुनिया: भारतीय समाज

2.3उपन्यासों में चित्रित वैश्वीकृत सामाजिक परिदृश्य

अध्याय तीन : 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: बाजार और समाज 62-137

3.1उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्तमान समाज पर प्रभाव
3.2 शिक्षा का बाजारीकरण और उसका समाज पर प्रभाव
3.3 ग्रामीण समाज का ‘स्थानीयकरण’
3.4 शराब, सिगरेट और सेक्स की ओर आकर्षित नव युवा पीढ़ी
3.5 आदिवासी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का दोहन
3.6 मध्य वर्गीय समाज का बदलता यथार्थ

अध्याय चार : **21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: सूचना प्रौद्योगिकी और समाज** **138-210**

4.1पारम्परिक मानवीय मूल्यों का विघटन और नये मूल्यों का प्रवेश
4.2सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव: स्त्री और विज्ञापन
4.3दलित समाज की अस्मिता का प्रश्न
4.4विज्ञान की प्रगति और मानवीय संवेदना का ह्रास
4.5बदलते सामाजिक मूल्य और टूटती सामाजिक संस्थागत नैतिकता (विवाह संस्था के विशेष संदर्भ में)

अध्याय पाँच : **हिन्दी उपन्यासों की भाषा और वैश्विक समाज** **211-241**

5.1भाषा की संप्रेषणीयता और वैश्विक समाज
5.2चयनित उपन्यासों में अंग्रेजी और स्थानीय बोलियों का हस्तक्षेप
5.3इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा और साहित्य

उपसंहार **242-254**

वैश्वीकृत समाज का आभासी पटल

संदर्भ ग्रन्थ **255-271**

भूमिका

अपनी कहानी, अपनी जुबानी

वैश्वीकरण का मुख्य केन्द्र 'भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास' और पूरी दुनिया में बिना किसी रुकावट के 'सहज व्यापार प्रवाह' से सम्बन्धित है। वैश्वीकरण के पहले बाजार केवल मानव-जीवन से सम्बन्धित सीमित चीजों के लिए आवश्यक था और उस समय का बाजार केवल 'बाजार' की श्रेणी में आता था। जहाँ से सीमित साधनों की पूर्ति होती रही है, लेकिन वहीं बाजार, आज बाजारीकरण की संज्ञा धारण कर चुका है, अब हम नहीं, वह हमें बताने लगा है कि क्या हमारे लिए जरूरी है और क्या नहीं। आज 21वीं सदी में बाजार हम पर नहीं, हम बाजार पर आश्रित होते जा रहे हैं। हमारी पसन्द न पसन्द सब बाजार तय कर रहा है। बाजार एक 'आर्थिक विचार' बना हुआ है, जिसका उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना है। उसे किसी के लाभ-हानि की कोई परवाह नहीं है। वर्तमान समाज वैश्वीकृत समाज का रूप ले चुका है, उसके बिना जीवन अब सम्भव नहीं रहा। आज का व्यक्ति अपने समाज और परिवार में अपने विचारों के साथ जितना स्वतन्त्र हुआ है, उससे कहीं अधिक गुलाम। यह गुलामी कैसे समाज पर हावी होती जा रही है? उसे सूक्ष्मता से समझने का एक मात्र जरिया साहित्य है। साहित्य के माध्यम से समाज की स्थिति और उसके द्वारा समाज व सामाजिक परिदृश्य को समझने में आसानी होती है।

आदिकाल से लेकर अब तक के समाज को जानने या समझने के लिए साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वैश्वीकरण के इस दौर में अब किसी भी राष्ट्र के बीच कोई सीमा-रेखा नहीं रह गई है, और न ही किसी तरह के आवागमन में अवरोध। जिसके परिणाम स्वरूप पूँजी, श्रम, ज्ञान, विचार और टेक्नोलॉजी का एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में बिना किसी अवरोध के (फ्री फ्लो रूप में) पूँजी व व्यापार को बढ़ावा मिल रहा है। विकासशील देश बहुत बड़ी मात्रा में विकसित देशों की वस्तुओं के खरीददार बने हुए हैं। विकास

के नाम पर वह अपनी वस्तुओं के माध्यम से मुनाफा कमा रहे हैं। बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से समाज व सामाजिक परिदृश्य काफी बदला है, और काफी तेज गति से बदलता जा रहा है। आज एक ध्रुवीय राष्ट्र की परिकल्पना से भाषा और संस्कृति पर 'अस्तित्व और पहचान' को बचाने का संकट छाया हुआ है। वैश्वीकरण का प्रभाव सामाजिक संरचनाओं जैसे- रीति-रिवाज, शिक्षा और वर्गों (समुदाय) पर अलग-अलग रूपों में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव छोड़ रहा है। इसलिए वैश्वीकरण के इस फार्मूले को भारतीय समाज के सभी वर्गों पर एक रूप में लागू नहीं किया जा सकता है। बदलते समय और समाज की गतिविधियों ने पूरे समाज को प्रभावित किया है। वह चाहे आर्थिक रूप से हो या राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर ही क्यों न हो। साहित्य समाज का दस्तावेज होता है। जिसके माध्यम से समाज में घटित होने वाली आहट को आसानी से समझा जा सकता है। प्रेमचंद का साहित्य और उनके साहित्य जगत में उपस्थित समाज और वर्तमान समय 21वीं सदी का समाज बहुत बदल चुका है। प्रेमचन्द के साहित्य में समाज की यथार्थता का दर्शन बहुत ही सहज रूपों में होता है। लेकिन 21वीं सदी का समाज बहुत बदल चुका है जिसका मुख्य कारण सहज रूप में सभी चीजों का मार्केटिंग अर्थात बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी पर समाज के लोगों का आश्रित होना है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'वैश्वीकृत समाज और 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास (2000-2015) विषय से सम्बंधित है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पाँच अध्याय में विभाजित है। पहला अध्याय- 'वैश्वीकरण का उद्भव और विकास' से सम्बंधित है। इसके अन्तर्गत मुख्यत: तीन उप अध्याय हैं- 1.1 वैश्वीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, 1.2-वैश्वीकरण का अर्थ और विकास, 1.3-समाज, साहित्य और वैश्वीकरण । जिसमें वैश्वीकरण शब्द के उद्भव और विकास तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण के साथ साहित्य, समाज एवं वैश्वीकरण के अंतर्संबंध और प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरा अध्याय: 'वैश्वीकृत समाज और 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास' में भारतीय समाज के बदलते स्वरूप को दो भागों में बांटकर अध्ययन किया गया। जिसमें वैश्वीकरण (1990-91) के पहले का समाज और वैश्वीकरण के बाद वर्तमान समाज का बदलता स्वरूप व वैश्वीकृत समाज (Globalized Society) का अध्ययन किया गया। इसमें मुख्यतः तीन उप-अध्याय हैं। 2.1- वैश्वीकृत पश्चिमी समाज का विकास, 2.2-वैश्वीकृत तीसरी दुनिया: भारतीय समाज, 2.3-उपन्यासों में चित्रित वैश्वीकृत सामाजिक परिदृश्य' जैसे तीसरे उप अध्याय में 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वैश्वीकृत समाज की एक रूपरेखा प्रस्तुत किया गया है।

तीसरा अध्याय: '21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: बाजार और समाज' है, जिसमें मुख्यत: छ: उप-अध्याय है 3.1-उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्तमान समाज पर प्रभाव, 3.2 शिक्षा का बाजारीकरण और उसका समाज पर प्रभाव 3.3-ग्रामीण समाज का 'स्थानीयकरण', 3.4-शराब, सिगरेट और सेक्स की ओर आकर्षित नव-युवा पीढ़ी, 3.5-आदिवासी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का दोहन, 3.6-मध्य वर्गीय समाज का बदलता यथार्थ में बाजारवादी संस्कृति का समाज पर पड़ते प्रभाव व सूचना-प्रौद्योगिकी का समाज के विकास में कितना योगदान तथा अभिशाप सिद्ध हो रहा है। आभासी वास्तविक दुनिया हमारे वास्तविक पर्यावरण को कहाँ तक प्रभावित किया और आभासी दुनिया कैसे आकर्षक का केन्द्र बनी हुई है। समाज और पर्यावरण के लिए सूचना-प्रौद्योगिकी उपयोगी है और नुकसानदेह भी। इन सभी बातों पर विचार किया गया है। वैश्वीकरण के विकल्प, समस्याओं एवं चुनौतियों पर भी गहन दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है।

चौथा अध्याय- '21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: सूचना प्रौद्योगिकी और समाज' जिनमें मुख्यत: पांच उप-अध्याय शामिल है। 4.1-पारम्परिक मानवीय मूल्यों का विघटन और नये मूल्यों का प्रवेश 4.2-सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव: स्त्री और विज्ञापन, 4.3-दलित समाज की अस्मिता का प्रश्न, 4.4-

विज्ञान की प्रगति और मानवीय संवेदना का ह्रास, 4.5- बदलते सामाजिक मूल्य और टूटती सामाजिक संस्था की नैतिकता आदि का विश्लेषण किया गया है। जिसमें वैश्वीकरण के दौर में समाज व सामाजिक ढ़ाचे पर बाजार व उन्मुक्त बाजारी संस्कृति के प्रभाव पड़ता है। पाँचवा अध्याय: 'हिन्दी उपन्यासों की भाषा और वैश्विक समाज' विषय से सम्बंधित है जिसमें मुख्यत: तीन उप-अध्याय शामिल है। पहला 5.1- भाषा की संप्रेषणीयता और वैश्विक समाज, 5.2-चयनित उपन्यासों में अंग्रेजी और स्थानीय बोलियों का हस्तक्षेप 5.3-इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा और साहित्य। 21वीं सदी के उपन्यासों का ढाँचागत रूपों में भी काफी बदलाव हुआ है। और उपन्यासों की भाषिक संरचना वर्तमान समय और समाज के यथार्थ को कैसे उजागर करती है? विभिन्न असंगत बिम्बों के माध्यम से सम्प्रेषण को किस तरह सहज और संप्रेषणीय बनाती है? इन सभी सन्दर्भों को ध्यान में रखकर अध्ययन किया गया है।

सर्वप्रथम उस अदृश्य सत्ता प्रकृति रूपी ईश्वर को नमन... ! मैं अपने पूर्व-शोध-निर्देशक प्रो. रामबक्ष जी के प्रति बहुत–बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने विषय चुनाव से लेकर शोध-कार्य के दौरान सुझाव ही नहीं दिए वरन विषय सामग्री भी उपलब्ध करायी। सर का सहयोग और समय-समय पर उनका मार्गदर्शन शोध-कार्य को उचित दिशा देता रहा। शोध-निर्देशिक डॉ. पूनम कुमारी जी का बहुत-बहुत आभार। मैंम के आत्मीय सहयोग और सहजता की वजह से शोध कार्य में हमेशा रोचकता और कुछ नया करते रहने की जिज्ञासा बनी रही। शोध-कार्य के दौरान मैंम का स्नेह, आशीर्वाद और मार्गदर्शन बराबर मिलता रहा। शोध-कार्य के दौरान आने वाली मेरी बहुत सी दिक्कतों और जिज्ञासाओं का समाधान न हो पाता अगर दोनों गुरुवर का मुझे बराबर सहयोग नहीं मिला होता। दोनों गुरुवर से मिले सहयोग, उनसे मिले स्नेह और आशीर्वाद को शब्दों में बाँध पाना तो सम्भव नहीं है, इसलिए बस इतना ही कहना चाहूंगी दोनों ही गुरुजनों के प्रति मेरी श्रद्धा अर्पित है।

शोध-कार्य के दौरान मेरी कुछ उपन्यासकारों से भी बातचीत हुई जिससे मेरी बहुत सी जिज्ञासाओं का समाधान हो सका। उनका बहुत-बहुत आभार। प्रिय भैया सुभाषचन्द्र और निधि भाभी का बहुत-बहुत आभार। उन्होंने पढ़ाई को गंभीरता से लेने में हमेशा मेरा हौसला बनाये रखा और अपने प्यार और डॉट से हमेशा दिशानिर्देश देते रहें। भैया के ही निर्देशन में, आज मैं यहाँ तक पहुँच सकी हूँ। भैया-भाभी के लिए मैं बस इतना ही कहना चाहूंगी कि वे मेरे आदर्श हैं, और हमेशा रहेंगे। छोटे भाई–प्रदीप, संदीप, प्यारी बहन पूजा और प्यारी भतीजी निभा का प्यार हमेशा बना रहा। छोटे हमेशा मेरी हिम्मत बने रहें, जिन्हें ध्यान में रखकर मैं हमेशा संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती रही। शोध–कार्य के दौरान इनसे बातें करके हमेशा सुकून और ताजगी मिलती रही। इन्हें बहुत सारा स्नेह!

शोध-कार्य के दौरान दोस्तों की भूमिका सराहनीय रही। अगर इनका सहयोग न मिलता तो शोध-कार्य के दौरान अकेले ही बहुत सी कठिनाइयों से जूझना पड़ता। विषय सामग्री से लेकर शोध-कार्य के दौरान आने वाली हर-एक समस्याओं को दूर करने में अपार धैर्य रखने वाले दोस्तों में- ओम प्रकाश, धीरेन्द्र, अपर्णा, जगदीश, कौशल, दिव्यानन्द, ओम प्रकाश मीना, प्रीति, रामानुज, अशोक, रेणु, सोनम, कंचन, जैनी, शिव, आकृति, रक्षा, सीमा, वर्षा, अलका, का योगदान और स्नेह हमेशा बना रहा, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। दिव्यानन्द, जगदीश, अशोक और जूनियर्स में शिवानी और खुशबू सभी ने मिलकर वर्तनी आदि सुधार हेतु अपना बहुमूल्य योगदान दिया तथा जमा करने के दौरान भी सहयोगी रहें। मैं इन सभी का हृदय से आभारी हूँ।

कैम्पस से दूर अपनी पढ़ाई और जॉब में काफी व्यस्त होने पर भी शोध-कार्य के दौरान साथी अनिल का सानिद्ध्य बराबर मिलता रहा। जिससे शोध–कार्य के दौरान आई बहुत सी दिक्कतों का समाधान सहजता से हो सका। उनका साथ और उनके होने का एहसास हमेशा उर्जावान तथा प्रगति पथ पर आगे बढ़ने की तरफ उत्साहवर्द्धन करता रहा है। शोध कार्य के अन्तिम समय के दौरान जुड़ रहे रिश्तें और नये

परिवार के सदस्यों में माँ, पिताजी का आशीर्वाद, गुलाब भैया, सरिता भाभी और अनुज महेश का स्नेह हमेशा सकारात्मकता प्रदान करता है | मैं सभी के प्रति तहे-दिल से आभारी हूँ।

जे.एन.यू. विश्वविद्यालय और 'भारतीय भाषा केंद्र' के सभी आदरणीय गुरुजनों में प्रोफ़ेसर रामबक्ष, प्रोफेसर गोबिंद प्रसाद, प्रोफेसर वीर भारत तलवार, प्रोफेसर देवेन्द्र चौबे, डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा, डॉ. रामचंद्र, डॉ. ओम प्रकाश सिंह, डॉ. गंगा सहाय मीणा, प्रो. देव शंकर नवीन सभी से पढ़ने का मौका मिला। जिससे मेरी तार्किक समझ विकसित हो सकी। स्कूल से लेकर बी. ए., एम. ए, एम. फिल. और आज पीएच.डी. तक का सफर तय करने में अभी तक के मेरे सभी गुरुजनों में गुरु रामचरण जी, वंश बहादुर सिंह, डॉ. उमाशंकर सिंह, डॉ. रमाशंकर सिंह, डॉ. मदनमोहन श्रीवास्तव, ज्ञानस्वरूप श्रीवास्तव, और डॉ. नगेन्द्रनाथ यादव सर की भूमिका मेरे जीवन में बहुत अहम स्थान रखती है। आज मैं जिस मुकाम पर पहुँच पायी हूँ, सभी का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मेरे जीवन को नयी दिशा देने और सार्थक जीवन की ओर अग्रसर करने में अद्वितीय योगदान रहा है। सभी गुरुजनों की मैं आजीवन आभारी रहूँगी।

मैं 'भारतीय भाषा केंद्र' के कर्मचारी रावत जी, रमेश भैया का तहे-दिल से आभारी हूँ। जिन्होंने हमेशा हमारे द्वारा बार-बार परेशान किए जाने पर भी सदैव धैर्य का परिचय देते हुए हमारी हर एक ऑफिस सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सहजता से किया। उसका बहुत-बहुत आभार!

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय (JNU) ने मुझे एक अलग तथा श्रेष्ठ पहचान दी है। जिसके 'आन बान शान' को मैं हमेशा बनाए रखने का प्रयास करूँगी । जे.एन.यू. में पढ़ाई करना मेरा सपना था। शोध सम्बन्धी विचार की समझ यही विकसित हुई, और आज पीएच.डी तक का सफर मेरे जीवन के लिए बहुमूल्य वरदान रहा। दूसरे शब्दों में अगर कहूँ तो जे.एन.यू. न होता तो आज मैं जहाँ हूँ, जिस 'पद' पर हूँ, वहाँ तक पहुँच पाना सहज सम्भव नहीं होता। शोध कार्य के दौरान जे.एन.यू. साइबर लाईब्रेरी से इंटरनेट की दुनिया में वैश्वीकृत समाज से सम्बन्धित बहुत सारी सामग्री उपलब्ध हो गई। जिससे मुझे

ज्यादा लाईब्रेरी का चक्कर नहीं लगाना पड़ा। इंटरनेट के माध्यम से विषय से सम्बन्धित काफी सामग्री-हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषा में उपलब्ध हैं। हिन्दी भाषा में ज्ञान का भण्डार इंटरनेट की दुनिया में उपलब्ध हो चुका। जिसके माध्यम से हिन्दी भाषा का ज्ञान विश्व स्तर पर पहुँच रहा है।

सीनियर्स में पूनम दी, रीता दी, योगेश भैया, रजनीश भैया, राजकुमार भैया, अनुरुद्ध भैया का और जूनियर्स में कंचन, बृजेश और शुभ्रा काफी करीब और सहयोगी रहें, जिनका स्नेह अनमोल है मेरे लिए। सभी का समय-समय पर दिशानिर्देश शोध-कार्य को सफल बनाने में सार्थक रहा। जिन्होंने भी मेरे संघर्षपूर्ण जीवन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया है, उन सभी दोस्त, सहपाठियों और सहयोगियों का बहुत-बहुत आभार। सभी सहयोगियों का स्नेह शोध-कार्य के दौरान हमेशा नयी उमंग और ताजगी प्रदान करता रहा। मैं सभी सहयोगियों की पुन: तहे-दिल से आभारी हूँ।

मंजू कुमारी
गोदावरी हॉस्टल, रूम. न. 265
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

अध्याय–एक

पहला अध्याय: वैश्वीकरण का उद्भव और विकास

1.1वैश्वीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
1.2-वैश्वीकरण का अर्थ और विकास
1.3-समाज, साहित्य और वैश्वीकरण

वैश्वीकरण का उद्भव और विकास

इतिहास में यह पहली बार हो रहा है जब स्थानीय और वैश्वीय (लोकल और ग्लोबल) लोग एक कड़ी में जुड़ रहे हैं। यह सब कुछ भारतीय समाज में पिछले दस-बीस वर्षों की ही देन है। वैश्वीकरण एक विचारधारा का नाम है जिसने आर्थिक जगत में प्रवेश कर हमारे आर्थिक जगत को प्रभावित करने के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक जगत को भी प्रभावित किया है। जिसकी वजह से भारतीय परिवेश का पूरा तंत्र प्रभावित हुआ है। वैश्वीकरण का मुख्य केन्द्र 'भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास' और पूरी दुनिया में बिना किसी रुकावट के 'सहज व्यापार प्रवाह' से सम्बन्धित है। जहाँ तक बाज़ार का प्रश्न है, वैश्वीकरण के पहले बाजार केवल मानव-जीवन से सम्बन्धित सीमित चीजों के लिए आवश्यक था और उस समय का बाजार केवल 'बाजार' की श्रेणी में आता था। जहाँ से सीमित साधनों की पूर्ति होती रही है, लेकिन वहीं बाजार, आज बाजारीकरण की संज्ञा धारण कर चुका है। संचार साधनों में वृद्धि सूचना और आवागमन के साधनों के तीव्र विकास की ही देन है कि अब हम नहीं, वह हमें बताने लगा है कि क्या हमारे लिए जरूरी है और क्या नहीं! आज 21वीं सदी में बाजार हम पर नहीं, हम बाजार पर आश्रित होते जा रहें है। हमारी पसन्द न पसन्द सब बाजार तय कर रहा है। बाजार एक 'आर्थिक विचार' बना हुआ है, जिसका उद्देश्य समाज में विकास दर को तीव्र करना है।

आज का व्यक्ति अपने समाज और परिवार में अपने विचारों के साथ जितना स्वतन्त्र हुआ है, उससे कहीं अधिक टेक्नोलॉजी पर आश्रित। समाज में हो रहे परिवर्तन को सूक्ष्मता से समझने का एक मात्र जरिया साहित्य है। साहित्य के माध्यम से समाज की स्थिति और उसके द्वारा समाज व सामाजिक परिदृश्य को समझने में आसानी होगी। बाजार और तकनीकी यंत्रों के माध्यम से समाज व सामाजिक परिदृश्य काफी बदल चुका है, और काफी तेज गति से बदलता जा रहा है। आज एक ध्रुवीय राष्ट्र की

परिकल्पना से भाषा और संस्कृति पर अस्तित्व को बचाने का संकट छाया हुआ है। वैश्वीकरण का प्रभाव सामाजिक संरचनाओं जैसे रीति-रिवाज, शिक्षा और वर्गों (समुदाय) पर अलग-अलग रूपों में सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव छोड़ रहा है। वैश्वीकरण के इस फार्मूले को भारतीय समाज के सभी वर्गों पर एक रूप में लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिए यहाँ सर्वप्रथम वैश्वीकरण को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक हो जाता है।

1.1-वैश्वीकरण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैश्वीकरण एक बहु आयामी शब्द है, इसे किसी एक खाके में बांधकर समझा नहीं जा सकता है। वैश्वीकरण भारतीय अर्थ-जगत में प्रवेश कर समाज, संस्कृति, राजनीति और अर्थवयवस्था आदि विश्व स्तर पर सभी को प्रभावित कर रहा है। वैश्वीकरण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की बात करें तो वैश्वीकरण के प्रारम्भ के बारे में सही-सही कह पाना संभव नहीं है। लेकिन हम उस समय के कुछ सामाजिक परिवर्तनों को ध्यान में रखकर इसके उद्भव और विकास की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। अधिकांश लोगों का मानना है कि वैश्वीकरण का जन्म दूसरी दुनिया यानी अमेरिका के साथ हुआ। “मार्क्स, इमानुल, वैलेंस्टीन, रोलेंड, राबर्टसन जैसे विचारक इसकी शुरुआत 1500AD से मानते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि वैश्वीकरण का इतिहास पश्चिम के इतिहास से प्रारम्भ होता है। लेकिन यह विश्व का इतिहास उन बिन्दुओं से मेल नहीं खाता जो वर्तमान में है। कुछ और लोगों का मानना है कि वैश्वीकरण की अवधारणा ठीक वैसे ही है जैसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की भावना। लेकिन ऐसा नहीं है हमें यहाँ पर समझने की जरुरत है कि दोनों शब्दों की प्रकृति और अवधारणा में जमीन-आसमान का अंतर है। वैश्वीकरण का सीधा और साफ़ मतलब है कि पूरी दुनिया एक विशाल बाजार है और सारे लोग उपभोक्ता, जिनका मुख्य उद्देश्य समाज के लोगों से ज्यादा से ज्यादा मुनाफे कमाना है। उनसे प्रेम करना

या उनकी परवाह करना इसके उद्देश्य में शामिल नहीं है। क्योंकि दोनों शब्द के स्वरूप और स्वभाव में अंतर है।

वैश्वीकरण का पहला दौर वह था- जो सोलहवीं सदी से बीसवीं सदी के मध्य तक चला, जिसका नेता 'यूरोप' था और विशेष रूप से 'इंग्लैण्ड'। उस समय भूमण्डलीकरण का मतलब था सारी दुनिया को अपना उपनिवेश बनाना और उपनिवेश बनाकर उनसे तरह-तरह के सम्बन्ध स्थापित करना। इस दौर के लोगों का यह नारा था सारी दुनिया को सभ्य बनाना अर्थात सभ्य बनाने के नाम पर गुलामी का प्रचार-प्रसार और अभियान पहले दौर के भूमण्डलीकरण का लक्ष्य था।

कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि वैश्वीकरण एक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जो पूँजीवाद, अमेरिकीकरण, और आधुनिकता से होते हुए उत्तर-आधुनिकता की विचारधारा से सम्बंधित है। यह वस्तुओं के साथ-साथ विचारधारा पर भी कब्ज़ा करने की एक कोशिश है। "अमेरिकी पत्रकार टॉमस फीडमैंन का भी मानना है कि "हम अमेरिकी द्रुतगामी विश्व के देवदूत, मुक्त बाजार के पैगम्बर और उच्च प्रौद्योगिकी के महाधर्माचार्य हैं हम चाहते हैं कि सारी दुनिया हमारी अनुसरण करें और जनतांत्रिक एवं पूँजीवादी बनें। हर पात्र में एक वेबसाइट, हर होंठ से लगी पेप्सी की बोतल, हर कंप्यूटर में माइक्रोसॉफ्ट विंडोज हो और प्रत्येक व्यक्ति हर जगह अपनी गाडी में स्वयं प्रेट्रोल डाले।"[2] प्रारम्भिक कुछ बिन्दुओं और समाज में घटित-घटनाओं के माध्यम से हम वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझ सकते हैं।

- "पूँजीवाद का उदय वैश्वीकरण का उदय है। यूरोपीय पूँजीवाद सोलहवीं शताब्दी में जन्मा। सन 1519 से 1521 के बीच में इसने विश्वव्यापी आधार पकड़ लिए थे।
- 19 वीं सदी में विश्व व्यापार और निवेश का बहुत बड़ा विस्तार हुआ।

- सन 1945 यानि द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद पूँजीवाद का बहुत बड़ा विस्तार हुआ। बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठान, जिनकी उत्पादन और स्थानीय विचारों पर अधिकार करने की भावना थी, तेजी से बढे।
- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशवाद की मुक्ति, नये राष्ट्रों का जन्म, नयी विश्व व्यवस्थाओं के नये आयाम, हवाई यात्राओं का प्रारम्भ और संचार साधनों का विस्तार तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की व्यापकता भी वैश्वीकरण का कारण बनीं।
- 'बर्लिन का पतन' और 'सोवियत संघ रुस' के विघटन ने समाजवाद की धारणा को समाप्त कर दिया और पूँजीवाद विजयी रहा।
- इंटरनेट के विस्तार ने संगठन को और अधिक गति दी, व्यापार को विश्व व्यापी बनाया।"[3] आदि मुख्य कारणों में से कुछ कारण हैं जिसने वैश्वीकरण की विचारधारा को तथा उसकी प्रक्रिया को समझा जा सकता है। समाज में घटित होने वाली इन सभी घटनाओं के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से इंकार नहीं किया जा सकता है।

दूसरा दौर सन 1945 यानी 'द्वितीय विश्व युद्ध' के बाद शुरू होता है। यह बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से आज तक चल रहा है। इस दौर का नेता 'अमेरिका' है। यह आज का वैश्वीकरण है भारतीय संदर्भ में देखा जाय तो 'वैश्वीकृत समाज' इसी की देन है। यहाँ पर 'वैश्वीकृत समाज' से अभिप्राय समाज का वह विकसित या कहे परिवर्तित रूप जिसमें सामाजिक मूल्यों से इतर पूंजीवादी मूल्यों को स्थापित करने और समाज में बाजारीकृत संस्कृति अर्थात उपभोक्तावादी संस्कृति को स्थापित करने की पुरजोर कोशिश में गतिमान है। वर्तमान भूमण्डलीकरण वास्तव में पूँजीवाद का भूमण्डलीकरण है। सारी दुनिया पर पूँजीवाद का विस्तार और विकास ही भूमण्डलीकरण है। भूमण्डलीकरण के तीन पक्ष हैं।

आर्थिक प्रक्रिया: इसके अंतर्गत मूलत: पूँजीवादी साम्राज्य का विस्तार करना है। "आर्थिक प्रक्रिया के रूप में भूमण्डलीकरण पूँजीवाद के विश्व व्यापी प्रसार और प्रभुत्व का दूसरा नाम है। इसमें आवारा

पूँजी और बाजारवाद की तानाशाही चल रही है। इसमें आर्थिक को सामाजिक से और सामाजिक को मानवीय से अलग कर दिया गया है। और इस बीच उत्तर-आधुनिकतावादी सामाजिक और मानवीय चेतना की मौत की घोषणाएं कर रहे हैं।” आगे इसी बात को स्पष्ट करते हुए कार्लमार्क्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र में लिखा था कि ‘पूँजीपति वर्ग’ सभी राष्ट्रों को विनाश के करीब लाकर पूंजीवादी उत्पादन पद्धति को अपनाने के लिए मजबूर करता है।

राजनीतिक प्रक्रिया: इसके अंतर्गत अमेरिकी राजनीतिक दृष्टि, पद्धति एवं व्यवहार को सारी दुनिया में फैलाना इसका प्रयोजन है। भूमण्डलीकरण राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में संसार के अमेरिकीकरण का प्रयास है। सन 1947 में अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कहा था कि ‘अमेरिकी व्यवस्था अमेरिका में भी तभी तक जीवित रह सकती है जब वह विश्व की व्यवस्था बने।’ अब उसी तर्ज पर भूमण्डलीकरण के उद्देश्य को पूरा किया जा रहा है। मतलब सारी दुनिया का अमेरिकीकरण किया जा रहा है। अमेरिकी व्यवस्था को विश्व व्यवस्था बनाने की कोशिश की जा रही है। और उसे ही विश्व व्यवस्था कहा जा रहा है। सन 1999 के भारत में अमेरिका के विदेश मन्त्री ने भी कहा ‘भूमण्डलीकरण अमेरिकी आधिपत्य का दूसरा नाम है।’ समाज में आधुनिक विचारधारा के बाद उत्तर-आधुनिकता का विचार उत्तर, अंत और मौत की घोषणा करता हुआ भूमण्डलीकरण के समर्थन हेतु विचारधारा के रूप में सामने आया। उत्तर-आधुनिकता में अनेक विचारों, विचारधाराओं और वास्तविकता के उत्तर, अंत और लेखक की मृत्यु की घोषणा की जा रही है।”[4]

वैश्वीकरण के ऐतिहासिक स्वरूप को जानने के साथ-साथ वैश्वीकरण के वाहक आधुनिकता तथा उत्तर-आधुनिकता को समझना और विश्लेषित करना आवश्यक हो जाता है। जिसके माध्यम से वैश्वीकरण पूरी दुनिया में अहम रोल अदा कर रहा है। “भूमण्डलीकरण स्वयं आधुनिकता का तार्किक परिमाण है। क्योंकि आधुनिकता यह पश्चिम में उत्पन्न हुई, अंतर्निष्ठ रूप से सार्वभौमकारी प्रकृति की है। इसका विज्ञान कोई सीमा नहीं जानता है; इसकी टेक्नोलॉजी प्रादेशिक सीमाओं के पार जाती है; और इसकी राजनीतिक-सांस्कृतिक आकांक्षाओं यानी समाज के लोकतांत्रीकरण और व्यक्ति की स्वायत्रता में

हमारी साझा आकांक्षा बनने की प्रवृत्ति है।"[5] आधुनिकता का दूसरा रूप उद्योगवाद रहा है। इसके द्वारा यह कोशिश की गई समाज में पृथ्वी पर व्याप्त जड़ या निर्जीव से ऊर्जा उत्पन्न करके उत्पादन किया जाय जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन यंत्रीकृत होने के कारण समाज में आधुनिकता का प्रवेश हुआ। जिससे बाजार के स्वरूप में परिवर्तन के साथ विस्तार होता गया। जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष दोनों रूपों से तत्कालीन समाज व्यवस्था पर पड़ना स्वाभाविक था।

आधुनिकता के विचारक गिडिन्स का मानना है कि आधुनिकता के पूर्व का समाज अर्थात परंपरागत समाज में **समय** और **स्थान** का बहुत महत्व था। आधुनिक समाज में 'समय और स्थान' का आधुनिक आवागमन के साधनों और संचार व्यवस्था ने ले लिया है। इस प्रकार आधुनिकता 'समय और स्थान' से परे है। गिडिन्स के अनुसार–आधुनिकता का सिद्धांत दृढ़ता के साथ उत्तर-आधुनिकता के सिद्धांत का विरोध है। 'उत्तर-आधुनिकतावाद एक सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में भूमण्डलीकरण के साथ है जो एक प्रकार से वैश्वीकरण की ही समर्थक विचारधारा है। उत्तर-आधुनिकतावाद में अनेक विचारों, विचारधाराओं एवं वास्तविकता के उत्तर, अंत और मौत की घोषणा की जा रही है। इसमें उत्तर-आधुनिकता, उतर-धर्मनिरपेक्षता, उत्तर-यथार्थवाद और उत्तर-मार्क्सवाद की घोषणा हो चुकी है। इसके साथ ही विचारधारा के अंत, इतिहास के अंत, सामाजिक के अंत, चेतना के अंत और विवेक के अंत की भी घोषणा हुई है।'[6] इस प्रकार उत्तरआधुनिकता ने साहित्य की मौत, कला की मौत और लेखक की मौत कर मानव समाज को निराशा में डूबाने के लिए काफी है। इसके साथ ही उत्तर-आधुनिकता ने मुक्ति के वृहत आख्यान की भी घोषणा कर दी ताकि पूँजीवादी भूमण्डलीकरण के विरोध की सारी समस्याएँ समाप्त हो जाए। इसलिए वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिए उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा और उसकी प्रकृति को समझना आवश्यक हो जाता है। "20वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप और अमेरिका में औद्योगिकीकरण अपने चरम उत्कर्ष पर था और इसके बाद अर्थव्यवस्था में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया। इस आर्थिक परिवर्तन ने ही समाज में ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दी जिसके कारण उत्तर-आधुनिकता का आविर्भाव हुआ।"[7] सन 1980 के दौर में उत्तर-आधुनिकता अर्थात

आधुनिकता के बाद समाज का विकास है। उत्तर-आधुनिकता एक सांस्कृतिक अवधारणा है जिसके केंद्र में 'संचार माध्यम' है। उत्तर-आधुनिकता के महान विचारक 'ल्योतार' साहित्य जगत में महान वृत्तांत को इनकार करते हैं और स्थानीयता को ज्यादा महत्त्व देते हैं। वह कहते हैं कि महान वृतांत की जो बातें हमें अनुपयुक्त लगती हैं, उन्हें हम छोड़ देते हैं जबकि उन अनुपयुक्त बातों के प्रति हमें संवेदनशील होना चाहिए। उत्तर-आधुनिकता दूसरी दुनिया के लोगों पर या दूसरी संस्कृति पर ध्यान देती है। उत्तर-आधुनिकता के केंद्र में उपेक्षित महिला, अश्वेत लोग, हाशिये का समाज तथा निम्नतल वर्ग में रहने वाले मनुष्यों को वरीयता देने का काम करता है। इतिहासकार की भाषा में इस वर्ग को 'सब आर्ल्टन' (sub-Altern) पद दलित समुदाय कहते हैं। ये सब उत्तर-आधुनिकता के केन्द्रीय विषय रहे हैं। उत्तर-आधुनिकता के विचारक 'बोड्रिलार्ड' के अनुसार "उत्तर-आधुनिकता समाज की सम्पूर्ण संरचना मीडिया द्वारा संचालित होती है। यह मीडिया ही इस समाज की प्राणवायु है। इनमें संकेतों का प्रयोग वस्तुओं के अतिरिक्त विचारों और विचारधारा पर भी किया जाता है।"[8]

उत्तर-आधुनिकता एक ही साथ आधुनिकतावाद का विकास भी है और उसका विलोम भी। जैसे- आधुनिकतावाद ने मनुष्य को केंद्र में रखकर अपना विस्तार किया और मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा को केंद्र में रखकर बहुत से वैज्ञानिक अविष्कार किया। इतना ही नहीं पूरी तरह से प्रकृति पर नियंत्रण पाने की कोशिश की। इस प्रकार भौतिक विकास को भी मनुष्य का वास्तविक विकास माना गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रकृति के साथ समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा हाशिये पर चला गया। दूसरी तरफ उसका विलोम देखे तो वैश्वीकरण के केंद्र में पूरा विश्व सिमट का एक गाँव का रूप ले चुका है। अर्थात वैश्वीकरण का साम्राज्य गाँव में भी हर स्तर पर पहुँचकर हाशिये के लोगों को केंद्र में लाने तथा उनके विकास की मुहिम जारी कर दी है। कुछ समाजशास्त्रियों की परिभाषाओं के माध्यम से उत्तर-आधुनिकता का वैश्वीकरण के सम्बन्ध को समझने की कोशिश करेंगे-

जिम मेक्गूगन के अनुसार- "उत्तर-आधुनिकता एक सांस्कृतिक और ज्ञान-मीमांसा की दशा है जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक सामजिक संस्थाएँ दब जाती हैं और भूमण्डलीय समाज की दिशा की ओर

ले जाने वाले एक युगान्तर आता है।"[9] 'रिचार्ज' गोट- एक अमेरिकी समाजशास्त्री हैं। इनके अनुसार 20वीं शताब्दी का पहला भाग आधुनिकता से प्रभावित था। और इस अवधि में तकनीकी विकास हुआ और दुनिया को एक तकनीकी आकार मिला। शताब्दी का दूसरा भाग उत्तर-आधुनिकता का है। "उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता से मुक्ति दिलाने वाला एक स्वरूप है। यह एक विखंडित आन्दोलन है जिसमें सैकड़ों फूल खिल सकते हैं। उत्तर-आधुनिकता में बहु-संस्कृतियों का निवास हो सकता है।"[10]

जोर्ज रिटज़र ने अपनी पुस्तक- 'मॉडरनिटी एण्ड पोस्ट-मोडरनिटी' में उत्तर-आधुनिकता की व्याख्या अवधारणात्मक स्तर पर की है- इस पद में मुख्यतः तीन अवधारणाएँ हैं- उत्तर-आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकवाद तथा उत्तर-आधुनिकता सामाजिक सिद्धांत। आधुनिकता का मतलब एक ऐतिहासिक काल से है। यह काल आधुनिकता के काल की समाप्ति के बाद प्रारम्भ होता है। उत्तर-आधुनिकतावाद का सन्दर्भ सांस्कृतिक तत्वों से है। इसका मतलब कला, फिल्म, पुरातत्व और इसी तरह की सांस्कृतिक वस्तुओं से है। उत्तर-आधुनिक सामाजिक सिद्धांत का तात्पर्य उस सिद्धांत से है जो सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धांत से भिन्न है। "उत्तर-आधुनिकता एक विशाल अवधारणा है जिसमें ऐतिहासिक काल, नवीन सांस्कृतिक तत्त्व और सामाजिक दुनिया के बारे में एक नई तरह का सैद्धांतिकरण सम्मिलित है।"[11] आगे भी लिखते हैं कि भूमण्डलीकरण अच्छा या बुरा नहीं है बल्कि यह उसको लागू करने की प्रक्रिया पर निर्भर करता है उनका मानना है कि विविध ग्लोबल संगठन मसलन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष विश्व बैंक जैसी संस्थाएं अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाई है' 'ग्लोबलाइजेशन एंड इट्स डीस्कन्तेट्स' पुस्तक में लिखते हैं कि- "मैं मानता हूँ कि भूमण्डलीकरण मुक्त व्यापार के लिए बन्धनों को हटाने राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्थाओं को नजदीक लाने एवं एकजुट करने के लिए एक अच्छी शक्ति हो सकती है। इसमें यह क्षमता है कि विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को समृद्धि कर सके, विशेषकर गरीबों को। लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि जिस रूप में भूमण्डलीकरण को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के समझौते के रूप में लागू किया गया है। जिसका कि इन बन्धनों को हटाने में बड़ा योगदान रहा है और इन समझौतों के विकासशील देशों के

ऊपर भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के तहत जिन नीतियों को लागू किया है उसका तर्कपूर्ण ढंग से पुन: विचार करने की आवश्यकता है।"[12]

'जीन फ्रन्कोइज़ ल्योतार' उत्तर-आधुनिकता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इन्होंने ही उत्तर-आधुनिकता के पद को गढ़ा है। इनके अनुसार उत्तर-आधुनिकता की परिभाषा महान वृत्तांतों में अविश्वास करना है। हमें सकलता (totality) के खिलाफ युद्ध छेड़ देना चाहिए, इसकी अपेक्षा हमारी सक्रियता विशिष्टता (difference) के प्रति होनी चाहिए। वास्तव में उत्तर-आधुनिकता केवल अधिकृत व्यक्तियों का औजार नहीं है, इसका लक्ष्य विशिष्टता के प्रति हमें संवेदनशील करना है और वे वस्तुएं जो हमें अनुपयुक्त लगती हैं, उन्हें उदारता के साथ स्वीकार करने की योग्यता पैदा करना है।"[13] ल्योतार कहते हैं कि अनुपयुक्त बातों के प्रति भी हमें संवेदनशील होना चाहिए। कुल मिलाकर ल्योतार विखंडन अर्थात स्थानीयता के पक्षधर हैं, वे विविधता के हामी हैं और सकलता (totality) तथा महान वृत्तान्त के विरोधी हैं। अर्थात समाज के वे लोग या वस्तु जिसे समाज में तुच्छ समझा गया और कभी उसे महत्त्व नहीं दिया गया हो, जिसकी वकालत आगे चलकर वैश्वीकरण भी करता है।

इस प्रकार वैश्वीकरण को मुकम्मल रूप से समझने की कोशिश करें तो समाजशास्त्रीय विचारक 'गिडिन्स' के अनुसार वैश्वीकरण दुनिया भर के लोगों के साथ सम्बन्ध का तीव्रीकरण है। स्थानीय सम्बन्धों में भी हजारों मील दूर रहने वाले लोगों के संबंधों पर प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण विश्व स्तर पर छोटी से छोटी चीजों को आत्मसात करता हुआ स्थानीय स्तर पर हाशिये के समाज को भी मौका मुहैया कराता है। समाज में व्याप्त तमाम तरह की बुराईयों जैसे ऊँच-नीच, जाति-पात, छुआ-छूत जैसे असमानता को काफी हद तक धूमिल करने का काम किया है। निष्कर्षत: यह कह सकते हैं कि आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता का फैलाव या विस्तार ही वैश्वीकरण है। "दुनिया भर के लोगों, क्षेत्रों और देशों के बीच में सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों की जो अन्योन्याश्रित है, वही वैश्वीकरण है।"[14] अर्थात पूँजीवाद के बल पर वैश्वीकरण के वाहक के रूप में "इलैक्ट्रानिक अर्थव्यवस्था एक अन्य कारक है जो आर्थिक वैश्वीकरण को सहारा देता है। कंप्यूटर के 'माउस' को दबाने मात्र से बैंक, निगम,

निधि, प्रबंधक और निवेशकर्ता अपनी निधि को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इधर से उधर भेज सकते हैं।”[15] द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विकसित देश विचारधारा के स्तर पर दो गुटों में बंट गए थे। पहला देश अमेरिका जो पूँजीवाद को बढ़ावा दे रहा था और दूसरी तरफ विकसित देशों का संगठन ‘सोवियत संघ’ जो मार्क्सवादी साम्यवादी विचारधारा का वाहक था। “पूँजीवादी भूमण्डलीकरण का नेतृत्त्व अमेरिका ब्रिटेन समेत वे पूँजीवादी राष्ट्र कर रहे थे जिनकी अटूट विश्वास पूँजी की बेरोकटोक गतिशीलता में था, वहीं दूसरा गैर पूँजीवादी धड़े का नेतृत्त्व ‘सोवियत संघ’ जैसे मुल्क कर रहा था, जिसका विश्वास पूँजीवाद के मुकाबले बेहतर किस्म के लोकतंत्र समतामूलक अर्थव्यवस्था व राष्ट्रों के मध्य समतामूलक सम्बन्धों पर आधारित था”[16] सन 1990-91 में ‘सोवियत संघ का विघटन’ ही वैश्वीकरण का पूरे विश्व पर एक सत्ता अमेरिकीकरण अर्थात पूंजीवादी साम्राज्यवाद का विकास रहा है जो वैश्वीकरण रूपी विचारधारा या प्रक्रिया कहें, वह समाज को चारों तरफ से ढक चुका है। अर्थात समाज का वह सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक या कहे विचारधारा के स्तर पर भी मुकम्मल रूप से एक आवाज के रूप में विराजमान हो अपना आधिपत्य फैलाता जा रहा है। वैश्वीकरण का रूप तीसरी दुनिया के देशों पर पूरी तरह से छा गया है। जिसके माध्यम से भविष्य की कल्पना की जा सकती है। 21वीं सदी के अंत का समय मशीनीकरण टेक्नोलॉजी और सूचना-संचार का होगा। जिसे ‘पोस्ट मॉडर्न सोसाइटी-(Post Modern Society) की संज्ञा दी जा सकती है। वह समाज मानव समाज या प्रकृति प्रदत्त समाज कम आभासी पटल पर रोबोट समाज (रोबोट सोसाइटी) की संज्ञा जरूर पा सकेगा।

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया अचानक घटने वाली कोई घटना नहीं है बल्कि बहुत पहले से ही चली आ रही विकास की वह लहर है जो दिन-प्रतिदिन विकसित होती हुई पूंजीवादी संगठन के रूप में अपना साम्राज्य स्थापित कर आज इस रूप में सफल हो रही है।

1.2-वैश्वीकरण का अर्थ और परिभाषा

वैश्वीकरण की अवधारणा बहुत ही जटिल है। यह एक प्रक्रिया है जिसके बहुआयामी रूप है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया द्वंद्वात्मक है। इसके अनुसार पूरा विश्व एक है तथा दूसरी तरफ एक गाँव में पूरी दुनिया है। अर्थात वैश्वीकरण की विचारधारा स्थानीयता और सार्वभौमिकता दोनों को आमने-सामने लाकर खड़ा कर देती है। वैश्वीकरण की अवधारणा में 'समय' और 'स्थान' एकदम सिमट गए हैं। सर्वप्रथम वैश्वीकरण के विकास पर बात करने से पहले वैश्वीकरण शब्द के बारे में जान लेना आवश्यक हो जाता है। वैश्वीकरण के लिए विविध शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- ग्लोबलाइजेशन, जगतीकरण, नव-उपनिवेशवाद, नव उदारवाद आदि। 'वैश्वीकरण' शब्द 'भूमण्डलीकरण' का ही पर्यायवाची है। और अंग्रेजी के 'Globalization' शब्द का हिंदी रूपांतरण है। भूमण्डलीकरण का शाब्दिक अर्थ- भू + मण्डल। 'भू' का अर्थ 'भूमि' या पृथ्वी और 'मण्डल' का अर्थ समाहित करना। अर्थात सम्पूर्ण भूमण्डल का एक साथ होना। दूसरे शब्दों में कहे तो वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं का विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया से है। इस प्रक्रिया के माध्यम से विश्व के लोग एक साथ मिलकर समाज बनाते हैं। तथा एक साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारा आदि सभी प्रकार के कार्यों को एक मंच पर करने का प्रयास करते हैं। मुख्य रूप से देखा जाय तो वैश्वीकरण का प्रयोग विश्व स्तर पर आर्थिक क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए किया जाता रहा है जैसे-सहज रूप से पूंजीवादी व्यवस्था का व्यापार प्रवाह सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एकीकरण करना है। वैश्वीकरण भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण जुलाई सन 1991 में नयी आर्थिक नीतियों को स्वीकारने के साथ प्रारम्भ हुआ।

भारत में भूमण्डलीकरण की सन 1990 के दशक में घोषणा हुई। जब देश आर्थिक मंदी की दौर से गुजर रहा था, कांग्रेस सरकार की छत्रछाया में आर्थिक सुधार का नारा बुलन्द किया गया, कांग्रेस सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष से ऋण लिया क्योंकि देश के पास केवल दो हफ्ते के आयात का बिल चुकाने लायक ही पैसा था, सरकार के पास कर्ज लेने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया था तत्कालीन

प्रधानमंत्री ‘पी. वी. नरसिंह राव’ ने भाषण में कहा “आर्थिक सुधारों के अल्पकालिक प्रभावों के डर से हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे तो दीर्घकालीन परिमाण भयावह होंगे”[17] इसी भयावह परिणाम के डर से ही परिवर्तन का दौर आरम्भ हुआ। इस प्रकार निजीकरण का आरम्भ हुआ। गुरु चरणदास के अनुसार “नरसिंह राव द्वारा सन 1991 में की गई आर्थिक क्रांति जवाहरलाल नेहरु द्वारा सन 1947 में की गई राजनीतिक क्रांति की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती है।”[18] रिलाइंस के अनिल अम्बानी ने कहा “यह आर्थिक सुधार नहीं है यह क्रांति है।”[19] देश के विकास के लिए भारतीय अर्थ-व्यवस्था को दुनिया के सभी देशों के लिए ‘मुक्त राष्ट्रीय व्यापार हेतु’ खोलना पड़ा। जिसके अन्तर्गत उदारीकरण (Liberalization), निजीकरण (Privatization) और वैश्वीकरण (Globalization)-LPG ये तीनों शामिल हैं।

उदारीकरण का तात्पर्य औद्योगिक विनिमय और बाज़ार का पूरी तरह से खोला जाना है, जिससे अर्थ-व्यवस्था में सरकार के बजाय बाजारी शक्तियाँ हावी हो सके। निजीकरण से तात्पर्य जब सार्वजनिक क्षेत्र की किसी संस्थाओं का राजकीय हिस्सा निजी व्यक्तियों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है, जिससे उसका सार्वजनिक रूप समाप्त हो जाता है। उसे निजीकरण कहा जाता है। और तीसरा शब्द है, भूमण्डलीकरण- जिसका सम्बन्ध विश्व के लिए सभी चीजों के आदान-प्रदान हेतु एक ध्रुवीय राष्ट्र की कल्पना से है। वैश्वीकरण के इस दौर में अब किसी भी राष्ट्र के बीच कोई सीमा-रेखा नहीं रह गई है, और न ही किसी तरह के आवागमन में अवरोध। जिसके परिणाम स्वरूप पूँजी, श्रम, ज्ञान, विचार और टेक्निक का एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में बिना किसी अवरोध के (फ्री फ्लो रूप में) पूँजी व व्यापार को बढ़ावा मिल रहा है। विकासशील देश बहुत बड़ी मात्र में विकसित देशों की वस्तुओं के खरीदार बने हुए हैं। विकास के नाम पर वह अपनी वस्तुओं के माध्यम से मुनाफा कमा रहे हैं। भारत जैसे तीसरी दुनिया के विकासशील देश वैश्वीकरण के नाम पर छलना के शिकार हो रहे हैं। जिससे हमारा सामाजिक परिदृश्य अछूता नहीं है।

वैश्वीकरण को सामान्य तरीके से देखा जाए तो यह विश्व स्तर पर पूँजी, सेवाओं, वस्तुओं, और श्रम का टकराव रहित प्रवाह है। इसके माध्यम से विश्व स्तर पर विचार, ज्ञान और संस्कृति को पहुँचाना है। वैश्वीकरण का यह प्रभाव तीव्रता से पूरे संसार के अलग-अलग क्षेत्रों में आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। समाज के सभी वर्गों पर इसका प्रभाव अलग-अलग रूपों में पड़ रहा है। जिस कारण वैश्वीकरण कुछ वर्ग के लोगों के लिए विकास का उच्चतम शिखर है, तो कुछ के लिए समाज व संस्कृति का विनाशक भी। वैश्वीकरण के विद्वानों के अनुसार वैश्वीकरण की परिभाषा को समझने की कोशिश करेंगे-

'कमल नयन काबरा' "1970 के दशक के मध्य से दुनिया में एक नई किस्म की, धनी देशों के वर्चस्व को बरकरार और मजबूत रखने वाली अंतर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की शुरुआत हुई। इस नई व्यवस्था के मुख्य बिंदु थे मुक्त, नियंत्रणहीन व्यापार मुद्रा तथा पूँजी बाजारों पर से सब नियंत्रणों का समाप्ति करों में खासकर प्रत्यक्ष करों में कटौती राज्य खर्च में कमी तथा राज्य द्वारा लागू किये गये आर्थिक नियंत्रणों की समाप्ति सार्वजनिक उद्योगों को निजीकरण बहुउद्देश्यीय कम्पनियों तथा निजी उद्यम की विश्व अर्थ व्यवस्था के मंच पर राष्ट्रीय राजकीय नियंत्रणों से मुक्ति राष्ट्रीय सीमाओं की आर्थिक मामलों में खत्म करने का एक नया दौर शुरू हुआ।"[20]

'प्रो. दीपक नैय्यर' के अनुसार इनकी पुस्तक "गवर्निंग ग्लोबलाइजेशन" में लिखते हैं- "यह राष्ट्र राज्य की राजनीतिक बंदिशों से बाहर आर्थिक हस्तांतरण, आर्थिक गतिविधियों एवं संसाधनों की क्रिया विधि के प्रसार की बात करता है। भूमण्डलीकरण को अधिक ढंग से एक प्रकिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि आर्थिक खुलेपन की प्रकिया, परस्पर आर्थिक नीर निर्भरता एवं विश्व अर्थ व्यवस्था में दो देशों के बीच आर्थिक एकता को सुदृढ़ करता है।"[21]

'आलोचक मैनेजर पाण्डेय' का मानना है, "भूमण्डलीकरण शब्द नया है, लेकिन यह जिस प्रक्रिया को व्यक्त करता है, वह पुरानी है। कार्लमार्क्स ने पूँजीवाद की बुनियादी विशेषता यह बतायी थी कि वह सारी दुनिया में अपना विस्तार करता है। यह प्रक्रिया यूरोप में पूँजीवाद के जन्म के साथ शुरू हो गयी थी

लेकिन इस प्रक्रिया की दो अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद की थी, जिसका सामना भारत ने ब्रिटिश समाज के रूप में किया था। दूसरी अवस्था उपनिवेशवाद की विघटन के बाद की है, जब पूँजीवादी देशों के लिए यह सम्भव हो गया है कि वे दूसरे देशों में जाकर अपने उपनिवेश कायम किये बिना ही अपने साम्राज्य का विस्तार कर सके। इस दूसरी अवस्था का नाम ही भूमण्डलीकरण है''[22] भूमण्डलीकरण को एक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। इसके मूल चरित्र को परिभाषा के अनुसार साम्राज्यवादी कहा गया है।

समाजशास्त्री विचारक 'एजाज अहमद' ने भूमडलीकरण को साम्राज्यवादी माना है। ''दूसरे विश्व युद्ध और पुराने साम्राज्य की सामाप्ति के बाद से ही अमेरिकी पूँजी विश्व की सबसे ताकतवर पूँजी के रूप में उभरती है। साम्राज्यवाद के इस नये दौर में दुनिया के सभी पूँजीपति देश अमेरिका के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं।''[23]

'जगदीश भगवती' के अनुसार उसके स्वरूप पर बात करें तो ''भूमण्डलीकरण ने असमानता को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।''[24] ''वैश्वीकरण को सभी देशों पर एक जैसे लागू नहीं किया जा सकता है। क्योंकि अलग-अलग राष्ट्रों की विषम परिस्थितियां है जिससे वह जूझ रहा है। तीसरी दुनिया के देशों से गरीबी. अशिक्षा. बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, जैसे अनेक तत्वों का उन्मूलन होना अभी शेष है।''[25]

'टॉम जी पामर' के अनुसार- ''वैश्वीकरण सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों का ह्रास या विलोपन और इसके परिमाण स्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्वस्तरीय तंत्र है।''

'थामस एल फ्राइडमैंन' (Thomas L.Friedman) के अनुसार- ''दुनिया के 'सपाट' होने के प्रभाव की जांच करता है।'' और तर्क देता है कि वैश्वीकृत व्यापार 'आउट्सोर्सिंग' आपूर्ति के शृंखलन और राजनीतिक बलों ने दुनिया को, बेहतर और बदतर, दोनों रूपों में स्थायी रूप में बदल दिया है। वे यह

तर्क भी देते हैं कि वैश्वीकरण की गति बढ़ रही है और व्यापार संगठन तथा कार्यप्रणाली पर इसका प्रभाव बढ़ता ही जायेगा।

वैश्वीकरण-“Process by which the experience of everyday life, marked by the diffusion of com-modesties and ideas, is becoming standardized around the world. Factors that have contributed to globalization include increasingly sophisticated communications and transportation technologies and services, mass migration and the movement of peoples, a level of economic activity that has outgrown national markets through industrial combinations and commercial groupings that cross national frontiers, and international agreements that’s reduce the cost of doing business in foreign countries. Globalization offers huge potential profits to companies and nations but has been complicated by widely differing expectations, standards of living, cultures and values, and legal systems as well as unexpected global cause-and- effect link-ages.[26]

‘एंथोनी गिन्ड़ेस’ -अपनी पुस्तक “दि कान्सीक्वेंसेज आफ मॉडर्निटी,1990” में वैश्वीकरण की व्याख्या विस्तार पूर्वक की है। उनका कहना है कि आधुनिकता का बहुत बड़ा परिणाम वैश्वीकरण है। यह इसलिए कि वैश्वीकरण में समय और स्थान को सामाजिक जीवन में नये सिरे से परिभाषित किया गया है। “विभिन्न लोगों और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में बढ़ती हुई अन्योन्याश्रितता या पारस्परिकता ही वैश्वीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में होती है। इसमें समय और स्थान सिमट जाते हैं।”[28] सामाजिक परिवर्तन की बात करें तो आज दुनिया भर में यह परिवर्तन बहुत तेजी से हो रहा है। और दूसरे देश के लोग एक ऐसी जटिल और आर्थिक कड़ी में बधते जा रहे हैं, जिन्हें अलग करके समझा नहीं जा सकता है। इतना ही नहीं बाजार में बाहरी देशों की वस्तुओं के साथ हमारे देश की भी वस्तुएं स्थानीय स्तर पर भी ग्लोबल होती जा रही हैं। ये वस्तुएं संस्कृति भी हैं, किसी स्थान विशेष

की कला भी हैं और साथ-साथ हमारे दिन-प्रतिदिन काम की वस्तुएं भी हैं। इस प्रकार देखा जाय तो आज हम जिस दुनिया में रह रहे हैं, वहां पर आज के समय में अन्योन्याश्रितता (interdependence) बढ़ गई है। पहले के समाज में एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों पर वहां की वस्तुओं पर इतने अर्न्तनिर्भर नहीं थे, जितने आज हो गये हैं। आज एक गाँव ही अपने आप में पूरी दुनिया का 'रोल प्ले' कर रहा है। इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि स्थानीय और वैश्विक लोग एक सूत्र में बंध गए हैं। यह पिछले 20-30 वर्षों की ही देन है। इसका मुख्य कारण संचार साधनों में वृद्धि, सूचना तकनीकी और आवागमन के साधनों में वृद्धि से है।

'थियोडोर लेविट' के अनुसार- "सच्चाई यह है कि आज की दुनिया बड़ी तेज रफ्तार से बदल रही है। अगर सन 1980 का दशक 'यूरोप और अमेरिका' में उत्तर-आधुनिकता की अवधारणा का था तो सन 1990 का दशक 'वैश्वीकरण' का है। अब यह भी सोचा जाने लगा है कि वैश्वीकरण के बाद का युग उत्तर-वैश्वीकरण(Post-Globalization) का होगा।"[29]

समाजशास्त्री 'वेलरस्टेन'- "हिस्टोरिकल केपिटलिज्म" पुस्तक में वैश्वीकरण के तीन तत्त्वों को आधार मानकर वैश्वीकरण की परिभाषा देते हैं- पूँजीवाद, तकनीकी और शान्ति की राजनीति। उनके अनुसार- पूँजीवाद अनिवार्य रूप से वैश्वीय है। वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसका कारण पूँजीवाद का विस्तार और उसकी समृद्धि है।"

दूसरे समाजशास्त्री 'रोजेनाऊ' (1990) है। इन्होंने तकनीकी तंत्र के सन्दर्भ में वैश्वीकरण की पड़ताल की है। इस संदर्भ में उनकी पुस्तक (Turbulance in World politics,1990) है। जिसमें उनका तर्क है कि आज दुनिया में जो पारस्परिकता है, अंतरनिर्भरता है, इनका कारण तकनीकी तंत्र है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह तकनीकी तंत्र ही है जिसने भौगोलिक और सामाजिक दूरियों को मिटा दिया है। जिसके कारण स्थानीय, राष्ट्रीय, और अंतर्राष्ट्रीय समुदायों में अंतर्संबंध स्थापित हुए हैं।

इन्होंने तकनीकी तंत्र के साथ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को भी जोड़ते हैं। “उद्योगवाद और उत्तर-उद्योगवाद आज ऐसी वैश्वीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्तियां बन गई हैं जो वैश्वीकरण का पोषण करती हैं।” अर्थात अब राष्ट्र-राज्यों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे अब अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आयें और जनकल्याण भागीदारी में जुट जाएँ। इसी विचारधारा की ही देन है कि आज बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बन गए हैं।

वैश्वीकरण की व्याख्या करने वाले समाजशास्त्री **‘गिलपीन’** (Gilpin R.1987) हैं। उनकी पुस्तक (The political economy of international relations,1987) है, जिसमें वह कहते हैं कि- वैश्वीकरण राजनीतिक कारकों की उपज हैं, पैदाइश है।” अर्थात आज अन्तर्राष्ट्रीय माहौल कुछ ऐसा है कि सभी राष्ट्र-राज्य अपने स्थायित्व और सुरक्षा के लिए किसी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार इसमें कुछ प्रभुत्वशाली ‘सुपरनेशन स्टेट’ हैं, जो वैश्वीकरण के माध्यम से अपनी अर्थव्यवस्था और संस्कृति को दूसरे विकासशील देशों पर थोपना भी चाहते हैं। ऐसे प्रभुत्वशाली राष्ट्र-राज्यों के लिए वैश्वीकरण एक उपयुक्त और अनुकूल विचारधारा या कहे प्रक्रिया है। इस प्रकार पुस्तक के अन्त में समाजशास्त्री ‘गिलपीन’ का यह टिप्पणी करना सटीक ही है कि कहीं न कहीं “ऐतिहासिक दृष्टि से देखे तो यूरोप का पूरा इतिहास बताता है कि वैश्वीकरण का घनिष्ठ सम्बन्ध साम्राज्यों के विस्तार के साथ है।”[30]

भूमण्डलीकरण की असलियत बताते हुए **‘डॉ. लोकेशचंद्र’** कहते हैं- “वैश्वीकरण का अर्थ विश्व विजय है, इसमें अलग-अलग तंत्रों की, अलग-अलग राष्ट्रों की भागीदारी नहीं। वैश्वीकरण एकेश्वरवाद का रूपांतरण है जिसमें अनेक राष्ट्रीय अस्मिताओं को, विभिन्न मूल्यों बोधों को समाप्त कर अधिनायकवाद की स्थापना है। इसके लिए मनुष्य जाति की आर्थिक लिप्सा और विलासिता की मोहमाया को उपभोक्तावाद, उदारीकरण और फैशन की लुभावनी नग्नता, उपयोगिता और उदारता के आकर्षक शब्दों से भड़काया जा रहा है। एक विश्व के नाम पर सब राष्ट्रों को आर्थिक, सांस्कृतिक और सुरक्षात्मक दासता में बाँधा जा रहा है। संस्कृति की अवधारणा को प्रश्न बनाकर एशिया को, यूरोपीय जातियों को,

भ्रम जाल में फसाया जा रहा है। मोहिनी शब्द माया में, भड़कीले चित्र निरूपण में, समाचार पत्रों के दिन-प्रतिदिन आघातों से मनुष्यों के मन का बाजारीकरण हो रहा है। पूंजीवाद का यह जघन्य पक्ष है जो प्रदूषण से भी अधिक घातक है।[31] "भूमण्डलीकरण को अमेरिकीकरण का ही परिवर्तित चेहरा माना जाता है। इसके केंद्र में एक महाशक्ति (संयुक्त राज्य अमेरिका) एक महा मुद्रा (अमेरिकी डॉलर) अमेरिकी उत्पाद और एक ख़ास अमेरिकी जीवन-शैली का विशेष आग्रह दिखाई देता है।

'हेनरी किसिंजर' ने बड़े दर्प से स्वयं भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को अमेरिकीकरण की संज्ञा दी है। इसके पीछे अमेरिकी अहंकार की यह भावना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है जो यह मानती है कि वर्तमान विश्व के समक्ष अमेरिकी विचारों, मूल्यों और जीवन-शैली को स्वीकार करने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं बचा है।"[32] समाज में सभी लोगों के बीच प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से "भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया जिस लोकतंत्रीकरण का एहसास करती है वह भुलावा और छलावा है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में विकसित व विकासशील देशों के अन्तर्सम्बन्धों को मानव-चालित रिक्शा के उदाहरण से स्पष्ट तौर पर समझा जा सकता है। मानव-चालित रिक्शा में दौड़ते हुए रिक्शा खींचने वाला व्यक्ति भी रिक्शा का वैसा ही एक अंग दिखाई देता है जैसा कि इसमें बैठा व्यक्ति, जबकि वास्तविकता भिन्न है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में विकसित व विकासशील देशों का लाभ अलग-अलग है। बेचारे विकासशील देश रिक्शा खींचने वाले व्यक्ति के समान है जिसकी स्वतंत्रता कम है, असुरक्षा और लाचारी ज्यादा; वहीं विकसित देश उस रिक्शा पर बैठी सवारी के समान हैं जिसकी आज्ञानुसार कहीं भी, कभी भी भूमडलीकरण के रिक्शे को दिशा-निर्देशित किया जा सकता है। आज तो भूमण्डलीकरण की यही स्थिति है। भविष्य में रिक्शा खींचने वाला कभी टैक्सी कार-चालक बन सकेगा, इसकी मात्र कल्पना ही की जा सकती है।[33] भूमण्डलीकरण के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों की अभिव्यक्ति समूचे विश्व में दो रूपों में देख सकते हैं। विकसित एवं विकासशील दोनों ही देशों का एक बड़ा वर्ग उपभोक्तावाद के आकर्षण में भ्रमित है। भौतिकतावाद की अंधी दौर में मनुष्य मात्र एक आर्थिक मनुष्य और अतृप्त उपभोक्ता मात्र बनकर रह गया है। जीवन में सार्थकता के प्रश्न पर सफलता की खोखली

चकाचौध हावी है। परिवार और समाज से धीरे-धीरे दूर जाते जड़-विहीन व्यक्ति की मानसिक बेचैनी का चिंता ग्रस्त वैश्विक आलम यह है कि आज तनाव विश्व की तीसरी सबसे बड़ी बीमारी बनकर उभरी है।"[34] वर्तमान समय में वैश्वीकरण की विचारधारा को "बीसवीं सदी में बौद्धिक व तार्किक स्तर पर हासिल की गई समझ को जमीन पर उतरना इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती है। टेक्नोलॉजी के विकास से खाद्य उत्पादन में कई-कई गुणा वृद्धि हुई, दवाइयों व बेहतर समझ के कारण महामारी बंद हुई हैं व औसत आयु में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। सभी मानव बराबर हैं, के विचार के चलते गुलामी की प्रथा, छूआछूत व ऊँच-नीच की प्रथा पर आघात हुआ है, इसके अलावा कन्याओं व महिलाओं के लिए भागीदारी के अवसर को स्वीकारा जाने लगा है और भारत भी बेटी शिक्षित हो उसका बचपन सुरक्षित हो, काफी स्पष्टता से कहा जाने लगा है।"[35] वैश्वीकरण के द्वारा दो अवधारणा निकल कर सामने आती हैं। पहली 'ग्लोबल विलेज' और दूसरी 'ग्लोबल सिटी'। देखने पर दोनों एक जैसे ही दिखती हैं लेकिन दोनों में जमीन आसमान का अंतर है। 'ग्लोबल विलेज' से तात्पर्य 'ग्लोबल गाँव' से है जहाँ पर बाजार में दुनिया की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं और उन्हें आसानी से वही से ख़रीदा जा सकता है उसके लिए कही और जाने की जरुरत नहीं पड़ती है। "विश्व ग्राम की अवधारणा के प्रणेता कनाडा के लेखक मार्शल मेक्लूहान हैं।

वर्तमान समय में 'टेक्नोलॉजी और सूचना प्रौद्योगिकी' के माध्यम से घर बैठे दुनिया के किसी भी कोने से कोई भी वस्तु प्राप्त की जा सकती है। और देश में उत्पादित वस्तु यहाँ तक की अपने पास उपस्थित समान को बेचा भी जा सकता है। 'इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम' ने सम्पूर्ण संसार को एक सूत्र में बाँध दिया है। इस तरह के दुनिया भर के लोग टेलीविजन द्वारा प्रसारित ख़बरों और घटनाओं को साथ-साथ देखते हैं। जैसे- किसी गाँव के लोग हर निवासी को पड़ोसी और नातेदार को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं, किसी से कोई दुराव नहीं है, वैसे दुनिया भर के लोग एक-दूसरे को जानते हैं। मैक्लूहान का कहना है कि मीडिया ने सम्पूर्ण दुनिया को एक छोटा सा गाँव बना दिया है।"[36] विश्व नगर (global city) की अवधारणा से तात्पर्य टोक्यों, फैंकफर्ट, लन्दन, मुम्बई और नई दिल्ली आदि विश्व नगर के दृष्टांत हैं।

विश्व नगर, अवधारणात्मक रूप थे, वह नगर है जो ‘नई वैश्वीय अर्थव्यवस्था का संगठनात्मक केंद्र’ है। अर्थात ‘विश्व नगर’ से उनका तात्पर्य उन नगरों से है जो बहुराष्टीय निगमों, वित्तीय संगठनों परामर्शदाताओं के मुख्यालय हैं। इन्हीं नगरों से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार होता है और ये नगर ही पूँजीवाद के विकास के केन्द्र हैं।”[37]

वैश्वीकरण की प्रक्रिया समाज की विविधता के अनुसार लागू किये जाने की प्रक्रिया पर ज्यादा निर्भर करती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक आर्थिक क्षेत्र से सम्बंधित विचारधारा अर्थव्यवस्था के विकास को केंद्र में रखकर देश के विकास की तरफ अग्रसर होने की तरफ इशारा करती है। लेकिन समाज की चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या कहे विचारधारा के स्तर पर ही क्यों न हो समाज में घटित होने वाली सारी घटनाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती ही हैं। इसलिए इस बात को आर्थिक जगत तक ही सीमित करके नहीं सोचा जा सकता है कि वह समाज संस्कृति और साहित्य जगत पर उसका प्रभाव नहीं पड़ेगा। वैश्वीकरण की प्रक्रिया अर्थनीति के साथ-साथ समाज के विविध पहलुओं को प्रभावित कर जीवन स्तर में परिवर्तन कर रही है, यह एक ओर उन्मुक्त बाजारवादी नीतियों का पोषण करती है, आर्थिक सुधार की बात करती है, वहीं दूसरी ओर पर्यावरण ह्रास भूमि अधिग्रहण विषमता इत्यादि गंभीर मसलों को भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही है।

1.3 समाज, साहित्य और वैश्वीकरण

भारतीय समाज में साहित्य की बहुत प्राचीन परम्परा रही हैं। साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से भारतीय समाज प्राचीनकाल से ही विश्व के सभी देशों से बहुत श्रेष्ठ रहा है। साहित्य और समाज का अनोखा रिश्ता होता है। आदिकाल से लेकर अब तक के समाज को जानने या समझने के लिए साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दूसरे शब्दों में कहे तो साहित्य, समय और समाज के साथ चलते हुए उन्नत भविष्य के सृजन का दूसरा नाम है। जीवन की कोई भी समस्या/बिडम्बना साहित्य की परिधि से बाहर नहीं है। हर समाज का अपना सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वजूद होता है। समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियों और आहट को समझने और जानने के लिए साहित्य से अच्छा कोई और माध्यम नहीं है। क्योंकि रचनाकार अपनी लेखनी में पात्रों के माध्यम से उस समय के समाज का पूरा का पूरा प्रतिबिम्ब रेखांकित करने का सफल प्रयास करता है। फ्रांसीसी दार्शनिक लुई द बोनाल(1754-80) के अनुसार-किसी राष्ट्र के साहित्य को ध्यान से पढ़कर यह बताया जा सकता है कि उसकी जनता किस प्रकार की थी।”[38] अर्थात् साहित्य के माध्यम के समाज से सभी रूपों का दर्शन सम्भव है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं का आँखों देखा हाल प्रस्तुत होता है। साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास आधुनिक समाज की देन है जिसके माध्यम से समाज की धुरी को समझा जा सकता है। विकसित हो रहे सजीव और निर्जीव सभी के अस्तित्व और उसकी गतिशीलता को साहित्य के माध्यम से गहराई तक प्रवेश किया जा सकता है। “साहित्य की परिभाषा देते हुए ‘तेन महोदय’ लिखते हैं- “कोई साहित्यिक कृति न तो एक व्यक्ति की कल्पना की क्रीड़ा है न किसी उत्तेजित कण की भटकती हुई अकेली तरंग। वह समकालीन रीति-रिवाजों का पुनर्लेख है और एक विशेष प्रकार के मानस की अभिव्यक्ति। हम महान रचनाओं से यह जान सकते हैं कि किसी समय और समाज में मनुष्य कैसे सोचता और अनुभव करता है।”[39] आगे तेन के अनुसार -“एक महाकविता या उपन्यास से समाज के बारे में जितनी जानकारी मिल सकती है उतनी ढेरों इतिहास ग्रंथों से नहीं मिल सकती।” उन्होंने लिखा है

साहित्यिक कृतियाँ सुन्दर होने के नाते ज्ञानवर्धक होती हैं, कलात्मक श्रेष्ठता से उनकी उपयोगिता बनती है।"[40]

"साहित्य को समाज का दर्पण, दीपक कुछ भी मानें जो तथ्य निर्विवाद है, वह यह कि साहित्य सामाजिक जीवन की कोख से ही जन्म लेता विकसित और गतिमान होता है। साहित्य की कोई भी समीक्षा सामाजिक जीवन संदर्भों से उदासीन या निरपेक्ष नहीं रह सकती।" [41]

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि साहित्य और सामाजिक जीवन दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। सामाजिक गतिविधियों और उसके आधार के बिना साहित्य अधूरा है। अर्थात सामाजिक आधार से विछिन्न होकर साहित्य या कला के अस्तित्व की कल्पना संभव नहीं है। समाज में होने वाले तीव्र विकास और बदलावों को बहुत ही सूक्ष्मता और गहराई में देखने का एक मात्र आधार साहित्य है जिसके माध्यम से समाज की सभी दृश्य-अदृश्य आहटों को महसूस किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य जगत की लगभग सभी विधाओं के माध्यम से वह चाहे कविता, कहानी हो या उपन्यास । जहाँ तक उपन्यास विधा में वैश्वीकरण की झाँकी का प्रश्न है वह स्पष्ट और मुक्कमल रूप में देखने को मिलती है। उपन्यास विधा के माध्यम से मानव जीवन का समाज से जुड़े कई पहलुओं का एक साथ अध्ययन सम्भव हो जाता है। "हिन्दी उपन्यासों में भूमण्डलीकरण का प्रभाव इसलिए है कि उपन्यास अपने समय और समाज का जीवंत दस्तावेज है। लेकिन उसका विरोध भी पूरी ताकत के साथ उपन्यासों में आ रहा है जो उपन्यासकारों की अपनी वैचारिकता एवं समाज के प्रति गहरे उत्तरदायित्वों का परिणाम है।"[42]

वैश्वीकरण का सीधा सम्बन्ध देखा जाय तो आर्थिक जगत से सम्बन्धित है। जिसका मतलब पूरे विश्व में वस्तु, सेवा, व्यापार, श्रम, पूँजी आदि के मुक्त प्रवाह से है लेकिन समाज में घटित होने वाली कोई भी घटना अपने आपने स्वतंत्र नहीं होती उसका सीधा प्रभाव समाज की सम्पूर्ण संरचना को प्रभावित करता है। "पूँजीवाद का उत्कर्ष ही भूमण्डलीकरण है जिसमें बड़ी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपना जाल फैला

रही हैं। उनमें सर्व मंगल की अवधारणा व्यर्थ है। पूँजीवाद अपना हित पहले देखता है, वह अपना बाजार पहले तलाशता है और लोगों की इच्छा को अपनी तरफ मोड़ता है।"[43] इसप्रकार भारत वैश्वीकरण के लिए बहुत बड़ा बाजार है जहाँ पर अर्थव्यवस्था अभी विकसित नहीं हो पायी है बल्कि विकास की दिशा में तत्पर है। इतना ही नहीं यहाँ अत्याधिक जनसंख्या मानव संसाधन के रूप में और खनिज सम्पदा आदि का सम्पन्न होना वैश्वीकरण के लिए अनुकूल माहौल मुहैया कराने में विकासशील देशों में सफल राष्ट्र की श्रेणी में आती है। वर्तमान समय में सभी विकसित देशों की नजर भारत की ओर है।

वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया को मुख्यत: दो भागों में बाँट दिया है। अमीर देश (विकसित देश) और गरीब यानि (विकासशील) देश। वर्तमान वैश्विक समाज भी इसी फार्मूले पर अमीर वर्ग और गरीब वर्ग में बंट चुका है। समाज का स्वरूप अब पूँजी पर निर्भर हो गया जिसके पास पैसा है वह गरीब को लूट रहा है अपनी विकास रुपी सोच के माध्यम से। "भूमण्डलीकरण में औद्योगिक पूँजीवाद व्यवस्था एवं उसके द्वारा निर्मित उपभोक्तावादी संस्कृति को दुनिया भर के उन देशों में फैलाया जा रहा है जो अब तक अ-भूमण्डलीकृत, पारम्परिक या कहें गैर पूँजीवादी राष्ट्र-व्यवस्थाएँ हैं।"[44] वैश्वीकरण को तकनीक संचालित प्रक्रिया माना जाता है। जिसे आभासी दुनिया की भी संज्ञा दी जा सकती है। तकनीक के माध्यम से भिन्न राष्ट्रों की दूरिया कम हुई हैं और अर्थव्यवस्थाएँ नजदीक आई हैं। वैश्वीकरण के माध्यम से आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया ने विश्व व्यापार को कहीं न कहीं तीव्र किया है। व्यापार में तीव्रता के कारण जीवन में हर पक्ष का कहीं से कहीं वस्तुकरण हो रहा है। बाजार में हर एक वस्तु की कीमत निर्धारित हो चुकी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण हमारे समाज पर हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष पर अपना साम्राज्य फैलाता जा रहा है। अंतर बस इतना है कि कहीं यह प्रभाव प्रत्यक्ष पड़ रहा है और कहीं अप्रत्यक्ष। वैश्वीकरण ने हाशिए के समाज को विमर्श का रूप दिया है- जैसे आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श को केंद्र में लाने और उन पर विचार विमर्श करने का प्लेटफार्म मुहैया कराने के साथ-साथ उनकी अपनी सामजिक पहचान और संस्कृति से उन्हें अलग कर मुख्यधारा में लाकर

अस्तित्त्वहीन भी किया है और दिन-प्रतिदिन इन्हें, इनके समाज और संस्कृति को वस्तु की भांति सबके समाने परोसा जा रहा है। यह कहना गलत नहीं है कि वैश्वीकरण के प्रभाव में ही हाशिये के समाज को नई सोच और अपने अस्तित्व के प्रति सचेत किया है, आगे बढ़ने का हौसला दिया। लेकिन उसके साथ-साथ अपने स्वार्थ की सिद्धि भी कर रहा है।

विज्ञापन जगत में 'स्त्री छवि' उसकी अस्मिता को प्रदर्शनी मात्र की वस्तु बना दिया है। जिसके माध्यम से वह अपनी वस्तुओं के विज्ञापन को उपभोक्ता और बाजार के बीच मुहैया करवाने में सफल हो रहा है। उसी तरह से आदिवासियों को उनके जल, जंगल, जमीन से बेदखल कर प्रवासी विस्थापन और निरीह जिन्दगी जीने पर मजबूर कर रहा है। वैश्वीकरण के प्रभाव से दलित समाज भी प्रभावित हुआ है लेकिन वैश्वीकरण ने इन्हें एक काबिल और अच्छी जिन्दगी जीने तथा संघर्ष करके आगे बढ़ने, पढने-लिखने और शिक्षित समाज के निर्माण में योगदान देने का प्लेटफार्म प्रदान किया है। जिससे कहीं न कहीं समाज में इनकी स्थिति में काफी सुधार देखा जा सकता है। साथ ही साथ सामाजिक स्थिति भी पहले से ज्यादा अच्छी हुई है। भारतीय शहरी समाज हो या ग्रामीण दोनों में सोच के स्तर पर विचार धारा के स्तर पर या टेक्नोलॉजी संचार क्रांति और इंटरनेट आदि के माध्यम से भारतीय समाज जागरूक और सचेत हुआ है। सभी के शिक्षा के लेवल और रहन-सहन सोच के स्तर में काफी परिवर्तन हुआ है। 'शिक्षित समाज, स्वथ्य समाज' का नारा सार्थक हुआ है। समाज में व्याप्त उच्च वर्ग पहले से ही आगे रहा है और वह हमेशा रहेगा लेकिन वैश्वीकरण में कहीं न कहीं मध्य वर्ग और निम्नवर्ग के लिए सोचने और संघर्ष करके आगे बढ़ने के सारे बंधन जो भारतीय समाज ने मध्यवर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के लिए नियम-क़ानून बना रखे थे उससे मुक्त कर उनके लिए खुला आसमान मुहैया करा रहा है, जो काबिले तारीफ है।

वर्तमान समाज बहुत तेजी से बदल रहा है। वैश्वीकरण के दौर में भारतीय समाज वैश्वीकृत समाज की रूपरेखा तय कर चुका है। साहित्य के क्षेत्र में कथानक, शिल्प और भाषा के स्तर पर भी वैश्वीकरण का प्रभाव लगातार जारी है। मध्यवर्ग का अवसरवादी और सुविधाभोगी जीवन इस दुनिया में बहुत तेजी से

अग्रसर हो रहा है। समाज के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक सभी प्रकार की आहट को हम समकालीन साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से समझ सकते हैं। “सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश में व्यापक बदलाव के साथ-साथ मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों में भी बदलाव आना स्वभाविक था। लेखकों की सोच और सम्बन्धों में भी बदलाव आना स्वाभाविक है। नई पीढ़ी के कथाकारों ने समकालीन बोध के स्तर पर सामाजिक जीवन की समस्याओं को देखना शुरू कर और वह पूरी तरह से समकालीन जीवन यथार्थ के प्रति समर्पित होने लगे।”[45] हिन्दी साहित्य की लगभग हर विधाओं पर (कहानी, उपन्यास, कविता) वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ रहा है।

21वीं सदी उन्मुक्त बाज़ार का युग है। इस बाजारवाद की संस्कृति ने भोगवादी संस्कृति की अवधारणा को जन्म दिया। इस दौर में उत्पादक अधिक महत्त्वपूर्ण न होकर उपभोक्ता अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह भोगवादी संस्कृति आधुनिकता के लिए अनिवार्य हो गई है। इसके बिना विचार और जीवन-शैली पिछड़ी हुई मानी जाती है। इस बाजारवादी व्यवस्था ने पूरे समाज को अपने मायाजाल में कैद कर लिया। जिससे समाज की सहज गति भ्रमित हुई है। बाजारीकृत संस्कृति में बहुत ज्यादा आकर्षक और अभिनयशीलता के गुण मौजूद हैं, जिसके मुख्य अंग हैं- ‘बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी’ है। इसके माध्यम से दुनिया पर बाजारवाद का साम्राज्य फैला हुआ है और भारत इसका सबसे बड़ा उपभोक्ता देश बना हुआ है। “विश्व 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है। इस सदी की गुरु-चिंता है; विश्व मानवता की सुरक्षा।”[46] “इक्कीसवी सदी को लेकर भारतीय मन ने अनेक सपने संजोए थे। इस सदी के दूसरे दशक में यह आभास हो रहा है कि हम पिछली सदी की समस्याओं से अभी तक मुक्त नहीं हुए हैं। इस सदी के नीति निर्माताओं के सामने शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी और मानव आधिकारों से वंचित बड़े समुदाय की चिंताएँ मुंह बाये खड़ी हैं। लैंगिक समानता और संवेदनशीलता का प्रश्न बहुत तेजी से उभरा है।”[47]जो भी हो लेकिन आज हमारे सामने इस क्रांति का भयावह परिमाण सामने मौजूद है। जहाँ भारत व इण्डिया दो परस्पर विरोधी छवियाँ उभरकर सामने आने लगी हैं। विकास की अंधी दौड़ में जहाँ एक ओर शहरी मध्यवर्ग है जो उपभोग, एश्वर्य का जीवन यापन कर रहा है वही दूसरी ओर दलित आदिवासी

अल्पसंख्यक लोग गरीबी, भुखमरी, भूमिहीन होकर बेबस और लाचार जीवन जीने को मजबूर हैं। समाज दो खेमों में बंट चुका है अमीर और गरीब। फिर भी आज समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों से पीछा छुड़ा पाने में सामाजिक जाति-पात के दंश को झेल रहे लोगों के लिए स्थिति जस की तस आज भी बनी हुई है। वैश्वीकरण के युग में समाज की परिवर्तनशीलता के साथ-साथ बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ता हुआ वास्तविक दुनिया से आभासी दुनिया अर्थात बनावटी दुनिया में प्रवेश कर चुका है।

वैश्वीकरण के दौर में समाज "सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश में व्यापक बदलाव के साथ-साथ मानवीय मूल्यों और सम्बन्धों में भी बदलाव आना स्वाभाविक था। लेखकों की सोच और सम्बन्धों में भी बदलाव आना स्वाभाविक था। नई पीढ़ी के कथाकारों ने समकालीन बोध के स्तर पर सामाजिक जीवन की समस्याओं को देखना शुरू कर दिया और वे पूरी तरह से समकालीन जीवन-यथार्थ के प्रति समर्पित होने लगे।"[48] साहित्यिक विधाओं के कथावस्तु के साथ उसके शिल्पगत ढाँचा में भी काफी बदलाव हुआ है।

21वीं सदी के मनुष्य की समस्याएँ मुख्यत" स्वय: के अस्तित्व से जुडी हैं। किसी भी वर्ग समुदाय से जुड़ा मनुष्य समाज में अपनी पहचान के लिए स्वय: आवाज उठा रहा है। रचनाकार की महत्ता- "रैल्फ फाक्स ने लिखा है-"क्या कोई उपन्यासकार इस दुनिया की समस्याओं से, जिसमें कि वह रहता है, बेखबर रह सकता है? क्या वह अपने देश की समस्याओं से, जिसमें कि वह रहता है, बेखबर रह सकता है? क्या वह अपने देश की स्थिति की ओर से अपनी आँखे मूँद सकता है? क्या वह युद्ध की तैयारी के शोर-शराबे की ओर से अपने कान बंद कर सकता है? क्या वह उस समय अपना मुँह बन्द रख सकता है जबकि चारों ओर विभीषिका मंडरा रही हो और व्यक्तिगत लालसा को अक्षुण्ण रखने के लिए वचनबद्ध राज्य के नाम पर जीवन को दो जून की रोटियों से भी वंचित किया जा रहा हो?"[49]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध है दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। साहित्य में प्रस्तुत होने वालें समाज का आधार वास्तविक समय और समाज की छोटी-बड़ी

घटनाओं में होने वाले बदलाव को ही साहित्यकार अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से उकेरने का काम करता रहा है। प्राचीनकाल से समाज में होने वाली हर एक प्रकार की हलचल वह चाहे भौतिक जगत में हो या मानवीय संवेदना तथा विचारधारा के स्तर पर । समाज में घटित होने वाली सभी आहटों को साहित्यकार बहुत ही सूक्ष्मता से अपनी लेखनी में उतारने का काम करता है। जिसके माध्यम से समाज को सही दिशा की तरफ अग्रसर होने का दिशा निर्देश भी देता रहा है। जहाँ तक समाज, साहित्य और वैश्वीकरण के अंतर्संबंध का प्रश्न हैं वह 21वीं सदी के समय और समाज की मांग रही है, जिसके आधार पर वर्तमान समय और समाज की मुकम्मल तस्वीर निर्मित हो रही है। वर्तमान समाज विचारधारा के स्तर पर ज्यादातर बदलाव को आत्मसात करता हुआ, विकसित हो रहा है। जिसका प्रतिबिम्ब हम साहित्य के माध्यम से आसानी से महसूस कर सकते हैं। समय के चक्र के साथ जैसे-जैसे समाज बदल रहा है, परिवर्तनशील है, वैसे-वैसे ही साहित्यिक रचनाओं में अभिव्यक्त होने वाला समाज भी बदलाव के साथ-साथ विकसित हो रहा है। ‘सूचना प्रौद्योगिकी और बाजार’ के युग में हिन्दी भाषा और उसका साहित्य वैश्विक स्तर पर विकासमान हो अपनी समृद्धि का परचम लहराने लगा है। स्वदेश सिंह का यह कहना सही है कि “जहाँ पहले आधुनिक हिन्दी 19वीं सदी से ही लोकप्रिय होनी शुरू हुई व देश के बड़े हिस्से में साहित्य, सिनेमा और समाचारपत्र के माध्यम से फ़ैल गई, वहीं भूमण्डलीकरण और इंटरनेट के दौर की हिन्दी ने पुराने बहुत से बैरियर तोड़ दिए और उन तमाम जगहों पर उपयोग में आने लगी है जहाँ पहले इसका पहुंचना संभव नहीं था। इंटरनेट की पतली गली और बाजार की भारी माँग ने हिन्दी की धमक कायम करने में बड़ी भूमिका अदा की है।”[50]

सन्दर्भ सूची:

1. शाही विनोद, समय के बीज आख्यान- आधार प्रकाशन पंचकुला-2015, पृ.22
2. सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत-परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009,पृ.सं. 25
3. नागला, बी.के., भारतीय समाजशास्त्रीय चिंतन, रावत पब्लिकेशन्स, पृ.सं.360
4. साहित्य दर्शन epg पाठशाला लिंक- epg.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
5. पाठक, अभिजात, आधुनिकता, वैश्वीकरण और अस्मिता, आकार बुक, दिल्ली-110091, पृ.स.57
6. साहित्य दर्शन epg पाठशाला लिंक- epg.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
7. दोषी,एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005, पृ.सं 131
8. दोषी, एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005, पृ.सं 189
9. दोषी, एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत,रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005, पृ.सं.153
10. वहीं, पृ.सं.-153
11. वहीं, पृ.सं.154
12. वहीं, पृ.सं.154
13. वहीं, पृ.सं.155
14. वहीं, पृ.सं.68
15. एन.सी.ई.आर.टी., भारत में सामाजिक परिवर्तन और विकास-12,पृ.सं.99

16. सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत-परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009,पृ.सं. 21

17.नागला बी.के., भारतीय समाजशास्त्रीय चिंतन,रावत पब्लिकेशन्स पृ.सं. 369

18.सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत-परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009,पृ.सं. 40

19.वहीं, पृ.सं.42

20.वहीं, पृ.सं.40

21. काबरा कमल नयन, वैश्वीकरण (विचार, नीतियाँ और विकल्प),प्रकाशन संस्थान,नई दिल्ली-110002, पृ.सं.23

22.'गवर्निंग ग्लोबलाइजेशन'- दीपक नैय्यर पृष्ठ-6

23. भाषा और भूमण्डलीकरण सं.रमेश उपाध्याय,संज्ञा उपाध्याय, डॉ मैनेजर पाण्डेय की रमेश उपाध्याय से बातचीत पृ.9-10

24.जोशी, रामशरण. (सम्पादक) वैश्वीकरण के दौर में, समयांतर प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ.सं.41

25. (GLOBLIZATION AND ITS DISCANTENTS, JOSEPH/E/ETIGLITZ PREFACE IX-X)

26.वैश्वीकरण, मीडिया और हिन्दी-प्रो.रामबक्ष (आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन-आलेख और प्रतिवेदन-सं-प्रो. गोपीनाथन, महात्मा गाँधी हिन्दी विश्व विद्यालय वर्धा)पृ. सं.67

27.सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत-परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009,पृ.सं. 18

28.दोषी, एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत,रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005, पृ.सं.316

29. वहीं, पृ.सं.314

30.वहीं, पृ.सं.319

31.नया ज्ञानोदय अंक-3 मई-2003, पृ.सं. 442

32.सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत-परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009,पृ.सं. 25

33.वहीं, पृ.सं.31

34.वहीं, पृ.सं.33

35.सम्पादक-एच.के. दीवान/ वेददान सुधीर, 21वीं सदी में भारत के सरोकार, सामयिक बुक-02, पृ.सं. 23,

36.दोषी, एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत,रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005, पृ.सं. 322

37.वहीं, पृ.सं. 323

38.डॉ.दयानन्द तिवारी, साहित्य का समाजशास्त्र- प्रकाशन-संस्थाननई दिल्ली-02) पृ.सं. 2

39.डॉ.दयानन्द तिवारी, साहित्य का समाजशास्त्र- प्रकाशन-संस्थाननई दिल्ली-02 पृ.सं.10

40.डॉ.दयानन्द तिवारी, साहित्य का समाजशास्त्र- प्रकाशन-संस्थाननई दिल्ली-02 पृ.सं.15

41.कवर पेज शिवकुमार-बुक’ हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध-सूरज पालीवाल-शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली-32’

42.शिवकुमार-बुक’हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध-सूरज पालीवाल-शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली-32, पृ. सं. 34

43.शिवकुमार-बुक’हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध-सूरज पालीवाल-शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली-32 पृ. सं.23

44.डॉ. दयानन्द तिवारी, साहित्य का समाजशास्त्र- प्रकाशन-संस्थाननई दिल्ली-02 पृ.सं.14

45. उत्तरशती की हिन्दी कहानी-तेज सिंह –भूमिका से

46.सम्पादक-एच.के. दीवान/ वेददान सुधीर, 21वीं सदी में भारत के सरोकार, सामयिक बुक-02, पृ.सं.81

47.सम्पादक-एच.के. दीवान/ वेददान सुधीर, 21वीं सदी में भारत के सरोकार, सामयिक बुक-02, कवर पेज से

48.उत्तर शती की हिन्दी कहानी-तेजसिंह भूमिका से

49.रैल्फ फाक्स उपन्यास और लोक जीवन पी.पी. एच. नई दिल्ली- पृ15

50.दैनिक जागरण अखबार, लेख-‘अंग्रेजी की दुनिया में हिन्दी की धमक’-स्वदेश सिंह, 23 अक्टूबर-2018,पेज.सं.-9

अध्याय-दो

वैश्वीकृत समाज और 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास

2.1- वैश्वीकृत पश्चिमी समाज का विकास
2.2- वैश्वीकृत तीसरी दुनिया: भारतीय समाज
2.3- उपन्यासों में चित्रित वैश्वीकृत सामाजिक परिदृश्य

वैश्वीकृत समाज और 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास

वैश्वीकृत समाज(Globalized Society) से तात्पर्य तीसरी दुनिया के ऐसे समाज से है जहाँ वैश्वीकरण का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ऐसे में समाज न तो अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियों को ज्यों का त्यों संचालित कर पा रहा है और न ही पूरी तरह से वैश्वीकरण के प्रभाव को आत्मसात करके विकास के उच्चतम शिखर को प्राप्त कर आगे बढ़ पाया है। अर्थात वह समाज जो ग्लोबल समाज बनने की प्रक्रिया में दिन-प्रतिदिन तीव्रगति से अग्रसर हो रहा है। भारतीय समाज दिन-प्रतिदिन टेक्नोलॉजी और सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से आभासी पटल का निर्माण कर रहा है। 'वर्तमान से मुखातिब होने के लिए 'समय' को 'इतिहास' या 'विज्ञान' से कहीं ज्यादा 'साहित्य' की जरुरत पड़ती है।' वैश्वीकरण शब्द बीसवीं सदी के अंत में आधुनिकीकरण, विकास, और परिवर्तन को रेखांकित करता है। वैश्विक गाँव की कल्पना एक आनन्दमयी कल्पना है। बीसवीं शताब्दी के अंत को वैश्विक समाज को फलीभूत करने के लिए अधिक जाना जाता है। वैश्वीकरण वह प्रवृत्ति है, जिससे दुनिया के प्रत्येक सामान्यजन पर उसका प्रभाव पड़ रहा है। 'वैश्वीकृत समाज' से तात्पर्य ऐसे समाज से है जो वैश्विक समाज बनने की प्रक्रिया में है। अर्थात भारतीय परम्परावादी व आधुनिक समाज तथा वैश्विक समाज के बीच की स्थिति से है। भारतीय समाज पूरी तरफ से वैश्विक समाज की श्रेणी में नहीं आता है। भारतीय समाज में वैश्वीकरण के मुख्य वाहक 'बाजार' यानि बाजारीकरण, व्यापार जगत की 'उपभोक्तावादी संस्कृति' में प्रवेश कर चुका है। जिस कारण भारतीय समाज के सभी तत्वों जैसे रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, भाषा-बोली, कला-संस्कृति, साहित्य, शिक्षा जगत राष्ट्र-राज्य की अवधारणा, पर्यावरण जगत कृषि, युवा वर्ग की बदलती मानसिकता, बदलते सामाजिक मूल्य अर्थात यथार्थ जगत में आभासी दुनिया का बोलबाला होता जा रहा है। इतना ही नहीं सोचने समझने की शक्ति पर वैश्विक विचारधारा पूरी तरह से अपना साम्राज्य प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से स्थापित कर सम्पूर्ण विश्व को 'बाजार' और मनुष्य को 'उपभोक्ता' बनाने में कामयाब हो रही है।

“वैश्वीकृत या कहे भूमंडलीकृत भारत का समाज एक ऐसे उपभोक्तावादी समाज के रूप में विकसित हो रहा है, जहाँ बाजारवाद भारतीयों की एक नई जीवन-शैली बनकर उभरा है। भारत का मध्यवर्ग एक नई दुनिया में प्रवेश कर चुका है, जहाँ उपभोग का सम्बन्ध केवल उसकी आवश्कता एवं संतुष्टि से नहीं रह गया है। यह व्यक्ति के पहचान से भी सम्बंधित हो गया है।”[1] वैश्वीकृत समाज में आज समाज के सभी लोग एक-दूसरे पर आश्रित होते जा रहे हैं। मशीनीकरण ने पूरे समाज को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। उसके बिना किसी कार्य को अंजाम तक पहुँचाना अब मुश्किल होता जा रहा है। “सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया आज दुनिया भर में बहुत तेज हो गई है और दूसरे देशों के लोग, एक ऐसी जटिल और आर्थिक कड़ी में बंध रहे हैं कि इन्हें अलग करके समझा ही नहीं जा सकता। आज हम जिस दुनिया में रह रहे हैं इसमें अन्योन्याश्रिता (interdependency) बढ़ गई है। पहले दुनिया के देश या एक ही देश के लोग एक-दूसरे की आवश्कता पूर्ति के लिए इतने अधिक अंतरनिर्भर नहीं थे। यहाँ तो एक गाँव ही अपने आप में अलग दुनिया थी।”[2] वैश्वीकरण के दौर में किसी गाँव या देश, राष्ट्र, स्थान, वस्तु, विचार किसी की कोई सीमा नहीं रही। दुनिया के सभी गाँव, देश, राष्ट्र की अपनी सीमा का अतिक्रमण हो चुका है। वर्तमान समाज ग्लोबल अर्थात पूरा विश्व एक गाँव में समाहित होता जा रहा है। अब कोई सीमा नहीं रही किसी देश, गाँव या राष्ट्र के बीच और न ही किसी वस्तु, विचार, व्यक्ति का अपना निजी अस्तित्व या पहचान। वैश्वीकरण ने पूरे समाज को एक ही रंग में रंग दिया है।

2.1- वैश्वीकृत पश्चिमी समाज का विकास

पश्चिमी समाज हो या भारतीय समाज सभी की अपनी संस्कृति और अपनी पहचान होती है। किसी भी समाज की रूपरेखा उसके प्राचीन विरासत की देन होती है। किसी भी समाज की सभ्यता संस्कृति एक दिन में नहीं बन जाती है। समय के साथ-साथ दिन-प्रतिदिन किसी भी समाज के बदलने की प्रवृत्ति उस समाज के विकास की सूचक होती है। पश्चिमी समाज की जब हम बात करते हैं तो ‘यूरोप’ का नाम

सबसे पहले आता है ‘यूरोपीय समाज की सभी गतिविधियों को केंद्र में रखकर हम विश्व समाज की सत्ता को समझ सकते हैं। जब भी समाज में लोगों के बीच हलचल होती है, वह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक या विचारधारा के जिस भी रूप में हो उसका सीधा प्रभाव तात्कालिक समाज के साथ-साथ अन्य पड़ोसी देशों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। ऐसे में भारत जैसे सुदूर देश पर अमेरिका का प्रभाव कुछ अलग है। जिसको यूरोपीय समाज की गतिविधियों के माध्यम से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश करेंगे।

पश्चिमी समाज यानि ‘यूरोपीय समाज’ के विकास पर यूनान और ग्रीक का प्रभाव रहा है। “यूरोप में मानव ईसा पूर्व 35000 के आस-पास आया। इसके बाद 7000 इस्वी पूर्व संगठित बसाव यानि बस्तियों के प्रमाण मिलते हैं। कांस्य युगीन सभ्यता (300 ईसा पूर्व) के समय यहाँ कुछ अधिक बसाव नहीं हुआ। मिश्र, इराक, चीन तथा भारतीय सभ्यता के मुकाबले। लेकिन 500 ईसापूर्व से रोमन और यूनानी साम्राज्यों का उदय हुआ जिसने यूरोप की संस्कृति को बहुत प्रभावित किया। सैन्य, कला और चिंतन के मामले में यूनानियों ने यूरोप के एक कोने में होते हुए भी पूरे यूरोप और बाद में विश्व भर में अपना प्रभाव जमाना।”[3] सन 1453 में इस्ताम्बुल के पतन के बाद यूरोप में नए जनमानस का विकास हुआ जो धार्मिक बन्धनों से ऊपर उठना चाहते थे। इसके पहले यहाँ पर ईसाई धर्म यहाँ का राज्य धर्म रहा। जिस धार्मिक बन्धनों से यहाँ के लोग ऊपर उठना चाहते थे। यूरोप की इसी घटना को पुनर्जागरण की संज्ञा दी गई। पुनर्जागरण ने लोगों को पारम्परिक विचारों को त्याग करने और व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक तथ्यों पर विश्वास करने पर जोर दिया। इस काल में भारत तथा अमेरिका जैसे देशों के समुद्री मार्ग की खोज हुई। सोलहवीं सदी में पुर्तगाली तथा डच नाविक दुनिया के देशों के सामुन्द्रिक रास्तों पर वर्चस्व बनाए हुए थे। इसी समय पश्चिमी यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात हो चुका था। सांस्कृतिक रूप से भी यूरोप काफी आगे बढ़ चुका था। साहित्य और कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। छपाई की खोज के बाद पुस्तकों से ज्ञान-संचार भी त्वरित गति से बढ़ गया था। साथ ही युद्ध रुका नहीं और लगातार

‘फ़्रांस की क्रांति, इंग्लैण्ड की क्रांति उसके बाद इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति’ के साथ-साथ रुसी क्रांति भी हुई।

‘प्रथम विश्व युद्ध’ जिसे ‘ग्लोबल वार’ की भी संज्ञा दी जाती है। यह युद्ध सन 1914-1918 के बीच लड़ा गया। इस घटना ने समाज में चली आ रही गतिविधियों को काफी हद तक प्रभावित किया। विश्व के लगभग सभी देशों ने आपसी लड़ाई में अपनी-अपनी आर्मी झोक दिया। भारत ने भी इंग्लैण्ड की तरफ से अपनी सेना भेजी थी। प्रथम विश्व युद्ध के समय मुख्य शक्तिशाली देश के रूप में ‘ब्रिटेन, जर्मनी और आस्ट्रिया हंगरी थे। जिनके पास सैन्य सेना के साथ हथियार बनाने की कंपनिया भी थी। इतना ही नहीं इनका उपनिवेश भी विश्व भर में फैला हुआ था। इनके अन्दर राष्ट्रवाद की भावना इतनी प्रबल थी कि इनकी विचार धारा ही थी अपना अलग देश बनाने की। इसलिए एक देश की शक्ति प्रदर्शन हेतु भी इन शक्तिशाली पश्चिमी देशों के बीच आपसी लड़ाईयां होती रहीं।

फ़्रांस के राजकुमार ‘प्रिंस आर्चड्यूक फर्डिनांड’ की हत्या के बाद ‘प्रथम विश्व युद्ध’ भड़क गया। इटली इस युद्ध में शामिल नहीं रहा। बाकी अन्य पश्चिमी देशों के बीच (फ़्रांस, जर्मनी, पेरिस, जापान आदि) युद्ध लड़ा गया। अमेरिका न चाहते हुए भी अंत में सन 1917 में इस युद्ध में शमिल हो गया। और सन 1918 में इस युद्ध की समाप्ति हो गयी। ‘प्रथम विश्व युद्ध’ समाप्त होने के बाद पश्चिमी देशों में काफी जन-धन की हानि हुई। जिसके बाद यह निर्णय लिया गया की दुबारा युद्ध जैसी घटना नहीं होगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। कुछ ही सालों बाद द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत हो गई। जिसे “टोटल वॉर” की संज्ञा दी गई अर्थात ‘पूर्ण युद्ध’। क्योंकि इस युद्ध में प्रथम युद्ध की तरह केवल सैनिक ही नही लड़ रहे थे बल्कि पूर्णता में सैनिक आर्मी के साथ देश के सभी लोगों पर हमला हुआ जिसमें आम जन तथा फैक्टरी में काम करने वालों को भी निशाना बनाया गया। ‘द्वितीय विश्व युद्ध’ की शुरुआत सन 1939 में हुई थी लेकिन कुछ लोगों का मानना है कि 1937 में ही हो गयी थी। जो कि सन 1945 ‘शीत युद्ध’ तक जारी रही। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान आम नागरिक और सैनिक इस युद्ध में काफी संख्या में मारे गए। इस युद्ध में यू. के.(यूनाइटेड किंगडम), फ़्रांस, यू.एस.ए, यू.एस.एस.आर, चीन, पोलैण्ड, युगोश्लिविया और

दूसरी तरफ 'ग्रीस' एक साथ और जर्मनी, इटली और जापान एक साथ युद्ध में शामिल हुए थे। भारत उस समय 'ब्रिटेन' का उपनिवेश था और ब्रिटेन ने भारत से वादा किया था कि इस युद्ध में भारत अगर उनका साथ देगा तो वह भारत को आजादी दे देंगे। इसलिए भारत भी ब्रिटेन की तरफ से युद्ध में शामिल हुआ। जिसमें बहुत ज्यादा की संख्या में भारतीय सैनिक भी मारे गए। जिनकी याद में दिल्ली के 'इण्डिया गेट मेमोरियल' को स्थापित किया गया है।

'द्वितीय विश्व युद्ध' के कारणों की परताल करने पर पता चला की प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद मुख्य शक्तिशाली शक्ति के रूप में विश्व में अपना प्रभुत्त्व कायम करने में कामयाब हो गये थे। जर्मनी, जापान और इटली इन तीनों शक्तिशाली राष्टों में सन 1933 में जर्मनी का चांसलर 'हिटलर' बन गया था। जिसने 'नाजीवाद'(National Socialist German Worker Party) को बढ़ावा दिया। 'नाजी पार्टी' जिसमें यहूदियों को कोई स्थान नहीं था। हिटलर यहूदियों का बहुत बड़ा विरोधी था। जिस कारण उनका सर्वनाश करवा दिया था।

जर्मनी में जिस समय नाजियों का तानाशाही शासन चल रही थी उस समय 'जापान' 'राष्ट्रवादी विचारधारा' का वाहक था और 'चीन' 'मार्क्सवादी विचारधारा' का वाहक था। इन दोनों देशों के बीच घमासान युद्ध जारी रहा। जापान ज्यादा शक्तिशाली होने की वजह से चीन के बहुत से भागों पर कब्जा कर अपना आधिपत्य कायम कर चुका था। जापान अपनी शक्ति का प्रयोग पूरे विश्व पर करता हुआ शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर रहा था। वहीं दूसरी तरफ 'अमेरिका' भी प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए सैन्य शक्ति के साथ-साथ अपनी आर्मी को दुगुना कर रहा था जिससे वह भी 'द्वितीय विश्व युद्ध' में शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अपनी ख्याति पा सके। दूसरी तरफ 'यूरोप' में शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में 'जर्मनी' उभर रहा था जिसकी सहायता 'इटली' ने भी कर रहा था। 'जर्मनी' और 'यु.एस.एस.आर' (सोवियत समाजवादी गणतंत्रों का संघ-1922-1991 तक अस्तित्व में रहा) दोनों ने मिलकर 'पोलैण्ड' पर हमला किया और 'पोलैंड' को जीतने के बाद आधा-आधा भाग बाँट लिया। इसी तरह अन्य देशों पर लड़ाई करते हुए 'जर्मनी' विजेता रहा। इस प्रकार जर्मनी के शासक

हिटलर का साम्राज्य फैलता गया। सन 1940 में ‘जर्मनी’ ने ‘जापान’ और ‘इटली’ के साथ समझौता कर एक साथ हो गया। सन 1941 में ग्रीस पर हमला हुआ और जर्मनी की जीत के बाद पूरे यूरोप पर हिटलर का कब्ज़ा हो गया। इसके बाद जर्मनी ने यू.एस.एस.आर.पर हमला करने की योजना बनाई। दूसरी तरफ जापान एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में चीन पर हमला कर चीन के अधिकांश भाग पर कब्ज़ा कर लिया था। दूसरी तरफ ‘अमेरिका’ ने जापान में होने वाली अपनी तेल की सारी सप्लाई बन्द कर दी। जिसकी वजह से ‘जापान’ को लगा की अब अमेरिका उस पर हमला कर सकता है तो क्यों न हम पहले ही उस पर हमला कर दें और हुआ यही ‘जापान’ ने ‘अमेरिका’ के बहुत ही शक्तिशाली बंदरगाह ‘बल्हार्बर हवाई द्वीप’ पर हमला कर दिया। उस समय अमेरिका के हवाई द्वीप अर्थव्यवस्था की धुरी के रूप में स्थापित था। जिसकी वजह से अमेरिका की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से डगमगा गई। उस समय तक अमेरिका ‘परमाणु बम’ जैसे खतरनाक हथियार का आविष्कार कर चुका था। सन 1942 से 1944 तक यू.एस.ए. ने जापान के सारे द्वीप को जीत लिया। अब बचे शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में ‘यू.एस.एस.आर.’, ‘यू.एस.ए.’ और ‘जापान’। अमेरिका ने जापान से बदला लेने के उद्देश्य से जापान के औद्योगिक नगर दूसरे शब्दों में कहे तो जापान के अर्थव्यवस्था की धुरी कहे जाने वाले जापान के ‘नागासाकी और हिरोशिमा’ नगर पर ‘परमाणु बम’ गिरा दिया। जिससे जापान की सारी अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो गई। इस भयानक घटना के बाद जापान पूरी तरह से टूट गया। अमेरिका द्वारा जापान पर ‘परमाणु बम’ के प्रयोग के बाद द्वितीय विश्व युद्ध का अंत हो गया। जर्मनी में भी हिटलर अपने तानाशाही की वजह से 29 अप्रैल सन 1945 में समर्पण करने के बाद आत्महत्या कर ली। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध की पूरी तरह से समाप्त की घोषणा कर दी गई।

‘द्वितीय विश्व युद्ध’ के दौरान भारी मात्रा में जनधन की हानि हुई और पूरा ‘यूरोप’ तबाह हो गया। जिसमें शक्तिशाली राष्टों में फ्रांस, जर्मनी और इण्लैंड अपनी सारी शक्तियां खो चुके थे। यही वजह है कि उनका उपनिवेश देशों से अधिकार कम होता गया। इस प्रकार विश्व में उपनिवेशों को ख़त्म करके सभी औपनिवेशिक राष्ट्रों को आजादी मिलने लगी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 15 अगस्त सन 1947 के

भारत जोकि अग्रेजों का उपनिवेश रहा अभी तक उसे भी आजादी मिली। और साथ ही साथ ‘यू.एन.ओ.’ (यूनाइटेड नेशन ऑफ़ ऑर्गेनाइजेशन-UNO) की स्थापना हुई। जिसका उद्देश्य ही था ‘तृतीय विश्व युद्ध’ को होने से रोकना।

‘द्वितीय विश्व युद्ध’ अर्थात सन 1944 के बाद दो शक्तिशाली राष्ट्र बचे ‘यू.एस.ए.’ और ‘यू.एस.एस.आर.’। दोनों विचारधारा के स्तर पर अलग-अलग थे। जहाँ यू.एस.ए.(संयुक्त राज्य अमेरिका) में ‘पूँजीवादी विचारधारा’ बोलबाला रहा। वही ‘यू.एस.एस.आर.’ मार्क्सवादी/साम्यवादी विचारधारा के स्तर पर अपने देश और समाज को विकसित करने का समर्थक किया। विश्व स्तर पर हो रहे युद्ध और उसकी भयानक स्थिति को देखकर यू.एन.ओ.(UNO) का गठन किया गया । जिसका उद्देश्य ही था युद्ध में प्रयोग हो रहे हथियारों पर पूरी तरह से रोक लगाना। जिसके परिमाणस्वरूप विश्व युद्ध जैसी घटना पर रोक लगायी जा सकी और फिर शुरू हुई विचारधारा की लड़ाई अर्थात ‘शीत-युद्ध’ का जन्म हुआ। विश्व स्तर पर देखा जाय तो शीतयुद्ध की शुरुआत सन 1947 से हुई जो सन 1989 तक अर्थात ‘सोवियत संघ के विघटन’ तक जारी रही। कुछ विद्वान सन 1991 ‘सोवियत संघ के विघटन’ से भी भूमण्डलीकरण की शुरुआत मानते हैं। विश्व स्तर पर शीतयुद्ध सन 1990-91 तक जारी रहा। दोनों देशों के बीच आमने-सामने की लड़ाई न होकर दो विचारधारा (पूँजीवाद और साम्यवादी) की लड़ाई थी। तथा धीरे-धीरे पूँजीवादी व्यवस्था अपने विचारों और पूँजी की शक्ति के बल पर पूरे विश्व पर अपना साम्राज्य फैलाने में सफल रही। पूँजीवादी विचारधारा के समर्थक शक्तिशाली देश अमेरिका और साम्यवादी विचारधारा के समर्थक शक्तिशाली संगठन सोवियत संघ दोनों पूरी दुनिया के सामने एक-दूसरे की नकारात्मक छवि बनाने की होड़ में लगे हुए थे। द्वितीय युद्ध की समाप्ति के बाद युद्ध में हथियारों का प्रयोग वर्जित हो गया था। यही कारण था विचारधारा की लड़ाई जिसे ‘शीत युद्ध’ की संज्ञा दी गई वह ‘कोल्ड वार कभी हॉट वार’ नहीं बन सका। लेकिन विचारधारा के स्तर पर काफी घमासान युद्ध दोनों पूँजीवादी और साम्यवादी विचारधारा के बीच लम्बे समय तक चलता रहा। अंतत: हुआ यह कि साम्यवादी अर्थव्यवस्था, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का सामना नहीं कर पायी।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बहुत तेजी से बढती हुई अपना प्रभुत्त्व पूरे विश्व पर स्थापित कर रही थी। और दूसरी तरफ साम्यवादी अर्थव्यवस्था अपने तक ही सीमित होने की वजह से उसकी विकासदर काफी हद तक गिरती गई। दूसरी तरफ अमेरिका की विकासदर दिन-प्रतिदिन बढती जा रही थी। अमेरिका ‘सैनिक’ और ‘सैन्य’ दृष्टि से भी बहुत अधिक शक्तिशाली अमेरिकी राष्ट्र के रूप में उभरने लगा। अंतत: पूँजीवादी समाज के निर्माण में सफलता मिल रही थी। सन 1945 में यू.एस.एस.आर. में मिखाइल गोर्बचार्य की सरकार बनी और उनकी सुधारवादी नीतियों को लागू किया गया। जिसके माध्यम से वे साम्यवादी अर्थव्यवस्था में काफी स्तर तक सुधार करना चाहते थे, जिससे मार्क्सवादी विचारधारा की अर्थव्यवस्था की विकासदर को बढाया जा सके। जिससे दोनों राष्ट्रों के बीच तनाव कम होता गया। पूँजीवादी विचारधारा की अर्थव्यवस्था के आवागमन से साम्यवादी विचारधारा का अंत मान लिया गया। जर्मनी में स्थित बर्लिन की दीवार जिसे पूँजीवादी और मार्क्सवादी विचारधारा के बीच बर्लिन की दीवार खड़ी थी। उसे भी गिरा दिया गया, जो पूंजीवादी और साम्यवादी विचारधारा के अनुयायियों द्वारा बनाई गई थी। इस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी एक हो गये। यहीं पर शीत युद्ध के अंत की घोषणा कर दी गई। कुछ लोग इसे 1991 से मानते हैं क्योंकि 1991 में यू.एस.एस.आर का विघटन हो गया और वह पंद्रह देश जो इससे अलग देश थे वे भी अलग होकर स्वतंत्र देश बन गये। जिससे यू.एस.एस.आर. की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार 26 दिसम्बर-1991 में शीतयुद्ध पूरी तरह समाप्त हो गया। और अमेरिका विश्व का एक मात्र शक्तिशाली राष्ट्र बना।

इस प्रकार अमेरिकी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की विचारधारा पूरे विश्व में अपना साम्राज्य फ़ैलाने में सफल हो गई। पश्चिमी सामाजिक परिदृश्य (यूरोप) अपने शुरूआती दिनों से ही काफी विकसित रहा है। कला, संस्कृति, साहित्य, धर्म और सैन्य विकास आदि दृष्टि से अपने धार्मिक विचारधारा ने निकलकर तार्किक विचारधारा के साथ वैज्ञानिक युग में बहुत पहले ही प्रवेश कर चुका था।

लेकिन जर्मनी और इंग्लैण्ड जैसे शक्तिशाली और विकसित राष्ट्रों के द्वारा आपसी शक्ति प्रदर्शन में और दूसरे विश्व के राष्ट्रों को अपना उपनिवेश बना अपने-अपने सामाज्य के विस्तार करते की वजह से यूरोप के सभी देश आपस में ही भयंकर युद्ध के शिकार हो अपनी उभरती अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर दिया।

सन 1990-91 में सोवियत संघ के विघटन के बाद पूरे विश्व पर अमेरिकी अर्थव्यवस्था और पूँजीवादी विचार धारा का सामाज्य स्थापित होना प्रारम्भ हो गया। जिसे वैश्वीकरण की संज्ञा दी गई। भारत भी इसकी लहर से अपने आपको बचा नहीं पाया। सन 1990-91 में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए 'पूँजीवादी अर्थव्यवस्था' को स्वीकारना ही पड़ा। और इस प्रकार 'बाजार' और 'सूचना प्रौद्योगिकी' के माध्यम से अमेरिकी अर्थव्यवस्था का सामाज्य फैलना शुरू हो गया। विदेशी व्यापार के साथ-साथ पूँजीवादी विचारधारा, रहन-सहन, समाज-संस्कृति, खान-पान शिक्षा-जगत, आदि सभी को प्रभावित करता हुआ अमेरिकी संस्कृति पूरे भारतीय समाज को वैश्वीकृत समाज में तीव्र गति से परिवर्तित करने में सफल हो गई है। जिसका प्रभाव तीसरी दुनिया के देश भारतीय समाज पर देखा जा सकता है।

2.2-वैश्वीकृत तीसरी दुनिया: भारतीय समाज

"बड़ी तेजी से दुनिया बनती जा रही है एक बड़ा गाँव
लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के लिए अब कहीं नहीं जाना पड़ता
हर चीज़ समान रूप से मिलने लगी है हर जगह
मनुष्यों के सम्बन्ध बहुत पतले तारों से बाँध दिए गए हैं
जो बात-बात में टूट जाते हैं
उन्हें जोड़ने के लिए फिर से जाना होता है बाजार
जहाँ तमाम स्वादिष्ट चीजें एक बे-स्वाद जीवन को घेरे हुए हैं
और इतनी आपाधापी है कि दाएं हाथ को बायाँ हाथ नहीं सूझता

हलाँकि दोनों हाथ लगातार तालियाँ बजाते हैं।”[4]

‘बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी’ के माध्यम से निर्मित नया समाज आभासी पटल पर बहुत ही आकर्षण तथा रोचकता प्रदान करने वाला है। भारतीय समाज वैश्विक दौर में वैश्वीकृत समाज की तरफ बहुत तेजी से अग्रसर है। आभासी दुनिया की आपाधापी में मानव क्षणिक सुख की प्राप्ति के लिए दिन-प्रतिदिन मानवीय संवेदनाओं से शून्य होता जा रहा है। समाज में सहज प्राप्त होने वाली हर एक वस्तु का मोलभाव सम्भव होता जा रहा है। वह चाहे भौतिक जगत में प्राप्त होने वाली वस्तु हो या भावना के स्तर पर ‘मानवीय सम्वेदना’ का सहज एहसास ही क्यों न हो।

आभासी दुनिया की चकमक में इंसान समृद्ध जरुर हो रहा है लेकिन किस स्तर पर इसका भान न इंसान को है और न ही वह करना ही चाहता है क्योंकि रूककर, थोड़ा ठहरकर सोचने के लिए उसके पास समय ही नहीं है। वर्तमान दुनिया बहुत तीव्रगति से गतिमान हो सफलता के पथ पर आगे ही केवल आगे बढ़ जाना चाहती है। “भूमण्डलीकरण ने भारत में राजनीति, अर्थनीति एवं समाज के प्रत्येक आयाम को प्रभावित किया है। भूमण्डलीकरण केवल एक दर्शन, विचारधारा, मूल्य एवं तकनीक का पर्याय नहीं है, बल्कि एक सुनिश्चित संस्कृति का संवाहक भी है। मीडिया का सीधा सरोकार सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक एवं राजनीतिक घटनाओं से होती है।”[5] भारतीय समाज तीसरी दुनिया के देशों में उच्च स्थान रखता है। यहाँ की अर्थ-व्यवस्था सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों का ही परिमाण है। भारत में वैश्वीकरण के तीव्र प्रभाव की मुख्य वजह यहाँ की अर्थ-व्यवस्था का विकासशील रूप और उच्च जनसंख्या दर है। वैश्वीकरण के माध्यम से भारत में ‘फ्री फ्लो’ रूप से ‘वस्तु, सेवा, व्यापार, श्रम और पूँजी का ‘मुक्त व्यापार प्रवाह’ के लिए उच्च जनसंख्या दर तथा निम्न विकासदर मुख्य वजह है। भारतीय परिवेश विकसित देशों की वस्तुओं के लिए एक बड़ा बाजार मुहैया करवाता है। जिस कारण ‘व्यापार, श्रम, पूँजी’ आदि का सीमा रहित एक-देश से दूसरे देश में मुक्त व्यापार प्रवाह कायम हुआ। जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय समाज पर पड़ रहा है। भारत के

सन्दर्भ में वैश्वीकरण और वैश्वीकृत समाज की रूपरेखा की बात करें तो भारतीय समाज सन 1990-91 के दौर में जब वैश्विक बाजार में 'फ्री फ्लो' रूप में पूँजी के आवागमन के लिए सीमा रहित राष्ट्र का एलान हुआ तो उस समय भारत आर्थिक संकट से गुजर रहा था। ऐसे समय में हमारे पास वैश्वीकरण को अपनाने के अलावा और कोई विकल्प नहीं दिखायी दे रहा था। भारत में वैश्वीकरण का प्रवेश सर्वप्रथम आर्थिक जगत के क्षेत्र में हुआ। लेकिन उसका प्रभाव वहीं तक सीमित नहीं रहा। और रह भी कैसे सकता था? किसी समाज के विकास में उसका अपना सामाजिक, राजनीतिक, अर्थ-व्यवस्था का आपसी सहयोगी सम्बन्ध होता है ऐसे में अगर कोई अंग प्रभावित होता है तो उसके पूरे का तंत्र प्रभावित होना लाजमी है।

'समाज' शब्द पर गौर करें तो 'समाज' शब्द 'सभ्य मानव जगत' की परिकल्पना का एक रूप कहा जाता है सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य सामाजिक प्राणी नहीं था। वे अपने जीवनयापन के लिए जंगल के पर्यावरण पर निर्भर रहा करते थे। उनका खुद के लिए खाने की व्यवस्था कर पाना ही मुश्किल था। क्योंकि सभी को पहले खुद को जीवित रखने की चिंता होती थी। फिर धीरे-धीरे ये झुण्ड के रूप में रहने लगे। इस प्रकार इनका भी सामाजिक स्वरूप बनता गया जिससे धीरे-धीरे भाई-चारा, सामाजिक भावना और एक-दूसरे पर विश्वास होने लगा तथा मिलकर रहने लगे। इस प्रकार यहाँ से समाज की शुरुआत होती है। समाज के सभी लोगों की जिम्मेदारियों को मिलाकर समान भाव से निर्वहन करने की जिम्मेदारी सभी समूह के लोगों को स्वयं महसूस होने लगी। धीरे-धीरे लोगों में जागरूकता बढ़ी। एक-दूसरे के प्रति मानवीय संवेदना का प्रादुर्भाव हुआ। समाज में सामाजिक मूल्यों का विकास हुआ तथा सभी अपनी-अपनी जिम्मेदारी से मानवीय मूल्यों के आधार पर समाज के सुधार व विकास में अपना योगदान देने लगे और आगे चलकर बहुत से सामाजिक मूल्यों को ध्यान में रखकर समाज में नियम-कानून बनाए गये जिसके द्वारा समाज के सभी लोगों को समान अवसर प्रदान किया जा सके।

भारतीय समाज प्राचीन काल से अपनी परम्परा और संस्कृति की महत्ता के लिए जाना जाता रहा है। भारतीय संस्कृति रीति-रिवाज, परम्परा, अलग-अलग धर्मों (हिन्दू धर्म, इस्लाम, बौद्ध, जैन, सिख

आदि) भाषा की विविधता, रहन-सहन, खान-पान संगीत कला और वास्तुकला आदि विविधता में भी एकता का संदेश देने वाला देश है। सभी धर्मों में सामाजिक मूल्यों, मानवता का पाठ पढ़ाने वाली संस्कृति पूरी दुनिया को परिवार कहने वाली 'वसुधैव कुटुम्बम' की भावना से ओतप्रोत रही है। साहित्य और कला के क्षेत्र में भारतीय परपंरा और संस्कृति समृद्ध रही है। प्राचीनकाल में भारतीय साहित्य कृतियाँ मौखिक रूप में उपलब्ध हैं। संस्कृत साहित्य की शुरुआत लगभग 5500 से 5200 ईसा पूर्व के बीच संकलित ऋग्वेद से सम्बन्धित हैं जो कि पवित्र भजनों का एक संकलन है। संस्कृत के महाकाव्य रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद आदि अमूल्य निधि के रूप में विद्यमान है।

प्राचीन काल से भारतीय समाज कर्म के आधार पर चार वर्णों में बंटा हुआ था। ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों वर्णों के माध्यम से भारतीय समाज बहुत सुचारू रूप से संचालित होता रहा। लेकिन समाज में समस्या तब उत्पन्न होने लगती है जब कर्म के आधार पर जिस समाज की संरचना हुई थी वह कर्म के आधार पर न होकर जाति बन गई और अब कर्म के आधार पर नहीं, जन्म के आधार पर 'वर्ण' को 'जाति' का नाम देकर समाज के विकास में अवरोध पैदा किया जाने लगा। इस विचारधारा की वजह से समाज का विकास रुकने के साथ ही साथ समाज की आधी आबादी से ज्यादा लोग कुछ चंद सवर्ण समाज के द्वारा हर तरह से शोषण के शिकार होने लगे। इस व्यवस्था का सामना वर्षों तक स्त्री, वैश्य तथा ज्यादा हद तक शूद्र वर्ण के लोगों को झेलना पड़ा है। जिसका बदला हुआ रूप आज भी समाज में विद्यमान है। इस जन्म आधारित समाज की व्यवस्था ने समाज की एकता को खण्डित किया।

आधुनिक काल में आकर सर्वप्रथम 'स्त्री शिक्षा' और 'शूदों' की स्थिति सुधार हेतु 'सावित्रीबाई फूले' और 'ज्योतिबाफुले' के संघर्षों के द्वारा समाज की नींव पड़ी। आगे चलकर 'डॉ. भीमराव अम्बेडकर' के संघर्ष ने स्त्रियों और शूद्रों की शोषण से मुक्ति के लिए सवाल उठाये ही नहीं भारतीय संविधान में सुधार हेतु नियम-क़ानून भी बनाए। यह नियम-क़ानून संविधान में स्वीकार तो कर लिया गया और लागू भी हो गया। लेकिन समाज के उच्च वर्ग के लोगों के बीच इन्हें फिर भी सहज स्वीकार नहीं किया। जहाँ तक हाशिये के समाज के लोगों के लिए शोषण से मुक्ति का प्रश्न है वह चाहे स्त्री हो या दलित हो या

साधन विहीन अपाहिज सभी को स्वयं की पहचान करवाने वाला और खुला आसमान मुहैया कराने वाला वैश्वीकरण तथा वैश्वीकृत समाज की देन है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है।

वैश्वीकरण उत्तर-आधुनिकता के गर्भ से निकली एक प्रवृत्ति है। भारतीय परिवेश में देखा जाय तो उत्तर-आधुनिकता ने विभिन्न विमर्शों को केन्द्र में लाने का काम किया है। हाशिये के समाज में शामिल मुख्यत: स्त्री, दलित और आदिवासी। इसके अनुयायियों ने पूरा का पूरा विमर्श ही खड़ा कर दिया है। वैश्वीकरण की विचारधारा के माध्यम से कहीं न कहीं हाशिये के समाज की आवाज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श के रूप में विद्वतजनों के बीच बहस का विषय बना हुआ है। इन सभी विमर्शों का आधार अपने 'स्व के अस्तित्त्व' की पहचान करने से है। इन विमर्शों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में वह अछूता हिस्सा जिसके इतिहास को कोई जगह सच्चे रूप में नहीं मिल पायी थी उस वर्ग ने स्वयं अपनी लेखिनी के माध्यम से अपना स्थान दर्ज करवाने का काम किया है। वर्तमान समय में साहित्य, समाज और राजनीति सभी जगहों पर इस विमर्श ने अपना परचम लहराया है। किन्तु सच्चाई इससे कोसों दूर है, भले ही भूमण्डलीकरण के कारण ये तत्व केंद्र में आ रहे हैं। किन्तु आज भी समाज में इनका शोषण ख़त्म होने का नाम नहीं ले रहा है।

उदारीकरण जैसी व्यवस्था ने कहीं न कहीं आदिवासियों की जमीन से उन्हें बेघर कर रहे हैं। समाज में स्त्री की दशा दिन-प्रतिदिन दयनीय होती जा रहा थी। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वैश्वीकरण के युग में स्त्री को अपनी परम्परागत छवि से बाहर आने का मौका मिला है। लेकिन क्या शोषण से भी मुक्ति पूरी तरह से मिल चुकी है? ऐसी घोषणा नहीं की जा सकती। इस वैश्विक दौर में स्त्री के शोषण का रूप बदल गया। कहीं न कहीं स्त्रियों को आज भी उसकी देह के लिए उसे इस्तेमाल किया जाता है। चाहे वह विज्ञापन की दुनिया में हो या कॉल गर्ल की दुनिया में हो।

सच कहे तो स्त्रियाँ आज अपने घर में ही सुरक्षित नहीं हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में बदलते सामाजिक परिदृश्य ने हाशिये के समाज को विमर्श की दुनिया में लाकर खड़ा कर दिया है इन विमर्शों को आगे

बढ़ने में साहित्य की अहम भूमिका रही है। आज साहित्य की ही देन है कि बड़े-बड़े सेमिनार में हाशिये के समाज (स्त्री, दलित, आदिवासी) पर विमर्श का मंच लगता है। और ये वर्ग स्वयं अपने सवालों के साथ मंच पर बहस कर रहे हैं। यह मंच मुहैया करवाने काम वैश्वीकरण के प्रभाव से ही संभव हो पाया है। जब वैश्विक स्तर पर सारी घटनाओं तथा जानकारी का आदान-प्रदान सहजता से पहुँच पाने में सफल हुआ है। “भारतीय समाज एक प्राचीन एवं परम्परागत समाज है। विविधता भारतीय समाज की एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता रही है। भारतीय समाज की विविधता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है की यहाँ 2000 जातियां एवं उप-जातियां, 22000 भाषाएँ और आलू पकाने की 3000 विधियाँ पायी जाती हैं। इस विविधता के साथ-साथ भारतीय समाज में नए परिवर्तनों को आत्मसात करने की अभूतपूर्व क्षमता भी है। ऐसे में भूमण्डलीकरण के दौर में बाजारीकरण की संस्कृति, भारतीय समाज एवं संस्कृति को परिवर्तित कर रही है। भूमण्डलीकरण की संस्कृति ही भारतीय प्रभावों के फलस्वरूप परिवर्तित हो जाय।”[6] भौगोलिक दृष्टि से भी भारतीय समाज और उसकी विकास प्रक्रिया को भी समझा जा सकता है।

मानव के विकास और उत्थान की दृष्टि से देखे तो तीन विचारधाराएँ काम कर रही थी। पहला निश्चयवाद या पर्यावरण 2.सम्भववाद और तीसरा नव-निश्चयवाद। प्राचीनकाल से 18वीं सदी तक समाज में ‘प्राकृतिक वातावरण’ का बोलबाला रहा है। वातावरण का प्रभाव मानव जीवन के रहन-सहन शरीर की संरचना, गठन, रंग-रूप, आचार-विचार, सामाजिक संगठन, खान-पान, भेष-भूषा आदि पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। यह निश्चयवाद का घोतक है। 20वीं सदी तक आते-आते कहीं न कहीं वातावरणवाद का प्रभाव कम होता नजर आता है, मनुष्य की भागीदारी का रूप दिखाई पड़ने लगता है। मानव अपनी बुद्धि, कौशल, चातुर्य एवं सामर्थ्य द्वारा सर्वोत्तम संभावनाओं का चयन कर लेता है। इस प्रकार धीरे-धीरे प्रकृति की सत्ता सर्व-शक्तिमान नहीं रह जाती है और मनुष्य की बुद्धि, कौशल, चातुर्य और सामर्थ्य को प्रधानता मिलने लगती है। यह विचारधारा ज्यों-ज्यों आगे बढती है मनुष्य प्रकृति के योगदान को नकारता हुआ स्वयं को श्रेष्ठ मानने लगता है जिसके परिणामस्वरूप ‘प्राकृतिक संरचना’

का विनाश शुरू हो जाता है। और प्रकृति न चाहते हुए भी विनाश का रूप धारण करने पर मजबूर हो जाती है। जिस कारण मनुष्य अपनी बुद्धि विवेक के बल वापस 'प्रकृति की ओर लौटो' (Back to Nature) का नारा दिया गया।

तीसरी विचारधारा 'नव-निश्चयवादी' समर्थकों की रही है जिनका मानना था कि न हम प्रकृति के योगदान को उसके प्राकृतिक रूप को नकार सकते हैं और न ही मनुष्य के बुद्धि विवेक की शक्ति को। इसलिए तीसरी विचारधारा के विचारक दोनों विचारधारा के बीच का रास्ता निकलते हैं– 'नव निश्चयवाद'। इस विचारधारा के प्रबल विचारक एवं समर्थक 'ग्रिफिथ टेलर' रहे, जो निश्चयवादी तो हैं ही लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक विकास की प्रगति को भी नहीं नकार हैं। टेलर के अनुसार- 'मानव न तो प्रकृति का दास है और न ही उसका स्वामी तथा न ही मानव के कार्य करने की क्षमता असीमित है। वास्तव में न तो प्रकृति का मानव पर पूरा नियंत्रण है, और न ही मानव प्रकृति का विजेता है। दोनों का एक-दूसरे से क्रियात्मक सम्बन्ध है। प्रगति हेतु मानव के लिए आवश्यक है कि मानव प्रकृति का सहयोग प्राप्त करे। यही नव-निश्चयवाद है।' "साहित्य समाज की चेतना में सांस लेता है। वह समाज का वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दुःख, हर्ष–विषाद, आकर्षण–विकर्षण के ताने–बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव-जाति की आत्मा का स्पंदन ध्वनित होता है। वह जीवन की व्याख्या करता है, इसी से उसमें जीवन देने की शक्ति आती है। वह मानव को, उसके जीवन को लेकर ही जीवित है, इसीलिए वह पूर्णत: मानव-केन्द्रित है। साहित्य उसी मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है और मानव सामाजिक प्राणी है। मानव सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का जहाँ वह स्रष्टा होता है, वहीं वह उनसे स्वयं भी प्रभावित होता है।"[7]

इस प्रकार साहित्य का उद्देश्य मानवमात्र का हित साधना है। ऐसा करके वह सामाजिक उन्नति में सबसे बड़ा सहयोग प्रदान करता है। समाजशास्त्र की तरह साहित्य का मुख्य सरोकार होता है– मनुष्य का सामाजिक जगत, उस जगत के प्रति उसकी अनुकूलता और उसे बदलने की इच्छा। उपन्यास औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा है। अत: उसमें परिवार, राजनीति तथा शासन के साथ मनुष्य के

संबंधों के सामाजिक जगत के पुन:सृजन का ईमानदार प्रयास दिखाई पड़ता है। उसमें परिवार और अन्य संस्थाओं के भीतर उसकी भूमिका के साथ विभिन्न समुदायों और सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष और तनाव का चित्रण भी किया जाता है। विशुद्ध दस्तावेज के अर्थ में उपन्यास का वास्ता काफी हद तक उन्हीं सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं से पड़ता है जिनसे समाजशास्त्र का।"[8]

वैश्वीकरण ने पारम्परिक समाज की पूरी संरचना को ही बदल दिया है, जिसका रूप हमें 21 वीं सदी में लिखे जा रहे साहित्य की लगभग सभी विधाओं में देखने को मिल जायेगा। वह काव्य जगत हो या कथा-साहित्य जगत। हिन्दी उपन्यास के समाज की बात करें तो प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों का समाज और प्रेमचन्द के बाद समकालीन उपन्यासों के समाज में जमीन आसमान का अंतर हो गया है। सन 1990 के पहले साहित्य का समाज और भाषा में मानवीय संवेदना संस्कार व्यवहार समाज संस्कृति सामाजिक आपसी सम्बन्धों में मधुरता आपसी प्रेम और सौहार्द की भावनाओं से ओतप्रोत जीवंत समाज था। प्रेमचंद का साहित्य समाज का वह आईना है। जिसने दशकों पहले समाज में व्याप्त गरीबी, शोषण, वर्गवाद और समाज के ठेकेदारों की जो तस्वीर दिखायी है, वह आज भी हु-बहु वैसी ही है।

आधुनिकता के प्रवेश से समाज में जागरूकता, चेतना और सामाजिक कुरीतियों और बुराइयों के प्रति सचेत होता हुआ समाज अपने मानवीय मूल्यों के साथ विकास की ओर अग्रसर होता हुआ विश्व में अपनी भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पहचान बनाए हुए था। वर्तमान समाज वैश्वीकरण के प्रभाव की आंधी में बाजार बनता जा रहा है और समाज के लोग केवल उपभोक्ता बन कर रह गए हैं। समाज के हर एक तत्वों का वह चाहे सभ्यता हो संस्कृति हो खान-पान हो कला-साहित्य हो रहन-सहन हो सभी का बाजारीकरण हो रहा है। जिसका मानक अमेरिकी समाज का वैश्वीकरण है। जिसका एक ही मानक आधार और विचारधारा है वह है पूँजी और पूँजीवाद। उसी के मानक और बनाएं फार्मूले पर सभी तीसरी दुनिया के लोग चलने को मजबूर हैं अगर वह कदम से कदम मिलकर नहीं चल पाए तो उन्हें पिछड़ा समाज या असभ्य समाज की श्रेणी में डाल दिया जायेगा जहाँ वो बिना किसी सक्रियता के स्वत: नष्ट हो जायेंगे। वैश्वीकरण का प्रभाव इतना तीव्र है कि बाजारीकृत व्यवस्था और सूचना

टेक्नोलॉजी से अनजान व्यक्ति की दुनिया कूप मण्डूक से ज्यादा कुछ भी नहीं रही। इस पश्चिमी वैश्वीकृत की खासियत यह भी रही कि भारतीय समाज में व्याप्त हजारों शोषण के तंत्र को भी धराशायी कर सभी तरह के भेद-भाव से अलग कर समाज को अब केवल दो वर्गों में बाँट दिया है। वह किसी भी जाति, वर्ग-समूह का व्यक्ति अमीर और गरीब हो सकता है। इस वैश्वीकृत समाज में समाज एक बाजार है और लोग उपभोक्ता से ज्यादा और कुछ नहीं जिसे बाजारी संस्कृति में लोगों के बीच उपभोग समाज (Consumer Society) ग्राहक और उपभोक्ता से ज्यादा और कुछ नहीं बच पायेगा। वैश्वीकरण की चकाचौध में अगर सच में किसी का विकास हो रहा है तो पूंजीपति वर्ग के लोगों का मध्य वर्ग गरीब लोगों का जितना विकास हो रहा है जिससे ज्यादा बहुत आधुनिक बीमारियों (ऊब, घुटन, अकेलापन, संत्रास, स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित आदि) के शिकार होते जा रहे हैं। अत्यधिक की चाह में न वह अमीर बन पा रहे हैं और न ही ऐसे लोग सामान्य जीवन ही व्यतीत करना चाहते है। ऐसे में मध्य वर्ग की समाज में स्थिति हलचल भरी जिन्दगी जीने को मजबूर है जहाँ न सुख-शांति है और न श्रेष्ठता और न ही समाज में लोकप्रियता है। सभी की सारी पहचान धूमिल हो सार्वभौम हो चुकी है। "भूमण्डलीकृत भारत एक सम्पूर्ण इकाई में नहीं, बल्कि दो अलग-अलग इकाईयों के रूप में देखा जा सकता है। पहली इकाई है- आम भारतीयों का भारत, जो विशेषकर गाँवों, कस्बों, छोटे शहरों एवं नगरों में निवास करता है।

भारत में यह वर्ग अपने जीवनयापन के लिए राजसत्ता से कहीं अधिक ईश्वर पर भरोसा करता है। भारतीयों का यह बड़ा वर्ग सामान्यत: गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करता है या फिर गरीबी रेखा से ठीक ऊपर बना हुआ है। दूसरी इकाई है इण्डिया, जो केवल महानगरों और बड़े–बड़े शहरों में निवास करता है। यह देशी अमेरिकन सा जीवन जीता है। वैश्वीकरण (1990-91) के दौर में टेक्नोलॉजी और जन-संचार माध्यम ने प्रवेश कर पूरे अकादमिक दुनिया को एक तरह से बहस (डिबेट) के बीच खड़ा कर दिया है। भारतीय समाज पर वैश्वीकरण के प्रभाव को तीन रूपों में देखा व समझा जा सकता है-

- **वैश्वीकरण (**Globalisation**)**

- **स्थानीयकरण (**Localisation**)**
- **संकरीकरण (**Hybridisation**)**

वैश्वीकरण(Globalisation) इसे समाज के कुलीन वर्गों (elite class) के बीच उनके रहन-सहन और संस्कृति के बीच देख और समझ सकते हैं। वैश्वीकरण से अगर किसी को फायदा हुआ है, और हो रहा है तो वह व्यापारी वर्ग के करोड़पति समूह के लोगों को।

स्थानीयकरण(Localisation) से तात्पर्य समाज के उन तबके के लोगों से है। जिनको बहुत मेहनत के बाद शाम को रोटी नसीब होती है। उनके बीच बहुत ही सहज तरीके से यह 'ग्लोबल-विलेज' के नाम पर उनके समाज के लोगों को सुविधाएँ मुहैया करा रहा है। जिसे स्थानीयता के विकास की संज्ञा दी जाती है। लेकिन इसका मतलब विकास के नाम पर लूटना है। ग्रामीण स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी और बाजारीकरण के आ जाने से गाँव की आबोहवा में काफी बदलाव आ गया है। अब गाँव-गाँव नहीं लगता अर्थात गाँव में शहर आ पहुंचा है।

संकरीकरण (Hybridisation) 'लोकल और ग्लोबल' दोनों का मिला रूप जो पूरी तरह से मध्यवर्ग के लोगों के बीच फल–फूल रहा है। जिससे वह उत्तर-आधुनिक बनने की कल्पना में अपनी ही भाषा, संस्कृति और अन्य घटनाओं एवं वस्तुओं को संकरणीयकृत किए जा रहे हैं। हमारा समाज और संस्कृति पूरी तरह बहु-सांस्कृतिक होती जा रही है, जहाँ पर सारी चीजें अपने-अपने स्तर पर संकरण की शिकार हो रही हैं। संसार की सभी चीजें इंसान से लेकर वस्तु तक, सजीव प्राणी से लेकर निर्जीव प्राणी सभी अपने-अपने स्तर पर संकरण की शिकार हो रही हैं। साहित्य, संगीत, कला सभी का मिश्रण संभव हो गया है। वैश्वीकरण निजी-अस्तित्व और पहचान को भी धूमिल कर रहा है। समाज की पुरानी पीढ़ी को आज भी अपनी पहचान और संस्कृति की ज्यादा परवाह है। वहीं दूसरी तरफ आज की नई पीढ़ी अपने नए समाज और संस्कृति को ही स्वीकार कर रही है। उनके लिए समाज की बनी-बनाई मान्यताओं, सामाजिक रीति-रिवाज आदि से आकर्षण खत्म होता जा रहा है। उन्हें वैश्वीकृत समाज की आभासी

दुनिया अर्थात 'मॉल संस्कृति' ही पसन्द आ रही है। वैश्वीकरण के पहले का समाज और समाज के लोग प्रकृति को वरीयता देते थे और उसके अस्तित्व से ही अपना अस्तित्व समझते थे। वर्तमान दुनिया तरंगों और टेक्नोलॉजी की दुनिया बनती जा रही है। जहाँ आभासी दुनिया, मीडिया, संचार, और टेक्नोलॉजी पर ही उनका अस्तित्व कायम है, इसके बिना वर्तमान दुनिया की कल्पना सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वैश्वीकरण का यह तीव्र दौर इसी तरह जारी रहा तो समाज और संस्कृति का यहाँ तक की प्रकृति का भी कोई यथार्थ बच नहीं पाएगा! क्योंकि यथार्थ दुनिया भयावह होती जा रही है, और समाज के लोग आभासी वास्तविकता (Virtual Reality-likes-Artificial Environment) को ही यथार्थ मानकर उसी दुनिया में खुश है; उन्हें कल की कोई परवाह नहीं है और न ही वास्तविक दुनिया का भान वह करना ही चाहते हैं।

वर्तमान समाज टेक्नोलॉजी और मीडिया संचार की कैद में होते हुए भी वे अपने आपको सभी तरह से स्वतन्त्र महसूस कर रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि वह पहले की अपेक्षा आज ज्यादा कैद हुए हैं। और साथ ही साथ टेक्नोलॉजी, संचार मीडिया के गुलाम भी। सूचना और तकनीक वैश्वीकरण के मुख्य वाहक के रूप में काम कर रहे हैं, जिसके माध्यम से विश्व की दूरी (एक स्थान से दूसरे स्थान की) काफी कम हुई है, लेकिन आपसी सम्बन्धों में एक-दूसरे के काफी करीब होते हुए भी दूरियाँ काफी बढ़ी हैं। इस प्रकार समाज में होने वाले परिवर्तनों की गति काफी तीव्र हुई है। समाज की मुख्य संरचना परिवार और समुदाय से बनती है। वैश्वीकरण ने पारिवारिक संरचना को बहुत व्यापक स्तर पर बदला है। पहले के समाज की सामाजिक संरचना की बात करें तो समाज में सयुंक्त परिवार की प्रथा थी, लेकिन आज वह प्रथा टूट रही है। उसकी जगह वर्तमान में एकाकी परिवार और समुदाय ने अलगाववाद का रूप ले लिया है। 21वीं सदी का मनुष्य सामाजिक कम व्यक्तिनिष्ठ होता चला जा रहा है। इतना ही नहीं स्वार्थी भाव से वह केवल अपने फायदे और रुतबे के लिए सभी के कन्नी काटने से कभी चूकता नहीं है।

'शिक्षण संस्थान' की बात करें तो वह भी सामाजिक संरचना के अन्तर्गत आता है। इस संस्था का समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रहा है और आज भी है। किसी भी समाज की संरचना का विकास

शिक्षण-संस्थान पर निर्भर करता है। शिक्षा 'सभ्य मानव जगत' का निर्माण करती है जिससे 'समाज' की रूप-रेखा सही अर्थों में हमारे सामने प्रकट होती है। लेकिन वैश्वीकरण ने शिक्षा को टैक्नोलोजी के आधार पर मशीनीकृत कर दिया है। सभी मानवीय-मूल्यों को व्यापार और व्यवसाय का केन्द्र बना दिया है। आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना मात्र होकर रह गया है। वैश्वीकरण का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को समाजशास्त्री विचारक अर्जुन अप्पादुरई के अनुसार (1996) समाज और वैश्विक संस्कृति के बीच के सम्बन्धों को पाँच आयाम से देख सकते हैं-

(1)ethno (मानवजाति सम्बन्धी वर्णन)- scape (race(प्रजाति), Culture(संस्कृति) or language(भाषा), Nation(राष्ट्र), Class(वर्ग), Caste(जाति), Tribe(जनजाति).etc), (2) Media-scape,मीडिया-क्षेत्र (3) Finance-scape, आर्थिक क्षेत्र (4) Idea-scape, विचार-क्षेत्र (5) Techno-scape तकनीकी क्षेत्र।[9] इस प्रकार वैश्वीकरण ने मानव सम्बन्धी (प्रजाति, संस्कृति, भाषा, राष्ट्र, वर्ग, जाति, जनजाति) सभी को प्रभावित किया है। ये सभी अपने मूल रूप से परिवर्तित होकर विकसित और प्रभावित हुए हैं। साथ ही साथ मीडिया क्षेत्र का स्वरूप रेडियों टेलीविजन समाचार पत्रों से काफी आगे निकल गया है। मीडिया की पहुँच काफी तीव्र होने के साथ उसका क्षेत्र भी काफी विकसित हुआ है। पहले की अपेक्षा वर्तमान समय में मीडिया संविधान का चौथा स्तम्भ कहे जाने को सार्थक करता हुआ समाज के विकास में काफी हद तक सफल हुआ है। और हो भी रहा है।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान रही है वैश्वीकरण ने अर्थ-व्यवस्था के द्वारा ही प्रवेश कर भारतीय समाज को ही बाजार में तब्दील कर व्यापार और उपभोग, उपभोक्तावादी संस्कृति का साम्राज्य फैलाता जा रहा है। विचारधारा, सोचने समझने के क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुआ है जिसका परिणाम है कि मानवीय सम्वेदना शून्य होती जा रही है। समाज की संरचना केवल 'मैं' साम्राज्य की निर्मित कर रही है जिससे दिनप्रतिदिन मानवीय सम्वेदनाओं तथा सामाजिक मूल्यों का हनन हो रहा है। पर्यावरणीय जगत की बात करे तो वास्तविक दुनिया लुप्त होती जा रही है तथा सहजता समाप्त होती जा रही है। मासूमियत का क़त्ल होता जा रहा है वर्तमान दुनिया कृत्रिम और आभासी जगत में दिन-प्रतिदिन परिवर्तित होती जा

रही है। प्राकृतिक पर्यावरण का नाश विनाशकारी घटना का सूचक बनता जा रहा है। पर्यावरण का ह्रास मानव जगत के लिए विनाश का सूचक है फिर आज की पीढ़ी आभासी दुनिया की चकाचौंध में ही खुश है। उसे कल की कोई परवाह नहीं। वह क्षणिक सुख की प्राप्ति में बिना प्रकृति के अस्तित्व के बारे में सोचे समझे तीव्रगति से सबकुछ पा जाने की होड़ में खुद के पैर में खुद ही कुल्हाड़ी मारने का काम कर रहे हैं। "भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला एवं दर्शन का भूमण्डलीकरण किया है। योग, कला और अन्य सांस्कृतिक विशिष्टताएँ आज भारत की भौगोलिक सीमा से निकलकर समूचे विश्व में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर रही हैं। दूसरी तरफ हम देखते हैं कि परिवर्तन ज्यादा चिंताजनक प्रतीत होता है। भूमण्डलीकरण की संस्कृति (विशेषकर एक ख़ास जीवन-मूल्य,जीवन-दृष्टि, जीवनशैली) ने भारतीय समाज की बुनियादी आस्था एवं आधार को झकझोर कर रख दिया है।"[10] वैश्वीकरण के बाद भारत बहुत ही तेज गति से विकास की पथ पर अग्रसर हुआ है इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता। सन 1990-91 के पहले का भारत उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का महात्मा गांधी के सपनों का भारत था जहाँ प्रेम सौहार्द आपसी प्रेम और मानवता थी सहज रूप से सामाजिक पक्ष ज्यादा मजबूत था। मानवीय मूल्यों की अहमियत थी। प्रकृति का महत्त्व था। पूरी दुनिया वास्तविकता का भान कराने वाली थी। सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक विचारधारा आदि सभी स्तरों पर तीसरी दुनिया के देश यथार्थ जगत की झाँकी प्रस्तुत करते रहे हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारत एक विशाल देश है, जिसमें अनेक प्रकार की सामाजिक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। भारतीय समाज और संस्कृति नैतिक मूल्यों की धरोहर रही है। 21वीं सदी का भारत 'सूचना-प्रौद्योगिकी और बाजार व्यापार' के माध्यम से केवल मुनाफा कमाने मुख्य लक्ष्य हो गया है। हम बाह्य जगत में जीतनी तेजी से विकास कर रहे हैं आंतरिक जगत या दूसरे शब्दों में कहे तो मानवीय संवेदना व आपसी सौहार्द शून्य होती चली जा रहा है। वर्तमान दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है और विकास की ओर तीव्रता से अग्रसर भी है। मानवीय सम्बन्धों में उतनी ही पीछे छूटती जा रही है। वैश्वीकरण के सम्बन्ध में निर्मला जैन के शब्दों में कहे तो- "भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में जब

पश्चिमी सभ्यता में लगभग समूची मानवीय चेतना को स्वार्थग्रस्त सुविधाभोगी मूल्यों द्वारा आविष्ट कर लिया है, भारतीय संस्कृति ही मेरे विचार में एक मात्र ऐसी वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत कर सकता है, जिसके आलोक में मनुष्य अपनी उन अंतर्निहित संभावनाओं को उजागर कर सके, जो तेजी से विलुप्त होती जा रही हैं।"[11]

2.3- हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वैश्वीकृत सामाजिक परिदृश्य

हिन्दी साहित्य के उपन्यास विधा के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का कथन है- "वर्तमान जगत में उपन्यास की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है। उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रयत्क्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं। समाज के बीच खानपान के व्यवहार तक में जो भद्दी नक़ल होने लगी है, गर्मी के दिनों में भी सूट-बूट कसकर टेबुलों पर जो प्रीतिभोज होने लगा है- उसको हँसकर उड़ाने की सामर्थ्य उपन्यासों में ही है। लोक या किसी जन समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चित्य परिस्थियाँ खड़ी होती रही हैं। उनको गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी विस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यासों का काम है।"[12] 21वीं सदी का समाज वास्तविकता से ज्यादा आभासी पटल का निर्माण करने वाला दौर है। इस दौर में किसी भी साहित्य की विषय-वस्तु यथार्थ धरातल पर सहज सामाजिक परिदृश्य का चित्र प्रतिबिंबित नहीं कर सकता है। क्योंकि वर्तमान समाज का परिदृश्य भारतीय होते हुए भी वह भारतीय नहीं वैश्वीकृत हो चुका है। ऐसे में हम केवल आभासी दुनिया का ही भान कर सकते हैं। आने वाली पीढियां वास्तविक दुनिया को कहानी और कल्पनाओं में ही महसूस कर पाएंगी। प्राकृतिक दृश्यों का वास्तविक दृश्य न सजीव रूप में दृष्टव्य हो पायेगा और न ही निर्जीव रूप में।

21वीं सदी का जीवंत समाज मशीनीकृत बाजार और उपभोक्ता के माध्यम से आभासी पटल पर संचालित होगा। बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी का साम्राज्य पूरे विश्व बहेलिये की तरफ फायदा और विकास रुपी तरगों के जाल में कैद कर उलझा दिया है। हम दिन-प्रतिदिन विज्ञान की प्रगति, टेक्नोलॉजी और बाजारीकृत अमेरिकी संस्कृति, और मशीनीकृत आभासी दुनिया की चकमक में वास्तविक दुनिया, प्राकृतिक वातावरण का दोहन कर बनायीं हुई अपनी ही आभासी दुनिया में फंसते जा रहे हैं। कवि रामधारी सिंह दिनकर ने ‘कुरुक्षेत्र’ के माध्यम से बहुत पहले ही आगाह कर दिया था कि-

> “सावधान मनुष्य अगर विज्ञान है तलवार।
>
> तो फेक दे उसे तज मोह स्मृति के पार।”[13]

पूँजीवादी विचारधारा का वाहक ‘अमेरिकी अर्थव्यवस्था’ तीसरी दुनिया के देशों में अपना साम्राज्य तीव्र गति से फैला रहा है। अमेरिकीकरण के इस प्रभाव से कोई राष्ट्र नहीं बचा पायेगा। वैश्वीकरण की चपेट में सभी शामिल हो चुके हैं। ऐसे में वहीं बच सकता है जिसे अपने अस्तित्व और उसकी महत्ता की पहचान होगी। समाज में बदलाव की आहट को उस समय के लिखे गए साहित्य में महसूस किया जा सकता है। समाज की सभी गतिविधियों को साहित्यकार ने अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उकेरने का काम किया है। साहित्य की उन्हीं विधाओं में उपन्यास एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में समाज की आहट को मुकम्मल रूप से रेखांकित करने का काम करता है।

21वीं सदी के उपन्यासों की विषय-वस्तु को रेखांकित करने से पहले 20वीं सदी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के पूर्व और बाद के उपन्यासों की विषय-वस्तु और उस समय के समाज का एक बार अवलोकन करना आवश्यक हो जाता है। प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासों का समाज और उसकी विषय-वस्तु काल्पनिक और जासूसी रही है। उस समय के उपन्यासों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन तक ही सीमित रहा। हाँ, यह बात अलग है कि प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी में लिखे गए उपन्यासों की वजह से हिन्दी पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई। प्रेमचन्द और प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यासों का विषय, समाज का यथार्थ चित्र

मानवीय सम्वेदना और उनकी समस्याओं को दूसरे शब्दों में कहे तो मध्यवर्गीय समाज और हाशिये के समाज की वास्तविक दुनिया के चित्र को उकेरने का काम किया गया। इतना ही नहीं हाशिए के समाज ने स्वयं स्त्री, दलित और आदिवासियों ने साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अपने यथार्थ समाज को उपन्यासों का विषय बनाकर लेखनी चलाई। पश्चिमी वैश्विक समाज का प्रभाव तीसरी दुनिया के देशों पर बहुत तेजी से पड़ रहा है। 21वीं सदी का भारत वैश्वीकृत समाज बन चुका है। इस वैज्ञानिक और मशीनीकरण के युग में समाज की सामाजिकता सहजता मानवीय सम्वेदना सब शून्य पड़ते जा रही है। समाज में मानवीय सम्वेदना वस्तु मात्र बन कर रह गए हैं। वास्तविक दुनिया का समाज 'टेक्नोलॉजी अर्थात 'सूचना प्रौद्योगिकी' और समाज 'बाजारीकृत समाज' में मानवीय मूल्य वस्तु और इंसान उपभोक्ता उससे इतर सब चीज वस्तु हैं जिसका कोई भी खरीददार बन सकता है जिसके पास पूँजी है। जिसमें वास्तविक मानवीय मूल्यों, अपनी सभ्यता, संस्कृति और आपसी सम्बन्धो के लिए कोई जगह नहीं रह गई है। इस मशीनी और वैज्ञानिक युग में मानवीय रिश्तों से उनकी सम्वेदनाओं से खेलता 'वैज्ञानिक युग की क्रांति' की विषयवस्तु पर आधारित संजीव का उपन्यास 'रह गई दिशाएँ इसी पार' है। संजीव अन्य रचनाकारों की तरह दिशाहीन गति की ओर उन्मुख औद्योगिक सभ्यता के संकटों को रेखांकित नहीं करते बल्कि व्यक्ति के भीतर बैठी उपभोक्तावादी मानसिकता से उत्पन्न खतरों की तरफ भी इशारा करते हैं, जिसे उन्मुक्त बाजारी संस्कृति की देन कहा जा सकता है। बीसवीं सदी की पीढ़ी और इक्कीसवीं सदी की पीढ़ी की टकराहट और बदलती सामाजिक मानसिकता, नवयुवा पीढ़ी की नई सोच और विकसित उपभोक्तावादी मानसिकता जैसे बाजारीकृत समाज में पलने वाली नई पीढ़ी को दिए जाने वाले संस्कार जो उन्हें टेक्नोलॉजी के माध्यम से आभासी दुनिया से मिल रहे हैं। उस सूचना और टेक्नोलॉजी के माध्यम से मिलने वाली संवेदना से मानवीय सम्वेदना का मशीनीकृत होना स्वाभाविक है। शिक्षा का बदलता स्तर संस्कार सहज व्यवहार ज्ञान से ज्यादा पैसा कमाने का उद्देश्य बनता जा रहा है। जिस तरफ हमारी पीढ़ी आकर्षित हो रही है।

इस विषय वस्तु को आधार बनाया गया है-कृष्णा सोबती का उपन्यास- समय सरगम, ममता कालिया का उपन्यास– 'दौड़' और 'सपनों की होम डिलीवरी' तथा ग्रामीण समाज में वैश्वीकृत दुनिया की आँच को रेखांकित करता काशीनाथ सिंह का उपन्यास- 'काशी का अस्सी', 'रेहन पर रग्घू', सूचना प्रौद्योगिकी का प्रतीक मोबाइल क्रान्ति का समाज पर प्रभाव- प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल', रणेंद्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता', शरद सिंह का उपन्यास 'कस्बाई सिमोन', जो कि स्त्री जीवन की स्वतंत्र जीवनयापन की इच्छाओं को उजागर करता है। महुआ मांझी का उपन्यास 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ', में आदिवासी जीवन के संघर्षों को विषय बनाया गया है। अखिलेश का बहुत ही बेहतरीन उपन्यास 'निर्वासन' जिसमें भौगोलिक बदलाव तथा निर्वासन हम और मानवीय संवेदनाओं एवं रिश्तों के बीच के निर्वासन को बहुत शूक्ष्मता से रेखांकित किया गया है। 21वीं सदी के उपन्यासों में वैश्वीकरण की आँच अर्थात सामाजिक गतिविधियों तथा समाज में हो रहे बदलाव को बहुत ही सूक्ष्मता से रेखांकित करने की कोशिश उपन्यासकार लेखकों द्वारा की गई है। उपन्यास कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तर पर वैश्विक दुनिया को अपने आपमें समेटे हुए है।

ममता कालिया के उपन्यासों में वैश्वीकरण के दौर का अद्भुत रेखांकन हुआ है। जिसमें वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण ने 21वीं सदी में युवाओं के सामने उनके सपनों की एक अलग और नितान्त नई दुनिया का द्वार खोल दिया है। बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान कराने के साथ-साथ बाजारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। जिसके माध्यम से यह बताने की कोशिश की गई है कि युवाओं ने बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों और रोजगार के नए अवसरों के तंत्र पर सवार होकर सफलता तो खूब अर्जित की है, पर समाज के बीच से मानवीय-सम्बन्ध और आपसी रिश्तों का कहीं न कहीं ह्रास हुआ है और होता जा रहा है। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'काशी का अस्सी' वैश्वीकरण की झांकी प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास के माध्यम से वैश्वीकरण की आंच को महसूस किया जा सकता है। उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में उदारीकरण की मार को गाँव में हो रहे परिवर्तन के माध्यम से

मानवीय मूल्यों का ह्रास और आपसी सम्बन्धों में आई सम्वेदनहीनता की झाँकी को देखा व समझा जा सकता है।

सत्यनारायण पटेल ने अपने उपन्यास-'गाँव भीतर गाँव' में ग्रामीण जीवन की बदलती रूपरेखा जिसे वैश्वीकरण की भाषा में कहे तो स्थानीयकरण की संज्ञा दी जाती है। अर्थात 'गाँव में पूरा विश्व'। गाँव के वैश्वीकृत बदलाव पर बहुत ही मार्मिक ढंग से लेखनी चलाई है। 'सूचना प्रौद्योगिकी' का प्रभाव समाज की लगभग सारी गतिविधियों पर अपना साम्राज्य फैलाता जा रहा है। उसके माध्यम से बाजार और बाजारीकृत संस्कृति का प्रचार-प्रसार जन-जन के बीच एक पहुँच रहा है। एक छोटे से मोबाइल में पूरी दुनिया की खबर 'लाइव' हो रही है। वर्तमान समाज की मांग है 'सूचना-प्रौद्योगिकी' उसके बिना समाज पिछड़ा हुआ या दूसरे शब्दों में कहे तो अर्थहीन है। 'सूचना-प्रौद्योगिकी' के बिना वर्तमान समाज की कल्पना करना व्यर्थ है।

इस विषय-वस्तु पर आधारित 'प्रदीप सौरभ' का उपन्यास- 'मुन्नी मोबाइल' बेहतरीन उपन्यास है। वैश्वीकरण के इस युग में वास्तविक दुनिया आभासी दुनिया में तब्दील होती जा रही है। अर्थात प्राकृतिक वातावरण का विघटन और आभासी दुनिया का 'माल संस्कृति' के दृश्य को हम 'महुआ मांझी' के उपन्यास 'मरंग गोडा नील कंठ हुआ' में चित्रित किया गया है। वैश्वीकरण की लपटों में जलता हासिये का आदिवासी और दलित समाज की आहट को रूपनारायण सोनकर के उपन्यास –'डंक' और 'सूअरदान', वाल्टर भोगरा के उपन्यास 'लौटते हुए' में शहरी जीवन की वैश्विक संस्कृति को विषय बनाया गया है। वैश्वीकरण की इस चकमक में आदिवासी समाज कहीं न कहीं इस व्यवस्था का शिकार हुआ है, और हो रहा है। विकास के नाम पर इन्हीं की दुनिया में इन्हीं के 'अस्तित्व और अस्मिता' को धूमिल करता हुआ वैश्वीकरण अपना बाजारवादी साम्राज्य फैला रहा है। जिसके आईने में अब आदिवासी समाज के सहज व यथार्थ प्रतिबिम्ब को देख पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है।

प्राचीनकाल से गौर किया जाए तो आदिवासी समाज की संस्कृति और प्रकृति उनके जीवनयापन का आर्थिक आधार रहा है। उनके अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवनयापन के नियम-क़ानून रहे हैं, जिससे वह पर्यावरणीय तत्वों के आधार पर स्वयं को जुड़ा महसूस करते रहे हैं। आज भूमण्डलीकरण के नाम पर 'दिकू' लोग कहीं न कहीं विकास के नाम पर और आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने के प्रयास में उन्हें उनकी निजी पहचान से अलग कर रहे हैं। 'महुआ माझी' का उपन्यास- 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' में विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन की समस्या से जूझते आदिवासियों की समस्या को उजागर किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। आदिवासी इलाके की अमूल्य निधि खनिज-सम्पदा के साथ-साथ सभी मानवीय व सामाजिक रिश्तों का भी दोहन किया जाता है। जिसे वैश्वीकरण की भाषा में विकास की संज्ञा दी जाती है। मध्यवर्गीय समाज और बदलाव को हम शरद सिंह के उपन्यास 'कस्बाई सिमोन' और अलका सरावगी के उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में देख सकते हैं।

21वीं सदी के इस दौर में समाज के अस्तित्व व अस्मिता को बचाना सबसे बड़ी चुनौती बनी हुई है। यह कहना सही है कि- बदलते समय के साथ किसी भी देश या समाज का विकास होना चाहिए, जो जरूर भी है, लेकिन विकास के नाम पर मानवीय मूल्यों का ह्रास, सम्वेदनशून्यता और केवल स्वार्थी दृष्टि से लाभ को वरीयता देकर सृष्टि का विकास करना कभी सम्भव नहीं है! क्योंकि एकतरफा विकास यानी मानवता का उल्लंघन कभी भी विकास की श्रेणी में नहीं आ सकता है। मानवीय सम्वेदना से इतर समाज का विकास, समाज को केवल वर्गीकृत कर सकता है, एकीकृत व उसका विकास नहीं। इस प्रकार आदिवासी समाज की समस्याओं के माध्यम से पर्यावरणीय संकट से जूझते पूरे विश्व झाँकी प्रस्तुत हुई है। आज आदिवासियों के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न बना हुआ है कि- क्या उन्हें मुख्यधारा में उनकी पहचान व अस्तित्व के साथ शामिल नहीं किया जा सकता है? विकास के नाम पर आदिवासी समाज और संस्कृति का लोप होता जा रहा है। आज आदिवासी लोग अपनी संस्कृति से अलग हो, विस्थापन जैसे जीवन-स्थिति के शिकार हो, असहाय जिन्दगी जीने को मजबूर हो रहे हैं। इस बाजारवादी संस्कृति

ने आदिवासी अस्तित्व व उनकी पहचान के सामने संकट खड़ा कर दिया है। वैसे किसी के भी समाज और संस्कृति का लोप, उसे अस्तित्वहीन बना उन्हें उन्हीं की पहचान से भी अलग कर देता है। इनका मुख्य उद्देश्य है हाशिये के समाज को मुख्यधारा में मिलाकार उन्हें उन्हीं की पहचान जल, जंगल और जमींन से अलग कर देना। आज आदिवासी समाज उसी संकट के दौर से गुजर रहा है। 'निर्वासन' उपन्यास में अखिलेश ने केवल किसी व्यक्ति के अपने परिवार अथवा समाज से निर्वासित होकर जीने की अनुभूतियों का ही चित्रण नहीं किया है। भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता के कारण इस तरह का भौतिक निर्वासन तो होता रहता है। जिसमें व्यक्ति अपने मूल स्थानों से विस्थापित होकर विभिन्न कारणों से नए-नए स्थानों पर रहने के लिए मजबूर हो, अपरचित लोगों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। उनके साथ अपनी नई पहचान बनाता है। नई भाषाएँ सीखता है और अपने को एक अलग संस्कृति में ढालने की कोशिश करता है। इस उपन्यास में दूसरी तरह के भी निर्वासन का चित्रण किया गया है, जो जीवन में प्राय: अपने भीतर खुद के साथ ही अथवा अपने आस-पास की चीजों के साथ घटित होता रहता है, और इसका हमें आभास भी नहीं होता कि पुरानी चीजें कैसे धीरे-धीरे जीवन से निर्वासित होती चली जाती हैं? और नई चीजें कैसे उनका स्थान लेती रहती हैं। "आज भूमंडलीकृत भारत संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। यही कारण है कि जीवन-मूल्यों, आदर्शों, संस्कारों व सरोकारों तक में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है।"[14]

निष्कर्षत: 21वीं सदी बदलते समाज, परिवार, सम्बन्धों, रिश्तों, मानवीय संवेदनाओं के ह्रास के साथ बाह्य जगत के विकास अर्थात तीव्रतर विकास की ओर उन्मुख बाजारीकृत समाज संस्कृति और उपभोक्तावादी संस्कृति के रूप में संचार और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से वास्तविक दुनिया को आभासी दुनिया में परिवर्तित करता हुआ वास्तविकता से कहीं दूर आभासी जगत का निर्माण कर रहा है। 21वीं सदी का समाज और समाज के लोगों की मानसिकता उनकी अपनी विचारधारा आदि वैश्वीकरण की आर्थिक विचारधारा को केंद्र में रखकर बाजारीकृत समाज और संस्कृति को उपभोक्तावादी विचारधारा के अनुसार ढलती जा रही है। समाज की गति ऐसे ही तीव्रगति से बढ़ती रही

तो आने वाला समय जितना सुखदायक होगा उससे कहीं ज्यादा भयावह होने वाला है। पूरी दुनिया सूचनाओं का जंजाल होगा। दुनिया टेक्नोलॉजी की दुनिया बन चुकी होगी और लोग सजीव होते हुए भी निष्क्रिय हो जायेगे। बाजार पूरी तरह से लोगों के दिमाग पर अपना कब्ज़ा कर चुका होगा मानवीय सम्वेदना शून्य होकर बहुत ही अवसरवादी और दिन-प्रतिदिन संवेदनहीन होती जा रही है। जिसका हस्र आने वाले समय में दिखने लगेगा। कुल मिला कर यह कहा जा सकता है जितना हम सुविधा भोगी हुए है उससे ज्यादा हम टेक्नोलॉजी के आश्रित होते जा रहे हैं। यह कहना गलत न होगा कि भूमण्डलीकरण जिस बाजारवाद को लेकर आया उसने समाज के आभिजात्य और उच्च मध्यवर्ग को ही लाभ पहुँचाया। इसी देश में एक अमीर और अमीर होता जा रहा है तो एक गरीब और गरीब। यह स्थिति किसी भी देश के लिए सामान्य और साधारण नहीं है। इसलिए हिन्दी के साहित्यकारों ने इस चिंता को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। साहित्य की रोचक विधा उपन्यास के माध्यम से वर्तमान समाज की स्पष्ट चित्रांकन सम्भव हो पाया है। अलग-अलग सामाजिक विषयों समस्याओं को आधार बनाकर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। जिसमें एक ओर उसके प्रभाव के रूप में बाजारवाद की आंधी दौड़ को रेखांकित किया जा रहा है तो दूसरी ओर उसके दुष्प्रभावों को भी बताया जा रहा है। अर्थात लेखक भविष्यदृष्टा के रूप में सार्थक एवं व्यवस्थित समाज निर्माण में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं। समाज में हो रहे तीव्र बदलावों को अभी उपन्यास पूरी तरफ से अपने में समाहित नहीं कर पाया है इसलिए बदलते समय और समाज की गति के साथ साहित्यिक विधाओं में भी गतिशीलता और परिवर्तन जारी रहेगा और साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास भी अपना स्वरूप बदलता हुआ महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में हमेशा सार्थक भूमिका निभाता रहेगा। मानव समाज की सच्चाई को गहराई से समझने के लिए उपन्यास साहित्य की आवश्यकता हमेशा समाज में बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत(परिदृश्य और विकल्प), सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2009, पृ.सं.95
2. दोषी, एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत,रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005, पृ.सं.313
3. https://hi.wikkipedia.org
4. प्रतिनिधि कविताएँ-डबराल-भूमण्डलीकरण कविता-पृ.सं. 124
5. सिंह अमित कुमार, भूमण्डलीकरण और भारत, पृ.सं.147
6. सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत(परिदृश्य और विकल्प), सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2009, पृ.सं.83
7. तिवारी, डॉ.दयानन्द, साहित्य का समाजशास्त्र, प्रकाशन-संस्थान नई दिल्ली-02 भूमिका से
8. तिवारी, डॉ.दयानन्द, साहित्य का समाजशास्त्र, प्रकाशन-संस्थाननई दिल्ली-02, पृ.सं. 2
9. Appadurai, A. 1997. *Modernity at large: cultural dimension of globalisation,* London: public world.
10. सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत(परिदृश्य और विकल्प), सामयिक प्रकाशन,नई दिल्ली, सं.2009, पृ.सं.115
11. जैन निर्मला, आदि अंत और आरम्भ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण-2001
12. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 357
13. दिनकर-कुरुक्षेत्र (कविता)
14. सिंह, अमित कुमार. वैश्वीकरण और भारत(परिदृश्य और विकल्प), सामयिक प्रकाशन,नई दिल्ली, सं.2009, पृ.सं. कवर पेज से,

अध्याय-तीन

21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: बाजार और समाज

3.1उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्तमान समाज पर प्रभाव
3.2 शिक्षा का बाजारीकरण और उसका समाज पर प्रभाव
3.3 ग्रामीण समाज का ‘स्थानीयकरण’
3.4 शराब, सिगरेट और सेक्स की ओर आकर्षित नव युवा पीढ़ी
3.5 आदिवासी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का दोहन
3.6 मध्य वर्गीय समाज का बदलता यथार्थ

बाजार और समाज:- जहाँ तक बाज़ार का प्रश्न है, वैश्वीकरण के पहले बाजार केवल मानव-जीवन से सम्बन्धित सीमित चीजों के लिए आवश्यक था और उस समय का बाजार केवल 'बाजार' की श्रेणी में आता था। जहाँ से सीमित साधनों की पूर्ति होती रही है, लेकिन वहीं बाजार, आज बाजारीकरण की संज्ञा धारण कर चुका है। अब हम नहीं, वह हमें बताने लगा है कि क्या हमारे लिए जरूरी है और क्या नहीं। आज 21वीं सदी में बाजार हम पर नहीं, हम बाजार पर आश्रित होते जा रहे हैं। हमारी पसन्द न पसन्द सब बाजार तय कर रहा है। बाजार एक 'आर्थिक विचार' बना हुआ है, जिसका उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना है। उसे किसी के लाभ-हानि की कोई परवाह नहीं है। वर्तमान समाज वैश्वीकृत समाज का रूप ले चुका है! क्योंकि उसके बिना जीवन अब सम्भव नहीं रहा। आज का व्यक्ति अपने समाज और परिवार में अपने विचारों के साथ जितना स्वतन्त्र हुआ है, उससे कहीं अधिक गुलाम भी। यह गुलामी कैसे समाज पर हावी होती जा रही है? उसे सूक्ष्मता से समझने का एक मात्र जरिया साहित्य है। साहित्य के माध्यम से समाज की स्थिति और उसके द्वारा समाज व सामाजिक परिदृश्य को समझने में आसानी होगी। वैश्वीकरण के मुख्य वाहक "बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी" का प्रभाव समाज और सामाजिक जीवन पर पड़ रहा है। जिसके माध्यम से समाज व सामाजिक परिदृश्य काफी बदल चुका है। और काफी तेज गति से बदलता जा रहा है।

आज एक ध्रुवीय राष्ट्र की परिकल्पना से भाषा और संस्कृति पर अस्तित्व और पहचान को बचाने का संकट छाया हुआ है। वैश्वीकरण का प्रभाव सामाजिक संरचना जैसे रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा, शिक्षा और वर्गों (समुदाय) पर अलग-अलग रूपों में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव छोड़ रहा है। इसलिए वैश्वीकरण के इस फार्मूले को भारतीय समाज के सभी वर्गों पर एक रूप में लागू नहीं किया जा सकता है।

जहाँ भारतीय समाज में एक तरफ 'वसुधेव कुटुम्बकम' की भावना का मतलब 'पूरा विश्व' परिवार है। वहीं दूसरी ओर आज के युग में 'वैश्वीकरण' शब्द का मतलब- 'पूरा विश्व बाजार' से सम्बन्धित हो गया है। जहाँ वस्तु बनायीं जाती है, वस्तु बेचीं जाती है और वस्तु खरीदी जाती है। भारतीय संविधान में मीडिया को चौथा स्तम्भ माना जाता है, लेकिन वह अब विकृत हो गया है। स्त्री अस्मिता-'स्त्री को एक जीवित जीव समझा जाय यही आकांक्षा थी। आज स्त्री के पास सब कुछ है लेकिन सुकून कहीं न कहीं सूखता जा रहा है। वर्तमान मीडिया का स्वरूप सूचनाओं का जंजाल है। लेकिन जब मीडिया का काम मीडिया तक सीमित न होकर उद्योग बनता जा रहा है, तो उसका उद्देश्य लाभ कमाना मात्र होकर रह गया है। युवा कवि दिनकर कुमार की ये पंक्तियाँ वास्तविक समाज की झांकी प्रस्तुत करती हैं।

"भूमण्डलीकरण के अश्व पर सवार हो घृणा
नगर-नगर गाँव-गाँव घूमती फिरती है
रिश्तों को तब्दील कर देती है उत्पाद में
भावनाओं को तब्दील कर देती है सौदे में।।"[1]

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वैश्वीकरण ने जितना दुनिया को जोड़ने का काम किया है उससे कहीं ज्यादा समाज के आधुनिक बीमारी (जैसे चिंता, अकेलापन, घृणा, संत्रास, बेचैनी, ब्लडप्रेशर, डिप्रेशन आदि) को भी जन्म दिया है। सामाजिक यहाँ तक की पारिवारिक सभी रिश्तों की बुनियाद स्वार्थ और अपने फायदे पर टिकती जा रही है। 21वीं सदी में किसी का जीवन अदृश्य नहीं रहा अब और न ही किसी प्रकार के रहस्य के घेरे में रहा है। मनुष्य का सच सबके सामने खुली किताब जैसा हो चुका है। वैश्वीकरण का मूल स्वरूप बाजार केन्द्रित है और बाजार का मुख्य उद्देश्य मुनाफा कमाना है। नई सदी के आरम्भ से का यही उद्देश्य रहा है कि भूमडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण तथा निजीकरण के साथ निरंतर फैलते 'विश्व बाजार' में बिलकुल नई क्रूर, मनुष्य विरोधी स्थितियां मौजूद हैं।

21वीं सदी की वास्तविक दुनिया आभासी दुनिया में बदलती जा रही है। जहाँ वास्तविकता का भान मात्र ही किया जा सकता है। वास्तव में वर्तमान दुनिया में सांस लेना भी मुश्किल होता जा रहा है। भूमण्डलीकरण की विचारधारा मानवीय सम्वेदना को लीलते जा रहे। कुँवरनारायण की 'पेन ड्राइव समय' पर लम्बी कविता लिखकर 'यूज एंड थ्रो संस्कृति' पर सवाल खड़ा करते हैं कि-

"किसी के आबाद होने के पीछे
छुपी होती है कितनी बरबादियाँ
यह सवाल ही नहीं उठा कभी
सत्ता के दिलों दिमाग में"[2]

21वीं सदी का विकास सहज विकास की श्रेणी में नहीं आता है बल्कि यह विकास बिना भविष्य का भान किये स्वार्थी भाव से वर्तमान और स्वयं के फायदे को ध्यान में रखकर अंधाधुंध गति से विकसित होती जा रही है। आर्थिक गतिविधियां कहीं न कहीं समाज एवं समाज के लोगों की सहज मानसिकता को मशीनीकृत बना रही हैं। नयी सदी में एक तरफ अंधाधुंध शहरीकरण तथा नदियों, पहाड़ों, जंगलों और गांवों का तेजी से सफाया हो रहा है। वहीं दूसरी तरफ लगातार फैलते विश्व बाजार की संवेदनहीनता, बर्बरता ने संवेदनशील व्यक्ति को भी अकेला कर दिया है। बाजार, सूचना एवं टेक्नोलॉजी के माध्यम से हम बहुत ही शीघ्र जहाँ चाहे प्रस्थान कर सकते हैं। जो भी 'सूचना' या जानकारी हम प्राप्त करना चाहे पलक झपकते ही प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन इन आधुनिक टेक्नोलॉजी यंत्र के माध्यम से हम एक-दूसरे के जितने पास हुए हैं, 'मानवीय संवेदना' के वास्तविक अर्थों में हम एक-दूसरे के उतने ही दूर भी होते जा रहे हैं। आभासी दुनिया की चाह में मानवीय संवेदना और वास्तविक दुनिया का स्वरूप दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है। मनुष्य चाहकर भी अपनी जाती हुई संवेदना की सहजता को बचा पाने में असमर्थ हो रहा है। आज की युवा पीढ़ी चाहती तो है प्यार करना लेकिन मशीनीकरण के युग में स्वयं मशीन बनकर जीने पर मजबूर है।

“बीसवीं शताब्दी ने जिस अंधाधुंध बाजारवाद को जन्म दिया और हमें अपने बाजार के विस्तार में ही दुनिया का वैभव दिखाई देने लगा, उस मानसिकता ने ही संकट को और गहरा कर दिया है। ऐसे कठिन समय में जब ‘भोग’ ही सर्वोपरि बना है, ‘अर्थ’ केन्द्रीय हो उठा है और संचार ने सब-कुछ में ‘फास्टफूड’ में तब्दील कर दिया है, साहित्य को बचाने की बड़ी जबावदेही आ गई है, क्योंकि वहीं इसका बेहतर प्रतिशोध कर सकता है।”[4] उपभोक्तावादी दौर में आज का मनुष्य जिस मोड़ पर खड़ा है, वह समाज बाजार में और वहां के निवासी उपभोक्ता का रूप धारण कर चुके हैं। कहने को तो बाजार का व्यापक विस्तार हो रहा है, लेकिन वह व्यक्ति की जरूरतों को पूरा नहीं करता है। बल्कि उसकी इच्छाओं को बढ़ाने का काम कर रहा है।

21वीं सदी में बाजार की ताकतें दिन-प्रतिदिन हावी होती जा रही हैं। समाज के लोगों की आदतों और व्यवहार तथा दिमाग का ढांचा बदलने का काम मीडिया बाजार ग्लैमर के माध्यम से करने में कामयाब हो रहा है। जहाँ तक स्त्री का प्रश्न है बाजारवाद ने स्त्री को पूरी तरीके से अपने शिकंजे में कस लिया है। आज नारी अपने नारीत्व बोध और अस्मिता को भूलकर अपनी स्वतंत्र अस्मिता व पहचान को दाव पर लगा रही हैं। ‘नारी सौन्दर्य’ एक बिकाऊ माल बन चुका है। मुनाफा कमाने वाली कम्पनियाँ नारी सौन्दर्य को बेचने के लिए नये-नये तरीके ईजाद कर रही हैं। “रेखा कस्तवार के अनुसार “बाजार स्त्री की प्रतिभा पर सौन्दर्य की वरीयता प्रदान करता है उसे मानवीय अधिकार और सम्मान से युक्त व्यक्ति के स्थान पर आकर्षक वस्तु मान लिया जाता है।”[5] आज भले ही स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। लेकिन बाजार स्त्री को वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझता है। स्त्री ही नहीं मानव समाज ही आभासी पटल पर सुख-सुविधाओं को ढूंढ़ता हुआ अपनी वास्तविकता से दूर होता चला जा रहा है। “पुष्पपाल सिंह के अनुसार “सौन्दर्य और प्रसाधन के एक से एक बढ़कर एक से एक महगें उत्पाद सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का बाजार, फैशन बाजार आदि मिलकर बाजारीकरण का ऐसा परिदृश्य निर्मित करते हैं कि मनुष्य ने आवश्यक जरुरी (नीड़) आरामदायक (कंफर्ट) तथा एश्वर्य (लग्जरी) का विवेक खोकर सब कुछ को आवश्यकता के रूप में स्वीकार कर अपनी जीवन चर्चा का अंग बना डाला है।”[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाजार और समाज का वर्षों से अटूट सम्बन्ध रहा है। बाजार से समाज अपनी आवश्यकता का समान लेता और खरीदता रहा है। 21वीं में बाजार व्यापार और व्यापारी के द्वारा लेन देन का अड्डा बन गया है। जहाँ पर वस्तुओं का मोलभाव बिना किसी मानवीय संवेदना को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। वर्तमान बाजार मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम उसकी इच्छाओं को बढ़ाने के लिए ज्यादा है। 21वीं सदी का बाजार पूरी दुनिया को बाजारीकृत व्यवस्था में तब्दील कर बाजारीकृत संस्कृति का निर्माण करने में सफल हुआ है। बाजारीकृत संस्कृति का प्रभाव किन-किन रूपों में समाज को प्रभावित कर रहा है निम्न बिन्दुओं के माध्यम से मूल्यांकन करेंगे।

3.1-उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्तमान समाज पर प्रभाव

"भूमण्डलीकरण, यह भारत की 'वसुधैव कुटुम्बकम' की संकल्पना का पश्चिमी संस्करण तो नहीं? वसुधा, पृथ्वी का मार्ग है। साइबर, आकाश का। अत: इन दोनों संकल्पनाओं में जमींन-आसमान का अंतर है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' वसुधा पर पारस्परिक सम्बन्धों की अवधारणा को मजबूत करता है वहीं दूसरी तरफ भूमण्डलीकरण 'भूमण्डल' के सारे सम्बन्धों को अर्थ की कसौटी पर कसकर, देश-काल में बिखरा देता है।"[7] अर्थात जब समाज और समाज के लोगों पर वैश्वीकरण का तीव्र प्रभाव पड़ना शुरू हुआ और समाज में आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला बाजार, समाज के लोगों की आवश्यकताओं इच्छाओं को बढ़ाने की श्रेणी में आने लगा तो वहीं बाजार समाज के लोगों को 'उपभोक्ता' और समाज को 'बाजार' में बदलता चला गया। वर्तमान समाज बाजार और समाज के लोग 'उपभोक्ता' और 'उत्पादक' की श्रेणी में आने लगे। जिससे समाज का वास्तविक और सहज प्रकृति समाज आभासी दुनिया अर्थात बनावटी और मशीनीकृत होता चला गया। दूसरी भाषा में कहे तो आज का मनुष्य और उसकी सारी संवेदना इंसानों के लिए कम टेक्नोलॉजी से जुड़े यंत्रों के लिए ज्यादा होती जा रही हैं।

वर्तमान दुनिया पूँजीवादी समाज की दुनिया है। पूँजी के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था को बढ़ावा देना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। साम्यवादी विचारधारा का पतन और पूँजीवादी विचारधारा की जीत का मुख्य उद्देश्य यही रहा पूरे विश्व पर पूँजीवाद का साम्राज्य कायम करना। "भूमण्डलीकरण, सांस्कृतिक संवाद कायम नहीं करता। यह तो जमीनी संस्कृति को ही नकार कर एक ग्लोबल संस्कृति और ग्लोबल भाषा की वकालत करता है। यह ग्लोबल संस्कृति भिन्न-भिन्न देशों के सांस्कृतिक वातावरण से अलग-थलग, साइबर दुनिया में विकसित होती है।"[8] जिसका वास्तविक समाज से कोई तुलना नहीं की जा सकती है। क्योंकि वैश्वीकृत समाज विश्व स्तर पर कई प्रकार की संस्कृति का सामंजस्य रूप प्रस्तुत करता है। जिसके द्वारा आभासी पटल अर्थात कृत्रिम समाज की निर्मिति होती है। "भूमण्डलीकरण के विकास ने केवल वस्तुओं का बाजार ही नहीं बनाया है बल्कि उसने कला को एक उपभोक्ता–सामग्री के रूप में भी प्रस्तुत किया है। जिसे जो जब चाहे खरीद ले, और जो जब चाहे वह कलाकार से माँग करें, कीमत निगमों द्वारा तय होगी, संग्रहालय और दीर्घाएँ कलाकार को प्रायोजित करेंगी और प्रश्रय भी दे देंगी।"[9] काशीनाथ सिंह का उपन्यास काशी का अस्सी है। यह उपन्यास रिपोर्ताज के रूप में सर्वप्रथम पत्रिका में छपा। बाद में मुकम्मल रूप से उपन्यास के रूप में इसे स्वीकृति मिली। अभी भी यह कह पाना मुश्किल है शैली की दृष्टि से कि यह रचना किस विधा की रचना है। दूसरे शब्दों में कहे तो जो लगता है वह वास्तव में भ्रम होता है। और जो होता है वह वास्तविक नहीं आभासी दुनिया का सच मात्र। 21वीं सदी में लिखी जा रही साहित्यिक रचना उपन्यास का शिल्प उपन्यास का है या किसी और विधा का कह पाना मुश्किल। उपन्यासकार ने इस भागमभाग दुनिया में जहाँ पर स्थानीयता को कम और ग्लोबल को ज्यादा महत्त्व देते रहे हैं या दे रहे हैं उस वैश्वीकरण के युग में अपने बनारस शहर की स्थानीयता को वहां की जिन्दादिली और जीवन्तता को विषय बनाकर 'काशी' के साथ काशीनाथ सिंह जी ने एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में यह कृति हमें उपलब्ध करायी है। जहाँ तक वैश्वीकरण का प्रश्न है उसकी गर्माहट अर्थात 1990-91 के दौर की वैश्वीकृत होते समाज की झांकी प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ लोगों के द्वारा बदलती उनकी मानसिकता और आपसी सम्बन्धों के बीच की खींचतान के साथ स्वार्थी

प्रवृति की ओर आकर्षित होती, बदलती बाजारू आर्थिक लोलुप मानसिकता को भी कैद किया है। उपन्यास में कोई एक कहानी नहीं चलती है। मुझे लगता है और उपन्यास में हैं भी की उपन्यासकार का मकसद पूरे बनारस 'काशी' के सामाजिक, राजनीतिक और वहां के 'घाट' समाज के लोगों की दिन-प्रतिदिन की दिनचर्या के साथ-साथ देश-विदेश से आ रही गर्माहट की लपटों से लोगों को रूबरू करवाना है। उदाहरण स्वरूप एक प्रसंग शीर्षक रूप में देख सकते हैं-

"1.देख तमाशा लकड़ी का

2.सन्तों घर में झगरा भारी

3.सन्तों, असन्तों और घोंघाबसन्तों का अस्सी

4.पांडे कौन कुमति तोहें लागी

5.कौन ठगवा नगरिया लूटल हो"

"खडाऊं पहनकर पाँव लटकाए पान की दुकान पर बैठे तन्नी गुरु से एक आदमी बोला-'किस दुनिया में हो गुरु! अमरीका रोज-रोज आदमी को चन्द्रमा पर भेज रहा है और तुम घंटे-भर से पान घुला रहे हो?' मोरी में 'पिच' से पान की पीक थूककर गुरु बोले- देखौ! एक बात नोट कर लो ! चन्द्रमा हो या सूरज- भोसड़ी के जिसको गरज होगी, खुदै यहाँ आएगा।"[10] बनारस और बनारसी समाज के लोगों की नजाकत कोई नहीं समझ सकता कि वह कहते क्या हैं और चाहते क्या हैं। वह बस जीवन को जीते हैं और बिना किसी परेशानी और भय के निश्चिन्त हो। इसलिए इनकी बहसबाजी में देश-दुनिया की समझ के साथ आर्थिक विकास को धिक्कारते हुए सभी को एक ही तराजू में तौल देने की चुहलबाजी सच में आदमी में जान भर देती है। यह भौतिक दुनिया में ऐश करने की कल्पना नहीं करते जहाँ पर पहुँचने के लिए लोग तिकडमबाजी में पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं पर कुछ नसीब नहीं होता है। "अस्सी 'अष्टाध्यायी' है और बनारस उसका 'भाष्य'! पिछले तीस-पैतींस वर्षों से 'पूँजीवाद' से पगलाए अमरीकी यहाँ आते हैं और चाहते हैं की दुनिया इसकी टीका हो जाए...मगर चाहने से क्या होता है? अगर चाहने से होता तो पिछले खाड़ी-युद्ध के दिनों में अस्सी चाहता था कि अमरीका का 'व्हाइट हॉउस' इस मोहल्ले का

सुलभ शौचालय हो जाए ताकि उसे 'दिव्य निपटन' के लिए 'बहरी अलंग' अर्थात गंगा पार न जाना पड़े...मगर चाहने से क्या होता है?"[11] बनारसी के लिए भौतिकता भरी चकमक दुनिया बाजारीकृत समाज की उपभोक्तावादी संस्कृति का कोई प्रभाव समाज और समाज के लोगों के व्यवहार पर नहीं दीखता है। उनके ठेठपन और अंदाज-ए-बयाँ की गुफ्तुगू का राज कुछ और ही है। वह आभासी दुनिया में वास करने वाले को कहां नसीब है। वैश्विक राजनीति का समाज पर प्रभाव समकालीनता का दौर था बाबरी मस्जिद का ध्वंस चल रहा था, यह सन 1992 की घटना है। जिसमें राजनीतिक पार्टियों अपने-अपने तरीके से काफी सक्रिय रही हैं। जिसमें सभी पार्टी अपना-अपना फायदा देखकर अपनी सक्रियता को दिखाने का काम ज्यादा कर रही थी। यह सच है कि बाबरी मुद्दे को लेकर लोग चिंतित थे? यह बात स्पष्ट रूप से नहीं कहीं जा सकती है। लेकिन वर्तमान में भी यहीं रोल ज्यादा अदा कर रही है राजनीति। जिसकी झलक वनारसी लोगों के बीच धर्म का मुद्दा होने की वजह से ज्यादा बहस का विषय रहा है। एक प्रसंग आता है-

"अगर प्रोग्राम बनाइए तो कार सेवा के बहाने हम भी तमाशा देखने अयोध्या चले!"

"बिलकुल नहीं ! हरिद्वार ने दृढ़ता से कहा-"हम संजय हैं। हमें दिव्य दृष्टि प्राप्त है! हम यही से सारी दुनिया देख रहे हैं!"[12] यह सोच पौराणिकता को वैश्वीकृत समाज की ओर अग्रसर करती है। दिव्यदृष्टि (लाइव शो) संजय की दिव्यदृष्टि को आधार पर शायद आधुनिक टेक्नोलॉजी विकसित हुई होगी। आगे इसी तरह के तार्किक संवाद को आगे बढ़ाते हुए- "भ्रष्टाचार लोकतंत्र के लिए आक्सीजन है, ऐसा कोई राष्ट्र जहाँ लोकतंत्र हो और भ्रष्टाचार न हो? जरा नज़र दौड़ाइए पूरी दुनिया पर, ये छोटी-बड़ी राजनीतिक पार्टियाँ क्या हैं? अलग-अलग छोटे-बड़े संस्थान, भ्रष्टाचार के प्रशिक्षण केन्द्र, सिद्धांत मुखौटे हैं जिनके पीछे ट्रेनिंग दी जाती है। आप क्या समझते हैं, जो आदमी चुनाव लड़ने में पन्द्रह-बीस लाख खर्च करेगा वह विधायक या सांसद बनने पर ऐसे ही छोड़ देगा आपको? देश को? चूतिया है क्या?"[13] बनारस के लोगों के बीच आपसी बातचीत के माध्यम से दुनिया जहान की खबरों की जानकारी रखते हैं। इस प्रकार समाज में हो रही गोष्ठियों की बहस से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि वैश्वीकरण के वाहक

के रूप में सूचना-क्रांति और भविष्यवाणी के साथ लोकवाणी अर्थात स्थानीयता को महत्त्व देने से नहीं चूकते हैं। “यह भौं-भौं कभी आकाशवाणी के रूप में गूँजता है, कभी भविष्यवाणी के रूप में लेकिन ज्यादातर लोकवाणी के रूप में।”[14] वैश्वीकरण की वजह से हो रहे सामाजिक बदलाव अर्थात वैश्वीकृत समाज में बदलती दुनिया की तरफ इशारा किया गया है। “दुनिया क्या से क्या होती जा रही है और तुम्हारा पता नहीं। इससे पहले कि अस्सीघाट मियामी (अमरीका का एक समुन्द्री तट) का असामी हो जाय, इससे पहले कि घाट के विदेश और चौराहे के ‘’स्वदेशी देशी मुहल्ले की खाट खड़ी कर दें- आओ और देखो कि किस कदर ‘गंड़ऊँ गदर’ मचा रहे हैं दड़बे के गदरहे।”[15] (‘गंड़ऊँ गदर’-एक ऐसी गाँछ है इस बगीचे की जो पिछले दस-पंद्रह सालों से फल-फूल रही है!) बनारस के लोगों के बीच अपनी स्थानीयता कहीं खो न जाय उसको ज्यों का त्यों बनाए बचाये रखने लिए वह सचेत और तत्पर दिख रहे हैं। उन्हें अपना बेढ़ब बनारस ही पसन्द है इसलिए वह अमेरिका के खूबसूरत वादियों को भी नकार देते हैं। वह अपने स्थान और अपनी चीजों को महत्त्व देते हैं उसे दूसरे का सोना भी अपनी चीजों के आगे मिटटी जैसा भी प्रतीत होता है। यही बनारस की खाशियत है । उदाहरण- “जब से अस्सी पर अंगरेज-अंगरेजिन आने शुरू हुए हैं तभी से मुहल्ले के लौंडे हेरोइन और ब्राउन शुगर, चरस के लती हो रहे हैं। ये डाल्टनगंज के नहीं, अस्सी के ही हैं। भागनेवालों में एक की सूरत उन्हें कुछ पहचानी-सी लगी थी। उन्होंने कई बार उसे चौराहे पर दो-चार रुपयों के लिए लोगों के पाँव पकड़ते, चिरौरी करते और घिघियाते हुए देखा था। भिखमंगे इनसे कहीं अच्छे हैं! उनमें स्वाभिमान तो है- माँगते हैं तो अपना अधिकार समझकर, कभी-कभी डपटकर !...और ये साले माँ-बाप के नाम पर रिरियाते हैं!”[16] वैश्वीकृत समाज से सहजता संवेदनशीलता दूसरे शब्दों में कहे तो वास्तविक समाज एवं मानवीय समाज का हनन दिन-प्रतिदिन हो रहा है। सूचना-प्रौद्योगिकी और बाजारीकरण के माध्यम से वास्तविक दुनिया आभासी दुनिया में बहुत ही तीव्र गति से परिवर्तित होती जा रही है। वास्तविकता नाम की कोई संवेदना नहीं बच पाएगी इस धरा पर। जिन्दादिलियों के बीच हंसी मजाक हमेशा लगने वाला मंजर अपने उसी सहज मंजर के लिए चिंतित है। “हँसी धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है दुनिया से। पश्चिम के लिए इसका अर्थ रह गया

है- कसरत, खेल। क्लब, टीम, एसोसिएशन, ग्रुप बनाकर निरर्थक, निरुद्देश्य, जबर्दस्ती जोर-जोर से 'हो-हो-हा-हा' करना। इसे हँसी नहीं कहते। हँसी का मतलब है जिन्दादिली और मस्ती का विस्फोट, जिन्दगी की खनक। यह तन की नहीं, मन की चीज है। यह किसी भी सनसनीखेज खबर से कम नहीं कि जम्बूद्वीप में एक ऐसी भी जगह है जहाँ हँसी बची रह गई है।"[17] वह बनारस जहाँ पर शान्ति और मुस्कान की खोज में हर वर्ष विदेशी आते हैं और उसमें से कुछ यही रूक जाते हैं। शान्ति और आध्यात्मिक लगाव के की वजह से। "गंगा प्रदूषण का अध्ययन करने अमेरिका से अध्ययन दल आ चुका है, कि काठमांडू के रास्ते नगर में कोई 'अन्तराष्ट्रीय तस्कर गिरोह' भी पहुंचा है, कि मुम्बई से भी माफियाओं के दो अलग-अलग ग्रुप आए हुए हैं। इन्हीं अफवाहों में यह भी एक अफवाह थी कि अमेरिका ने बोल दिया है हमारी सरकार से कि हम अपने खर्चे पर 'महामहोत्सव' करना चाहते हैं तुम्हारे लिए। बशर्ते उस बूढ़े को भी लाओ। हमारे यहाँ सबको पास होंठ हैं, दांत हैं, गाल हैं, आँखें हैं, कान हैं-सब हैं बस वैसी हँसी नहीं है।"[18] बहुत ही मार्मिक और सटीक टिप्पणी की गई है। बनारस नगरी धार्मिक नगरी है जहाँ लोग देश-विदेश से शांति और सुकून की खोज में आते हैं। जब पूंजीवादी भौतिक जीवन और व्यवस्था से ऊब जाते हैं।

"तो भैया,कर्फ्यू काहे लगाया? इसलिए कि हँसी मुलुक को इक्कीसवीं सदी में जाने से रोक रही थी। फिर कर्फ्यू काहे हटाया? इसलिए कि अमेरिका ने कहा। वायस ऑफ़ अमेरिका ने। बीबीसी ने। क्या कहा? कहा की हंसी अनमोल रतन। कुदरत का करिश्मा। माने कि तुम्हारे पास अपनी अकल नहीं। अमेरिका बीबीसी जो कहे सो ठीक।"[19] वैश्वीकरण के इस दौर में उसका प्रभाव पूरे विश्व पर फ़ैल चुका है। अपने हिसाब से सभी देशों पर आर्थिक सामाजिक राजनीतिक आदि रूपों में प्रभावित कर रहा है। जिसका केंद्र अमेरिका है और मुद्रा डॉलर। "देख रही हो रिमोट। दुनिया इसी से चल रही है आज। कुछ भी करने के लिए हाथ-पाँव मारने की जरूरत नहीं।"[20] अर्थात घर बैठे-बैठे सब संभव है। आधुनिक पीढ़ी और आपसी रिश्तों के बीच बदलती मानसिकता की झलक पुरानी पीढ़ी के प्रतीक माँ बाप के साथ गलत करने पर भी उन्हें वह सब गलत जैसा नहीं लगता है। "कन्नी खूब प्यार करते थे माँ को। अपने बँगले के

पीछे एक 'सर्वेन्ट्स क्वाटर' बनवाया था कन्नी ने। गैरज के बगल में। सर्वेन्ट्स क्वार्टर माने पाखाने से जुडी एक कोठरी। उसी में रहती थी माँ। ताकि उसके पूजा-पाठ, धरम-करम में और दिनचर्या में कोई खलल न डाले।"[21] आधुनिक संतान को माँ-पिता के साथ हो रहे अपने अलग और गलत व्यवहार का भान नहीं हो पाता है। जिसकी वजह से वह माँ पिता को अलग रखना उचित समझते हैं और परिवार से अलग करके पूण्य का काम समझते हैं कि हम सही और शांत माहौल मुहैया करवा रहे हैं जबकि उन्हें माँ-पिता की पीड़ा का भान नहीं हो पाता है।

उपन्यास रेहन पर रग्घू-काशीनाथ सिंह "जीवन के अनुभव से जीवन बड़ा है। जब जीवन ही नहीं, तो अनुभव किसके लिए।"[22] 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में वैश्वीकरण के दौर में आपसी सम्बन्धों और पुरानी पीढ़ी के लोगों का नये पीढ़ी के साथ आपसी व्यवहार और जीवन जीने की शैली को बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। उपन्यास में मुख्य पात्र के रूप में रघुनाथ उनकी पत्नी शीला पुत्र संजय और धनजय के साथ उसकी बहन सरला है। अन्य पात्र गौड़ रूप में आते हैं। भारतीय समाज की झांकी-पारिवारिक जिम्मेदारियों का वहन करते हुए अपने बच्चों को अच्छे संस्कार देना एक सक्रिय और स्वथ्य समाज के निर्माण में अद्वितीय योगदान है। परिवार को सभालते हुए रघुनाथ जी का कथन है – "धरती सुन्दर और सुखी तभी होगी जब तुम्हारे बच्चे ख़ुशी, सुन्दर और संपन्न होंगे। तुम्हें जो बनना था, वह तो बन चुके; अब बच्चे हैं जिनके आगे सारी जिन्दगी और दुनिया पड़ी है। वही तुम्हारे भविष्य हैं। जियो तो उन्हीं की जिन्दगी, मरो तो उन्हीं की जिन्दगी।"[23] परिवार और बच्चों की अहमियत। भविष्य के लिए सकारात्मक सोच। रघुनाथ ने ऐसे ही किया। अपने सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा-दीक्षा परिवरिश दी लेकिन उन्हें दुःख इस बात का सालता रहा कि उनके एक भी बच्चे ने उनके अनुसार कोई काम नहीं किया। बड़े बेटे संजय ने लालच में आकर शादी किया और बिना पिता से पूछे अमेरिका भी चला गया। यह बात वही तक नहीं रही पैसा कमाने की लालसा ने उसे मशीन (रोबोट) बना दिया। उसके लिए किसी भी रिश्ते की कोई अहमियत नहीं रह गई। माँ-बाप परिवार को छोड़ दिया यहाँ तक कि अपने पत्नी का भी नहीं हुआ और अमेरिका में दूसरी शादी कर लिया अमीर बनने के लिए और दूसरा बेटा

धनञ्जय भी पैसा और शार्टकट बिना मेहनत किए अमीर बनने के लिए वह भी अपने मन का रास्ता अर्थात फायदे का रास्ता अपनाता है। बहन सरला नौकरी करती है लेकिन वह भी अपने अनुसार ही जीवनयापन करने का निर्णय लेती है और अकेले रहने का निश्चय करती है। उसकी जिन्दगी में कौशिक सर जैसे पिता के उम्र के आदमी का आना और चले जाना दूसरी तरफ यह उनके साथ इस बात से खुश होती है कि वह विद्वान् व्यक्ति से प्रेम करती है। यह समाज की कैसी बिडम्बना है किस तरफ जा रहा है वैश्विक समाज और नई पीढ़ी के लोगों की मानसिकता। इसे बदलती आधुनिक मानसिकता का भयावह रूप की संज्ञा देना गलत न होगा। यह तो था सरला के जीवन में आने वाला प्यार और दूसरा शादी। एक समय था जब प्यार की सफलता शादी तक का सफर तय करना ही अपने प्यार का उद्देश्य समझा जाता था। अमर प्रेम के नाम पर कई कहानी हमारे यहाँ प्रचलित हैं लेकिन वैश्वीकृत समाज में प्रेम और शादी दो अलग-अलग चीज बनती जा रही है। मतलब प्यार किसी से भी हो सकता है लेकिन शादी किसी से भी नहीं की जा सकती। सरला शादी तो करना चाहती है, लेकिन उसकी जिंदगी में आने वाला लड़का दलित समाज का होने और पिता की नाक न कटे इसलिए वह उससे भी शादी नहीं कर पाती है।

वैश्वीकृत समाज की झांकी- रघुनाथ की बहु सोनल का शादी के बाद अमेरिका चली जाना और यहाँ पर पति की हरकतों की वजह से वापस भारत आ जाना बहु सोनल का भारत वापस आ जाना और अपनी नौकरी करने के साथ ही संजय के परिवार के साथ रहना। अपने समय में रघुनाथ और पत्नी शीला कभी एक-दूसरे से अलग नहीं रहें। लेकिन बुढ़ापे में रघुनाथ और शीला का भी एक-दूसरे से अलग रहना। दोनों को एक-दूसरे की कोई परवाह नहीं यहाँ तक भी सोनल को छोड़कर पूरा परिवार ही बिखर चुका था किसी को किसी की कोई याद नहीं आती थी। समाज के लोगों की बदलती मानसिकता का ही परिणाम हुआ कि समाज के लोग न आधुनिक सोच को स्वीकार कर पा रहे हैं और न ही अपनी रूढ़वादी पारम्परिक सोच को ही चला पाने में सफल हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में नई पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी से टकराहट वास्तव में उन्हें परेशान करता है। “सोनल के पिता सक्सेना का यह कथन-कोई जरुरत नहीं है इस दिखावे और तमाशे की। शादी के लिए कोर्ट है और दोस्त मित्रों के लिए रिसेप्शन। यह मैं कर ही

दूंगा, फिर?...ऐसे एक बात बता दूँ, जिस कम्पनी में और जिस कंट्रेक्ट पर अमरीका जाना है, उससे तीन साल में कोई भी इतना कमा लेगा कि अगर उसका बाप चाहे तो गाँव का गाँव खरीद ले। समझे?"[24] सोनल के पिता द्वारा लड़के को पैसों की लालच का दिया जाना उसे और अधिक लालची और महत्त्वाकांक्षी बना देता है। अत्यधिक पैसे की चाह में वह अपने पराये जो भी हो मानवीय संवेदनाओं और आपसी रिश्ते को भूल जाता है। वह मान लेता है कि कोई भी रिश्ता पैसे की बदौलत प्राप्त किया जा सकता है। पैसे के अभाव में जिन्दगी कुछ भी नहीं है। अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा की वजह से वह अपने आपको अपने लोगों को यहाँ तक की अपनी पत्नी को भी भूला देता है जिसकी वजह से वहाँ तक पहुँच पाने में वह सफल होता है।

जब संजय सोनल के पिता से यह कहा जाता है कि आपने बहुत देर कर दी और पिताजी (रघुनाथ) सामाजिक व्यक्ति हैं लोकलाज जाति-पात में विश्वास करने वाले जरा-पुराने ख्यालात के हैं। तो सक्सेना संजय के पिता से बात न करके केवल बेटे को ही लालच देते हुए समझाते हैं कि –" 'देखो सजू'! 'ला ऑफ़ ग्रेविटेशन' का नियम केवल पेड़ों और फलों पर ही नहीं लागू होता, मनुष्यों और सम्बन्धों पर भी लागू होता है। हर बेटे-बेटी के माँ बाप पृथ्वी हैं। बेटा ऊपर जाना चाहता है, और ऊपर थोडा सा और ऊपर, माँ बाप अपने आकर्षण से उसे नीचे खींचते हैं। आकर्षण संस्कार का भी हो सकता है और प्यार का भी, माया मोह का भी! मंशा गिराने की नहीं होती, गिरा देते हैं! अगर मैंने अपने पिता की सुनी होती तो हेतमपुर में पटवारी रह गया होता! तो यह है! मुझे जो कहना था, कह चुका। तुम्हें जो ठीक लगे करो! हाँ जाने से पहले सोलन से भी बात कर लेना!"[25] उपन्यास में रघुनाथ का जीवन शुरूआती दौर में ग्रामीण परिवेश का रहा। बच्चों के बड़े हो जाने पढ़-लिख लेने के बाद उनका सम्बन्ध गाँव से कम और शहरी परिवेश जीवन चरित्र और परिवेश से वहां की बदलती मानसिकता और आधुनिक विचारधारा की स्वीकृति दुनिया में द्वंद्व से होते हुए अंत में नियति को स्वीकार कर लेने में ही अपनी समझदारी समझते हैं। प्यार और रिश्तों की अहमियत को लेकर आधुनिक युवा पीढ़ी की भौतिकतावादी स्वार्थी सोच बनती जा रही है। जिसमें 'ओनली फॉर फन' है किसी प्रकार की कोई नैतिकता या शिकायत नहीं।

प्रेम भावनात्मक कम और देहात्मक ज्यादा होता जा रहा है। बदलती प्रेम की परिभाषा और युवा मानसिकता यह समाज और सामजिक परिवेश दूसरे शब्दों में कहे तो स्वीकार नहीं है। पश्चिमी सभ्यता का आकर्षण और खुले विचार स्वयं तक की व्यक्तिगत सोच का नतीजा हो सकता है। "प्यार बंद और सुरक्षित कमरें की चीज नहीं है। खतरों से खेलने का नाम है प्यार। लोगों की भीड़ से बचते बचाते, उन्हें धता बताते, उनकी नजरों को चकमा देते जो किया जाता है-वह है प्यार! शादी से पहले यही चाहती थी सरला। शादी के बाद तो यह विश्वासघात होगा, व्यभिचार होगा, अनैतिक होगा। जो करना है, पहले कर लो। अनुभव कर लो एक बार। मर्द का स्वाद! एक ऐडवेंचर! जस्ट फॉर फन!"[26] आज 21वीं सदी में आर्थिक क्षेत्र की गतिविधियां हमारे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में बाजारीकृत संस्कृति के फायदे-नुकसान के साथ उत्पादन और उपभोक्ता तक ही सीमित होकर रह गया। और रिश्तों की अहमियत उसकी गहराई छिछली होती जा रही है दिनप्रतिदिन। उपन्यास के पात्रों में संजय और धंनजय दोनों भाइयों के लिए रिश्ते चाहे वह किसी प्रकार का रिश्ता हो सब जिन्दगी में सफलता की ऊँचाई पर पहुँचने के लिए एक सीढी मात्र हैं उसके सिवाय और कुछ नहीं। जिसका फायदा दोनों भाई अपने जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रयोग करते हैं।

दूसरी तरफ सोनल का चरित्र जो काबिले तारीफ़ है। सोनल परिवार और रिश्तों को सभलना जानती है। वह अमेरिका में वापस आने के बाद अपनी सास-ससुर के घर परिवार को अपना समझ उन्हें अपने पास रखती है। अपना समझती है। शीला हो या सोलन हो या सरला और उनके साथ और जो स्त्री पात्र आती हैं सभी की जिंदगी कहीं न कहीं अधूरी ही रहती है। जिन्दगी में प्यार, सुकून और जिन्दगी जीने की ख़ुशी उनको नसीब नहीं होती है जबकि युवा सोनल और सरला दोनों ही आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं।

प्रेम को लेकर दूसरा आधुनिक सुझाव जिसमें केवल पुरुषों को ही छूट देने की बात कहीं गई है। आज भी स्त्री-पवित्रता और इज्जत का चोला स्त्रियों ने ही ओढ़ रखा है। -"एक बात गाँठ बाँध लो सल्लो, तुम दोनों एक साथ कर ही नहीं सकतीं। यह समाज ही ऐसा है। प्रेम करो या विवाह करो। और जिससे प्रेम करो उससे विवाह तो हरगिज मत करो! ब्याह की रात से ही वह प्रेमी से मर्द होना शुरू कर देता है। अगर

मुझसे पूछो तो मैं हर पत्नी को एक सलाह दे सकती हूँ। वह अपने पति को अपने से बाहर-घर से बाहर-अगर वह पति का प्यार पाना चाहती है तो –घर से बाहर प्रेम करने की छूट दे, उकसाए उसके लिए! क्योंकि वह कहीं और किसी को प्यार करेगा, तो उसके अंदर का कडवाहट रूखापन भरता रहेगा और इसका लाभ उसकी बीवी को भी मिलेगा! बीवी ही नहीं, बच्चों को भी मिलेगा! समझा?"

"और पत्नी भी ऐसा ही करे तो?"

"तो जीवन भर नर्क भोगने के लिए तैयार रहे! पति तो पति, बच्चे तक माफ़ नहीं करेंगे इसके लिए!"[27] स्त्री हो या पुरुष जब तक उसके मन में व्यक्तिगत संतुष्टि का भान नहीं होगा उसकी तलाश जारी रहेगी। जब तक जीवन में ठहराव न आ जाए यह आज की ही नहीं सदियों से ही चला आ रहा है। एक वैवाहिक स्त्री पति के साथ खुश और संतुष्ट होकर रहती है या स्वत: स्थिति को स्वीकार कर मान लेती है यह कह पाना मुश्किल है। लेकिन आधुनिकता और आज पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव ने स्त्री मन को स्वयं के अस्तित्व को समझने और उसके अनुसार आगे बढ़ने की खुली छूट दे दी है। जिसमें स्त्री अपने अस्तित्व को पहचान आगे बढ़ रही है, लेकिन अभी ठहराव आना बाकी है। वह समझ नहीं पा रही है कि किधर जाना सही है और किधर जाना गलत होगा। वह बस चली जा रही है। ऐसे समय में स्त्री को ठहरने, अपने वजूद को समझने और उसके परिष्कार के लिए विचार करने की जरुरत है। तभी वह अपनी पहचान बनाने में कामयाब हो सकती है। प्रेम की आधुनिक परिभाषा- "सुनो, प्यार एक खोज है सल्लो। जीवन-भर की खोज। कभी खतम, कभी शुरू। खोज किसी और की नहीं, खुद की! हम स्वयं को दूसरे में ढूंढ़ते हैं, एक बिछड़ जाता है या छूट जाता है तो लगता है जिन्दगी खत्म। जीने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। आँखों के आगे शून्य और अँधेरा! हर चीज बेमानी हो जाती है। लेकिन कुछ समय बाद कोई दूसरा मिल जाता है और नए सिर से अंखुआ फूट निकलता है! फिर लहलह, फिर महमह! यह दूसरी बात है कि दूसरा भी स्वयं को ढूंढ़ते हुए टकराता है! सच कहो तो प्यार की खूबसूरती हर बार उसके अधूरेपन में ही है!"[28] किसी भी चीज का अधूरापन जिंदगी को सालता ही है, लगाव हमेशा अलग होने पर दु:ख ही देता है, अगल-अलग होने से ख़ुशी महसूस होती है और साथ ही साथ उसी रूप में वह चाहत भी बनी

रहती है तो फिर अलगाव ही क्यों? कैसा? इसके लिए भौतिक दूरियां माइने नहीं रखती हैं। किसी के दिल में रहना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। किसी वजह से किसी को परिस्थियां अलग कर दे वह अलग बात है लेकिन किसी और के साथ जाकर यह कहना 'मैं प्यार में हूँ।' यह सही नहीं है प्रेम का मतलब ही होता है दो का मिलकर एक हो जाना। एक तरफ़ा अगर हम किसी चीज या रिश्ते को बनाये रखने की बात करते हैं तो वह प्रेम या आपसी लगाव या तड़प की श्रेणी में नहीं आता है। जब सामने वाला पहले जैसी संसर्ग होने के एहसास की ख़ुशी नहीं दे सकता तो कैसे स्वीकार कर ले कि प्यार की खूबसूरती अधूरेपन में है।

1.2 शिक्षा का बाजारीकरण और उसका समाज पर प्रभाव

आधुनिक समय में शिक्षा, शिक्षित समाज के निर्माण के लिए कम व्यवयाय और पूँजी के लिए व्यावसायिक होती जा रही है। सदियों से शिक्षा के माध्यम से एक स्वस्थ समाज का निर्माण होता रहा है भारतीय परिवेश में शिक्षा के इतिहास को देखे तो प्राचीनकाल से शिक्षा सभ्य समाज के निर्माण के लिए बड़े-बड़े राजाओं के राजकुमार सभी को अपना सब कुछ का त्यागकर गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते थे। आधुनिक शिक्षा समाज कल्याण और सभ्य समाज के निर्माण की ओर अग्रसर है। लेकिन वैश्वीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति ने शिक्षा जगत की संवेदना और एक शिक्षित समाज को वहीं भोक्तावादी समाज के लिए भौतिक विकास अर्थात आभासी दुनिया के निर्माण हेतु मशीनीकृत आभासी समाज निर्माण में सहज संवेदना के दोहन का कार्य कर रही है। आधुनिक शिक्षा जगत की 'टेक्निकल एजुकेशन' केवल ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने का ध्यान में रखकर की जा रही है न कि ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से। ज्ञानात्मक दृष्टि से शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति कमतर समझा जाता है। वर्तमान दुनिया में शिक्षा व्यावसायिक होती जा रही है। जिसके लिए लाखों रूपयों का डोनेशन दिया जा रहा है। ऐसे लोगों और ऐसी शिक्षा के माध्यम से ही हमारे समाज में संस्कार और आपसी रिश्तों में व्यवहारिकता की कमी

होती जा रही है। युवा पीढ़ी स्वयं पैसा छापने वाली मशीन बनती जा रही है। ऐसी शिक्षा ज्यादातर वह स्वयं स्वीकार कर रहे है। डोनेशन देने के बाद भी कोई गारंटी नहीं होती की नौकरी लग ही जाएगी।

वैश्वीकृत समाज की बेचैन हवा में सांस लेते हुए ‘रेहन पर रग्घू’ उपन्यास में रघुनाथ जी की मार्मिक और संवेदनशील अभिव्यक्ति दिल को छू जाती हैं-“शीला, हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों, कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है- मेरी औरत बाँझ है और मैं नि:संतान पिता हूँ! माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने! हमने न बेटे की शादी देखी, न बेटी की! न बहू देखी, न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे माँ-बाप हैं, जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है और बेटी धौंस देती है कि इजाजत नहीं दोगे तो न्यौता नहीं दूँगी।” और छोटा बेटा है जो ‘शार्टकट’ से बड़ा आदमी बनना चाहता है! उसे पढ़ाई-लिखाई अपनी मेहनत और दिए गये पारिवारिक संस्कारों से कोई मतलब नहीं है। उसके लिए बड़ा आदमी का मतलब है धनवान आदमी, न कि संस्कारी या समझदार होना। वह महत्त्वाकांक्षी लड़का है लेकिन लालच को भी महत्त्वाकांक्षा समझता है! वह बहुत कुछ हासिल करना चाहता है, आनन फानन में लेकिन बिना पढ़े लिखे, बिना अच्छे नम्बर लाए, डिवीजन लाए, बिना प्रतियोगिताएँ दिए, बिना खटे और नौकरी किए।”[29] वास्तविकता और स्वस्थ व्यवहार कुशल समाज वैश्वीकृत होने के साथ-साथ विकृति भी हो रहा है। जिस बात की कल्पना ही नहीं किया होगा किसी ने। समाज और समाज के नई पीढ़ी की मानसिकता को कैसे दिग्भ्रमित करता हुआ बाजार और बाजारी संस्कृति उसे अपनी मानवीय संवेदना और नैतिकता से दूर कर अनैतिक समाज और संवेदनशून्य बनाता जा रहा है। 21वीं सदी की पीढ़ी जिसे विकास समझ रही है वास्तविकता यह है कि वह दिनप्रतिदिन एक भयावह समाज की गर्भ में अग्रसर है। जब भी रघुनाथ घर में पैसे को लेकर परेशान होते थे तो संजय हमेशा बोलता था कि अभी देख लो पापा परेशान नहीं होइए “मैं इतना पैसा कमाऊंगा कि घर में रखने की जगह नहीं रहेगी। लेकिन कमाने के इस रहस्य को न वे समझ पाए, न सक्सेना! आज उन्हें लग रहा था कि उससे सोनल से शादी सोनल के लिए नहीं, अमेरिका के लिए की थी!”[30] लेकिन उसकी बदल रही मानसिकता को कोई नहीं समझ पाया था संजय व्यावहारिक रिश्तों से ज्यादा पैसों को अहमियत

देने लगता है। सोनल के पिता द्वारा दी जाने वाली लालच को बिना परिवार से बताये शादी कर लेता है। उसे सोलन नहीं बस अपना भविष्य दिखता है। इस प्रकार सोलन के पिता द्वारा दिए गये फार्मूले का इस्तेमाल करता हुआ जो भी चीज़ उसके रास्ते की रुकावट बनी उसे छोड़ता गया और जो चीज़े उसे ऊँचाई पर जाने में सहयोगी बनती गई उसे महत्त्व देता रहा बिना यह महसूस किए की इससे किसी रिश्ते पर क्या फर्क पड़ेगा।

आधुनिक समाज की सबसे बड़ी सच्चाई जिसके बारे में उपन्यास में जिक्र किया गया है कि बनारस में स्थिति अशोक विहार वह जगह है जहाँ ज्यादातर बुड्ढे लोग रहते हैं जिनका परिवार अर्थात बच्चे विदेशों में रहते हैं अपने माँ पिता को छोड़कर। शहर में आकर रघुनाथ भी उन्हीं के समाज में शामिल हो जाते हैं। वहां के कुछ लोग उनके दोस्त बन जाते हैं और उनके बीच उनका आपसी संवाद होता रहता है। रघुनाथ का भी एक दोस्त होता है जिसकी हत्या करवा दी जाती है। उनके ही गोद लिए बेटे के द्वारा जमीन के लिए। उनकी मृत्यु पर वह सोचते हैं-"इस नगर में आने के बाद जो आदमी अकेला दोस्त हुआ था उनका वह बापट थे। उनके मुंह से आश्चर्य की तरह नहीं, एक 'आह' की तरह निकले ये वाक्य-"यह क्या होता जा रहा है लोगों को! यह कैसी होती जा रही है दुनिया! हम बहुत अच्छे नहीं थे लेकिन इतने बुरे तो नहीं थे!"[31] बदलती सामाजिक दुनिया की सच्चाई को हमारी पुरानी पीढ़ी पचा नहीं पा रही है जबकि नई युवा पीढ़ी को बदलती दुनिया का आभासी पटल ही उसे अत्याधिक आकर्षित कर रहा है। उन्हें न वास्तविक समाज का भान है और न ही वह करना चाहते हैं। रघुनाथ का यह कथन-"इसी दुनिया में कभी हरा रंग भी होता था भाई वह कहाँ गया।" बहुत ही मार्मिक कथन है। बदलते समय और समाज के साथ बदलती मानसिकता ने सब कुछ बदल दिया है। कभी परिवार समाज देश में शांति भी हुआ करती थी जिसका प्रतीक हरा रंग है जिसकी तरफ रघुनाथ इशारा करते हैं। लेकिन वैश्वीकरण के दौर में भौतिकतावादी जीवनयापन की प्रवृत्ति ने सब कुछ ध्वस्त कर दिया है। दुनिया में बचा अगर कुछ है तो वह है-अशांति। परिवार के होते हुए भी सभी ने एक दूसरे को भुला दिया है यहाँ तक की पत्नी भी अब याद नहीं करती है कि जिन्दा भी है या मर गये। इस प्रकार हम देखते हैं की आधुनिक शिक्षा और

बाजारीकृत संस्कृति किस प्रकार नई पीढ़ी की मानसिकता को प्रभावित करती जा रही है। बाजार का सम्बन्ध पूँजी और उपभोक्तावादी समाज से है। जिसका प्रभाव उसी रूप में समाज के लोगों की मति भ्रष्ट कर अपाहिज बना मानवीय संवेदना को समाप्त करता हुआ 'रोबोट मशीन' की तरह बस लक्ष्यहीन हो विकास की दौर में सबसे आगे निकलने के लिए भीड़ में शामिल होते जा रहे हैं।

ममता कालिया के उपन्यास दौड़ में कैरियर कि भागदौड़ और जीवन संघर्ष को विषय बनाया गया है। वर्तमान शिक्षा 'कैरियर ओरिएंटेड' होती जा रही है। जिसका मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना मात्र हो गया है। पैसे और नौकरी की भाग-दौड़ में व्यक्ति स्वय को भूलता जा रहा है । बदलते समय और समाज की आवश्यकताओं की और मशीनीकरण के युग ने मनुष्य को मशीन की भांति संवेदनहीन बनाता जा रहा है। घर परिवार माँ-बाप, भाई किसी की कोई संवेदना शेष नहीं बच पा रही है। यहाँ तक की पति-पत्नी के बीच भी जुड़ने वाला सम्बन्ध दोनों तरह से सहज नहीं रह गया है। दोनों के जीवन में पहले उसका कैरियर और उसको ज्यादा से ज्यादा सफल बना पाने की भाग दौड़ है उसके साथ कोई समझौता नहीं करना चाहते । संवेदनशील सहज मानवीय रिश्तों को भी टेक्नोलोजी की भांति सबसे तेज भागने की होड़ में अपने आपको मशीन बनाता जा रहा है। उपन्यास का नायक माँ के समझाने पर कहता है कि 'क्या इंजीनियरिंग की पढ़ाई करवाने के लिए मैंने कहा था और अब जब की है तो करना ही पडेगा।' आप लोगों से घर परिवार से दूर रहकर ही वह अपने कैरियर में सफल हो सकता है। नौकरी घर के अन्दर तो मिलती नहीं है और अच्छी मार्केटिंग नौकरी के लिए अलग-अलग बड़े-बड़े शहरों में रूख करना ही पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कहीं न कहीं समय की मांग और मजबूरियों ने इंसान को हैवान बनने पर मजबूर भी कर रहा है।

'रह गई दिशाए इसी पार' उपन्यास में संजीव ने वैज्ञानिक अविष्कारों के माध्यम से हो रहे अविष्कारों को ध्यान में रखकर उसकी वजह से होने वाले मानवीय संवेदनाओं की और आपसी सहज रिश्तों के बीच होने वाली विसंगतियों को रिश्तों की घालमेल को बिषय बनाया है। वैज्ञानिक दृष्टि से मानव दिन-प्रतिदिन सफलता के शिखर की ओर अग्रसर हो रहा है लेकिन कहीं न कहीं मानवता के वास्तविक

जीवनयापन के व्यवहारिक संवेदनाओं से दिन-प्रतिदिन दूर होता चला जा रहा है। प्रकृति प्रदत्त चीजों से होने वाली छेड़छाड़ मानवीय सहजता को कृत्रिम बना रही हैं। 21वीं सदी का युग मशीन अर्थात 'रिबोट टेक्नोलॉजी' का युग साबित होगा। ऐसे में वास्तविक दुनिया की सहजता आभासी दुनिया की निर्मित करता हुआ प्रकृति की सुन्दरता को जड़ बना देगा। जिससे वास्तविकता का भान तो होगा लेकिन वास्तविक दुनिया मात्र कवि की कल्पनाओं में सिमट कर रह जाएगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैश्वीकृत समाज में शिक्षा का वास्तविक रूप कैसे प्रभावित हुआ है। इतना ही नहीं जो शिक्षा मनुष्य शिक्षित बनाकर परिवार समाज को सभ्य और स्वस्थ दिशा की तरफ अग्रसर करने का काम करती रही है । जिसे प्राप्त करने के लिए राजा और रंक दोनों के बच्चे साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते रहे हैं । शिक्षा प्राप्त करने के बाद स्वस्थ समाज के निर्माण में अपने नैतिक मूल्यों के साथ देश और समाज को दिशा देने का काम किया है। लेकिन वर्तमान शिक्षा विद्यार्थी के मानसिकता को परिवर्तित कर उसकी सहजता और नैतिकता के गुणों का ह्रास कर उसे पैसा कमाने वाली मशीन बनाने के साथ उसकी मानवीय सम्वेदनाओं का भी दिन-प्रतिदिन ह्रास कर रही है जिससे उसकी संवेदना जड़ बनती जा रही है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वैश्वीकृत समाज में बाहरी कंपनियों के आगमन से भारतीय परिवेश में काफी हद तक बेरोजगारी कम हुई है। लोगों को रोजगार प्राइवेट सेक्टर में मिलने लगे हैं। लेकिन 'ह्वाइट कॉलर जॉब' ने इंसान को इंसान से मशीन बनाने में कोई कमी नहीं छोड़ रही है। 21वीं सदी का व्यक्ति मशीन टेक्नोलोजी का गुलाम हो गया है इतना ही नहीं उसकी धड़कने अमेरिका के सेंसेक्स के अनुसार धडकती हैं। स्वत: धडकने की कला हृदय भूलता जा रहा है।

3.3-ग्रामीण समाज का 'स्थानीयकरण' (Localization)

ग्रामीण समाज का स्थानीयकरण से तात्पर्य वैश्वीकरण के सम्बंधित (स्थानीयकरण अर्थात लोकलाइजेशन से सम्बन्धित है। 20वीं सदी के अंत तक जो ग्रामीण समाज अपने सहज रूप में प्रकृति

प्रदत्त सदाबहारी शांत और सुकून प्रदान करने वाला था वह समाज आज 21वीं सदी में अपनी सहजता और अपनी गुणवत्ता दिन-प्रतिदिन खोने लगा है। क्योंकि गाँव अब गाँव नहीं रहा अर्थात गाँव में अब शहर आ पहुंचा है। ‘बाजार’ एवं सूचना यंत्र जैसे- मोबाईल, टी.बी, कैमरा, इंटरनेट आदि के माध्यम से ‘फ्री-फ्लो’ रूप में घटित होने वाली बाजारीकृत संस्कृति ग्रामीण समाज की स्थानीयता को जमीनी स्तर पर प्रभावित कर रही है। उनकी वस्तु सेवा श्रम प्रतिभा का आदान-प्रदान हो या न हो लेकिन उन तक बाजारीकृत संस्कृति उसकी सोच और उसके उत्पाद आसानी से बाजार के माध्यम से ग्रामीण समाज के घरों में आसानी से पहुँच रहे हैं। जिसकी वजह से ग्रामीण इलाके कुटीर उद्योग और मनोरजन के साधन आ जाने से घर के लोगों की मौजूदगी और घर में पड़ी हुई छोटी-बड़ी तथा पुरानी वस्तुओं का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। “सभ्यता और संस्कृति के अनेक पडावों को पाकर वर्तमान दुनिया एक विश्वग्राम में तब्दील हो रही है।”[32] अर्थात स्थानीय वस्तुएँ वैश्विक स्तर पर पहुँच रही हैं। और वैश्विक वस्तुएँ स्थानीय जगहों में पहुँच रही हैं। जिसके माध्यम से स्थान विशेष से सम्बन्धित वस्तु, व्यापार, रहन-सहन, भेष-भूषा, भाषा, बोली परिवार, समाज ज्ञान-विचार आदि सभी चीजों का अपना वास्तविक रूप परिवर्तित होकर वैश्विक स्तर पर सभी चीजें परिवर्तित होती रही हैं। जिसका सम्बन्ध ग्राम में विश्व की अवधारणा प्रबल सिद्ध हो रही है तो दूसरी ओर संक्रमण को बढ़ावा मिल रहा है। **सत्य नारायण पटेल का उपन्यास ‘गाँव भीतर गाँव’** जिंदगी की वास्तविक गाथा है। जिसमें लेखक जिंदगी के वास्तविकता का भान कराता हुआ मृत्यु से मृत्यु तक का सफर तय करता है। ‘जीवन सत्य जगत मिथ्या’ इस दार्शनिक युक्त को सार्थक करता हुआ उपन्यास का कलेवर वास्तविक और यथार्थ जगत को अपने समय और समाज की स्पष्ट झांकी प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। उपन्यास की शुरुआत उपन्यास की नायिका दलित स्त्री झब्बू के पति कैलास की अकस्मात् मृत्यु से होती है। “कैसे पार करे! जिन्दगी एक काला समुंद्र। टूटी नाव छितर-बितर। चप्पू भी छीना जोर-जबर। तू बड़ा निर्दयी ईश्वर। कैसे जिये कोई प्राण बगैर! झब्बू की आँखों में कुछ ऐसे ही भाव, आँसू की जगह बेआवाज बह रहे, और झब्बू नि:शब्द थी।”[33] उसके बाद शुरू होती है एक दलित स्त्री के संघर्षो की जीवंत दास्तान। उपन्यास

गाँव की राजनीति शुरू से अंत तक घुली मिली बसी और सक्रिय मुद्रा में रहती है। उपन्यास के सभी पात्र राजनीति और उसकी चहलकदमी और चालाकियों से बहुत अच्छे से वाकिफ हैं। बात विवाद और संवाद के दौरान वो हमेशा व्यंग्यात्मक रूप से राजनीतिक गतिविधियों पर टिप्पणी करते हुए दीखते है। दलित पात्र 'हम्माल' के कहने पर कि "ट्राली पलती तो हम खाद के दानों की तरह बिखर जाएंगे। एक हम्माल ने रस्सी को और मजबूती से पकड़ते हुए कहा। "हम खाद के दाने ही तो हैं, इस देश-दुनिया के विकास की, और तरक्की की खाद के दाने। कैलास ने दूर-दूर तक फैले खेतों को देखते हुए कहा।"[34] दलितों पर होने वाले शोषण की कहानी अभी तक आज 21वीं सदी में भी कहानी नहीं बन पायी है। वह दास्तान आज भी हकीकत ही बनी हुई है। जिसकी तरफ कैलास और उसके साथी मुक्त होने की कामना करते हैं। लेकिन शासन की जर्जर स्थिति में ही उन्हें मुक्त नहीं मिल सकती है जिसकी तरफ ये इशारा करते हैं। जब वह खाद बन मिटटी में मिल जायेगे तो "एक तरह से खुद अनाज का दाना ही बन जाएँगे। तब उन्हें बाजार में बेचा जायेगा।"

'गाँव भीतर गाँव' उपन्यास एक संघर्षशील लड़की झब्बू की दास्तान से शुरू होता है- "जब वक्त के निर्दय पंजों ने, झब्बू के जीवन से शृंगार के सभी रंग पोंछे, तब महज बीस-इक्कीस की ही थी वह। झब्बू की जाति में ऐसा कोई रिवाज नहीं था (जैसा की हिन्दू समाज में होता रहा है) कि विधवा काली या सफेद साड़ी, लगड़ी ओढेगी।। अगर होता तो वह रंगीन छपकेदार साडी कभी न ओढ़ पाती। तब शायद उदासी का रंग और ज्यादा गहराता।" दलित संस्कृति का विकसित रूप हम यहाँ देख सकते हैं जहाँ मानवता श्रेष्ठ है न कि रूढ़िवादी संस्कृति का आडम्बर। झब्बू की रोजी-रोटी का सहारा बना "मशीहा सिलाई प्रशिक्षण केंद्र" जिसको उसने खुद तक ही सीमित नहीं रखा। वह सिलाई केंद्र समाज में चली आ रही बुराई को मैला ढोने की प्रथा का विकल्प बनकर स्वाभिमान की रोटी-रोटी कमाने और जीवन के अपने अनुसार जीने का सहारा बनता है। इतना ही नहीं समाज में स्त्री को आत्मनिर्भर भी बनता हुआ। दलित समाज की स्त्रियों मे चेतना का संचार करता है। जिसे देखकर उसी गाँव के सवर्ण तिलमिला जाते हैं।

‘पटेल जी’ का उपन्यास ‘गाँव- भीतर गाँव’ शीर्षक की कल्पना वर्तमान समय और समान की मांग के अनुसार एक ग्लोबल विलेज बनने की तरफ भी इशारा है। उपन्यास में किसी गाँव विशेष के नाम का जिक्र न होना यह सूचित करता है कि आज भी हर एक गाँव के बीच एक और एक गाँव मौजूद है जो आज भी मुख्य गाँव के अनुसायियों से कहीं अलग जीवन जीने पर मजबूर है। उपन्यास में एक ही गाँव में दलित जाति समाज और सवर्ण जाति समाज दोनों ही एक ही जगह एक ही गाँव में निवास करते हैं यहाँ तक की उनके गाँव का रास्ता भी एक है लेकिन गाँव की गतिविधियों उनके लोगों के रहन-सहन आदि के बारे में जिक्र से पता चलता है कि वह एक गाँव नहीं बल्कि गाँव के भीतर भी एक गाँव मौजूद है जिसके जीवनयापन और सामजिक पहचान मुख्य गाँव से कहीं अधिक भिन्न भी है जिसकी तरफ पटेल जी इशारा करते हैं। उपन्यास का शीर्षक ग्लोबल गाँव के संदर्भ में आज के समयानुकूल और सार्थक है।

गाँव में पहला संघर्ष शुरू होता है कलाली हटवाने को लेकर। “कलाली” “गांवों में देशी शराब का ठेका” जो ज्यादातर ग्रामीण लोगों को शराबी बना रहा था। जिसको हटाने के लिए गाँव की ज्यादातर दलित स्त्रियाँ अनशन करती हैं। यह ‘कलाली’ जामसिंह ठाकुर का है। जिसे लाने के लिए उसे बहुत से पापड़ बेलने पड़े थे। और आज उसे ही गाँव से कहीं बाहर लेकर लगवाने की बात झब्बू जैसी दलित स्त्री उच्च जाति के जामसिंह ठाकुर से निवेदन करती है। जिसका निवेदन जामसिंह को गवारा नहीं गुजरा। उसने कहा “कैलास तो टैक्टर पलटने से मरा था न! दारू पीकर तो नी मरा, जो मुंह उठा चली आयी, कलाली हटवा लो! मालूम भी है, कितनी झक मारनी पड़ती, तब खुलती है कलाली।” जवाब में झब्बू “ट्राली पलटने से तो मेरी ही माँग उजड़ी। दारु जाने कितनी औरतों की माँग उजाड़ेगी! जिन बच्चों की खेलने खाने की उमर है, वे भी आड़े-छुपके पीने लगे। दूर रहेगी तो कम से कम बच्चे न बिगड़ेंगे। मैं सिलाई करती हूँ। मेरे यहाँ आने वाली बहूँ-बेटियां तानो-तिसनो से भी बचेंगी।”[35] झब्बू की सामाजिक सुधार की सोच और उसके लिए उसका सक्रिय होना यह दर्शाता है कि आंधी दुनिया के योगदान अर्थात स्त्री समाज के बिना कभी सभ्य, स्वथ्य समाज का निर्माण और उद्धार सम्भव नहीं है। झब्बू के घर के

सामने कलाली होने की वजह से भी वह चाहती थी की वह वहां से हट जाए तो अच्छा होगा। क्योंकि उसे भी उसकी वजह से काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता था। और दूसरी तरफ बच्चे-बूढ़े और जवान सभी दारू की लत में मशगूल हो रहे थे। जिससे गाँव की स्थिति बिगडती नज़र आने लगी थी। वैश्वीकृत समाज का एक ही वसूल है बाजार व्यापार और लाभ ही लाभ कमाना। इस पैमाने पर जो भी खरा उतरेगा वह फिर किसी सी जाति समूह से सम्बन्ध रखता हो कोई फर्क नहीं पड़ता। कलाली की दुकान हटवाने से शुरू होती है झब्बू के गाँव समाज और अपने स्वाभिमान के संघर्षों की तास्तान और जिसके लिए वह अपने जीवन के अंत तक संघर्ष करती रही। उसके संघर्षों से दलित समाज में जमीनी स्तर पर बदलाव की लहर जगी। जहाँ तक ‘कलाली’ का प्रश्न है वह वहाँ की एक जाति है जिसका खानदानी व्यवसाय रहा है ‘शराब बेचना’। लेकिन वैश्वीकरण के दौर मैं नफा-नुकसान देखकर इसे उच्च तबके के लोगों ने निम्न जाति का पेशागति व्यवसाय को अपना लिया था। क्योंकि बाजार ने ऐसा मौका मुहैया करा दिया जिसके माध्यम से ज्यादा फायदा हो रहा था। जहाँ तक मैला उठाने का कार्य है उसका रूप बदल गया है। जो व्यवसाय पहले भंगी समाज तक सीमित था उसका रूप बदलकर सुलभ शौचालय बनवाना एक व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है उससे लाभ हो रहा है तो अब वह व्यवसाय भंगी तक सीमित न रहकर स्वर्ण समाज के लोग भी नौकरी कर रहे हैं। यह सब बाजार और बाजारीकरण की संस्कृति की देन है जिसका उद्देश्य बन पैसा कमाना है उसके लिए कोई काम छोटा-बड़ा नैतिक-अनैतिक की श्रेणी में नहीं आता है। समाज अपने फायदे के अनुसार समाज के नियम क़ानून में परिवर्तन हुआ स्वयं भी बदलता रहता है।

नयी पीढ़ी की प्रतीक झब्बू की बेटी रोशनी और जग्गू की बेटी रधली(राधिका) युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली के रूप में सामने आती हैं। दोनों ही अपने नाम के अनुरूप समाज में रौशनी की किरण बनकर चमकती हैं। दलित समाज की पढ़ी-लिखी और होनहार स्त्री चरित्र अर्थात वर्तमान युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्त्व करती हुई समाज सुधार में अपना पूरा योगदान देती हैं। उनका उद्देश्य दलित समाज की स्थिति को बेहतर करना और साथ ही साथ समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मान्यताओं को समाप्त कर

समाज में रोशनी फैलाना था जिससे सम्पूर्ण समाज प्रगति पथ पर अग्रसर हो देश के विकास में अपना योगदान दे सके। जग्या रामरति की बेटी थी राधली। गाँव में जाति इतनी रची बसी थी की बच्चे-बच्चे को पता होता था कि कौन किस जाति का है और हमें किसका सम्मान करना बेहद जरुरी है। “राधली जानती थी की गाँव में छुआछूत का आलम कैसा है? वह किसके घर-झोपड़े में बेखटके जा सकती और किसके में नहीं। दया बागरी, दामू जाटव भी उससे ऊँचा जात। उनके घर की देहली भी नहीं लांच सकती। फिर झब्बू जात की बलाई। बागरी, जाटव से भी ऊँची। उसके घर की देहली कैसे लांघती! उसने देहली के बाहर ही रुकते हुए पूछा-क्या है काकी?”[36] जातिवादी समाज हमेशा से समाज के विकास में बाधक ही बना है कभी सहायक नहीं। जिसकी तरफ उपन्यास में इशारा किया गया है।

लेखक ने उपन्यास में गैर सरकारी संगठन ‘NON-GOVERNMENTAL ORGANIZATION (NGO) की भूमिका पर बहुत जोर दिया है। 21वीं सदी में ‘NGO’ की भूमिका किस रूप में समाज और समाज के लोगों की प्रगति और सुधार में सहायक है इसका मूल्यांकन करना जरुरी हो जाता है। क्योंकि बदलते समय और समाज में ‘NGO’ की भूमिका पर प्रश्न चिन्ह लग रहे हैं! जिस ‘NGO’ जैसी संस्था की भूमिका केवल समाज निर्माण में थी वह स्वयं शोषण का अड्डा बनती जा रही है। एन.जी.ओ. की वास्तविकता को भी बहुत ही सहज ढंग से चित्रित किया गया है। “उन दिनों एन.जी.ओ. सेक्टर बहुत तेजी से लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर रहा था। सिर्फ रफीक भाई जैसे बेरोजगार को ही नहीं, बल्कि आई.ए.एस. प्रोफसर, सम्पादक, पत्रकार और वकील जैसों को भी। लोग ख़ुशी-ख़ुशी एनजीओ को स्वीकार करते। समाज में किसी मामूली से एनजीओ कर्मी को भी मजबूर, किसान, शिक्षक, डॉक्टर, प्रोफसर की तुलना में ज्यादा इज्जत से देखा जाता।….एनजीओ की आंधी में मार्क्स, लेनिन, नेहरू और गाँधी-संघी एक पर पानी पीने लगे।”[37] ‘रफीक भाई’ नाम का व्यक्ति एनजीओ से जुडा था वह अपनी बात बहुत ही चालाकी से रखने में माहिर था। संवाद का एक प्रसंग आता है-“हजारों गाँवों में लाखों लोग हैं, जो मैला ढोते हैं। वे सब हमारे भाई-बहन हैं। उन सभी से ये काम छुड़वाना है। रफीक भाई अभी चुप नहीं हुआ था। वह पूरी संजीदगी के साथ ज्ञान कैप्सूल का उपयोग कर रहा था। ज्ञान

कैप्सूल स्वनिर्मित था। उसे नागरिक सुरक्षा क़ानून (1955), अनुसूचित जाति और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम (1989), सफाई कर्मचारी नियोजन एवं शुष्क शौचालय सन्निर्माण (प्रेतिशेध) अधिनियम (1993) आदि के मिश्रण से बनाया था।”[38]

भारतीय समाज में एक स्त्री की सबसे बड़ी कमजोरी है उसका अपना शरीर। पितृसत्तात्मक समाज अपने बलिष्ट होने और महान होने की धौस भी स्त्री की इसी कमजोरी का फायदा उठाकर देता रहा है। लेकिन झब्बू का चरित्र बहुत ही गठा और संघर्षशील स्त्री होती है। झब्बू से बलात्कार होने के बाद वह और ‘जग्या’ थाने रिपोर्ट लिखाने पहुँचे, जहाँ की स्थिति का वर्णन वह आज 21वीं सदी की आजाद और वैश्वीकरण के दौर में कर रहे थे जब पूरा विश्व एक है जिसकी कल्पना ग्लोबल विलेज के रूप में की जा रही है। “दीवार पर टंगी तस्वीरें सिर्फ तस्वीरें थीं। थाना वैसे ही चल रहा था जैसे आजादी के पहले चला करता। क़ानून भी आजादी के पहले का और मानसिकता भी। थाने की बिल्डिंग जरूर आजादी के बाद बनी थी। वक्त भी इक्कीसवीं सदी का था।”[39] यह सच्चाई है कि वक्त किसी का नहीं होता है। और यह भी सही है कि वक्त किसी का इन्तजार भी नहीं करता। लेकिन इसका मतलब तो यह नहीं है कि वक्त बीत जाएगा मौक़ा अच्छा है फायदा उठा लेना चाहिए यह बात कहाँ तक सही है। क्या यह जरुरी नहीं की वक्त की पहचान फायदा नुकसान देखकर नहीं बल्कि वक्त की नजाकत को समझने की जरुरत होती है। वक्त की नजाकत को ध्यान में रखकर जो भी कार्य हो उसका उद्देश्य सकारात्मक होना चाहिए। अगर ऐसा भान न हो तो बुरा वक्त समझकर उसे छोड़ देना चाहिए अच्छे वक्त की प्रतीक्षा में। लालची व्यक्ति का दिल और दिमाग एक वक्त के बाद काम करना बंद कर देता है। उसके बाद वह केवल फायदे का आदी हो जाता है। जब तमाम तर्कों के साथ झब्बू मुआवजा और इज्जत की तुलना करती हुई इज्जत को श्रेष्ठ बताते हुए मुआवजे को सारहीन शाबित कर देती है, तो झब्बू को मुआवजा स्वीकार करने के लिए रफीक भाई झब्बू को वक्त की मार को समझाते हुए कहते हैं कि वक्त से चूका इंसान और डाली से चूका बन्दर बाद में पछताते हैं। देखने वालों को उनसे कोई सहानुभूति नहीं होती। न ही कोई मदद को आगे आता है। बस तमाशबीन बन देखते हैं सब, और हंसते हैं। वक्त इंदिरा गाँधी के लिए भी कभी नहीं

ठिठका, तो तेरे लिए क्यों रुकेगा?”[40] एक स्त्री की सामने ऐसे प्रश्न जिसमें फायदा-नुकसान शामिल था लेकिन उसके अस्तित्व से जुडा प्रश्न जिसके लिए वह मुआवजा लेने से इनकार करती है और अपने साथ हुए हादसे के लिए न्याय की मांग करती है उसकी तरफ ‘NGO’ के कार्यकर्ता भी ध्यान नहीं देते हैं। फिर समाज सुधारक की भूमिका में ‘NGO’ भी बाजारीकृत समाज और संस्कृति का अनुयायी हैं, यह बात कहने में कोई गुरेज नहीं होनी चाहिए।

वैश्वीकरण के दौर में युवा जागरुक नई पीढ़ी ‘रोशनी’ और ‘राधली’ की भूमिका- रोशनी सरपंच के चुनाव के दौरान भाषण देती हुई कहती है कि “वो जो राजा साब का दलित एजेंडा था, वो हम जैसे गरीब-गुरबों के लिए नहीं, वो उन मालदार दलितों के लिए था जिनको प्रदेश और देश में चल रही उदारीकरण की नीतियों के कारण अपने धंधे में नुकसान उठाना पड़ रहा था। जो राजा साब की पार्टी से खफा हो गये थे। दलित एजेंडा उन्हीं को फायदा देने वाली और उन्हीं की घर वापसी की योजना थी। हम तो अपना नफा-नुकसान सोचे बगैर भेड़-बकरियों की तरह अपने नेता के पीछे चल पड़ते हैं। पर नेता खाली अपना नफा-नुकसान देखता है। फिर वह हमारी जात का हो या फिर कोई ठाकुर या पटेल हो।”[41] आगे वैश्वीकृत समाज पर टिप्पणी करते हुए रौशनी कहती है-“खेत तो उदारीकरण की चिड़ियाँ चुग रहीं। आज नहीं लड़ोगे, कल फिर अपने साथ भेदभाव होगा! तब फिर कुछ बोल भी नहीं सकोगे, क्योंकि खुद जिम्मेदार होगे। इसलिए मैं कहती हूँ कि लड़ो। हार जाओं तो हार जाओ...बगैर लड़े मत हारो। ये तो कायरता है!” [42] रोशनी कुल मिलाकर अपनी मम्मी को सरपंच के चुनाव के लिए तैयार करना चाहती है। वह शहर में पढ़ी-लिखी और देश-दुनिया की खबर रखने वाली जागरुक आज की युवा पीढ़ी है जो कि पेशे से पत्रकार भी है। देश-दुनिया और राजनीति की सभी तरह की चालाकियों को समझती है। वह गाँव में सरपंच के पद के लिए आयी दलित स्त्री की शीट पर अपने ही वर्ग के किसी को सरपंच के पद के लिए तैयार करना चाहती है। अभी तक चली आ रही राजनीतिक गन्दगी को भी वह कहीं न कहीं साफ़ कर अपने वर्ग के लोगों की स्थिति में सुधार लाने की कोशिश करती है। सवर्ण समाज के लोगों की स्थिति उनकी दशा पहले से ही सम्मानजनक और सुधरी हुई है इसलिए भी वह दलित समाज को

अपने से आगे निकलने या बराबरी का जीवन जीने से तड़फडाते हैं। क्योंकि वो आज भी नहीं चाहते कि उनके द्वारा गुलाम बनाए गए लोग पढ़े-लिखे और जागरूक हो सके। क्योंकि ऐसा होने पर उनकी गुलामी समाप्त हो जाएगी तो उनकी सेवा कौन करेगा। इसलिए भी वह धार्मिक रूढ़िवादी परम्परा को बनाकर रखना चाहते हैं।

लेखक आज की युवा पीढ़ी की गतिविधियों पर भी सभी का ध्यान बहुत बारीकी से खीचता है। झब्बू अपनी बेटी रोशनी की तर्कशक्ति और विद्वत्ता देखकर प्रभावित होने के साथ–साथ वह चिंतित भी रहती है। “उसे जार्ज मैडम की बात याद हो आयी कि रोशनी बहुत फ़ास्ट है। वह कुछ ज्यादा स्पीड से बड़ी हो रही। वह बूढ़ी भी जल्दी ही हो जायेगी। उसमें पढ़ने-लिखने और कुछ करने की असीम भूख है। परिपक्वता भी है, पर धैर्य कम है।”[43] आज की युवा पीढ़ी बहुत तेज आगे बढ़ रही है। वह बहुत जल्द बुलन्दियों को पाना चाहती है। वह क्षणिक सुख की प्राप्ति की तरफ बहुत ज्यादा लालाहित भी हो रही है। दूसरे शब्दों में कहे तो वह आज में ही जीना चाहती है कल की किसी को परवाह नहीं करना है लेकिन रोशनी कल की परवाह करने और अपने समाज की स्थिति के सुधार हेतु कई काम करना चाहती है। उसने बहुत ही कम उम्र में बहुत कुछ सामाजिक कार्यों को करती रहती है पढ़ाई के साथ भी। इसलिए वह अपने समय से पहले ही युवा हो रही है तो समय से पहले बूढ़ी भी हो जायेगी। पर उसमें धैर्य की कमी है जो की उसके लिए घातक हो सकती है। क्योंकि धैर्य की कमी किसी को भी ठहर कर सोचने समझने और किसी चीज को महसूस करने का समय नहीं दे पाती है जिसकी वजह से उनके अन्दर संवेदना का ह्रास होता जाता है और जिन्दगी कब दिमाग द्वारा संचालित होने लगती है और उसका सम्बन्ध ह्रदय से कट जाता है पता ही नहीं चलता। और जब तक इन सभी चीजों का भान इंसान को हो पाता है तो आदमी बहुत आगे निकल चुका होता है। उसे वापस लाना संभव नहीं हो पाता है। इसलिए जरुरी हो जाता इंसान धैर्य से आगे बढ़े। जिसकी तरफ लेखक भी इशारा करता है। उपन्यास के कुछ बिन्दुओं को उजागर करना आवश्यक हो जाता है जिसको आधार बनाकर उपन्यास का सृजन यथार्थ के धरातल पर सार्थक सिद्ध हुआ है। जैसे-

1. कलाली हटवाना
2. छुआछूत और मैला उठाने की प्रथा का अंत
3. सरपंच का चुनाव
4. झब्बू का आत्म सम्मान और बलात्कार
5. राधली और रघु सुमित खुशबू की शादी और घोड़ी चढ़ने की प्रथा
6. शहरी और ग्रामीण परिवेश का मिश्रण दोनों का अंतर
7. सवर्णों द्वारा दलितों पर आत्याचार
8. दूबारा से झब्बू का सरपंच चुना जाना। ये प्रमुख कुछ बिंदु हैं जिसमें सुधार काफी संघर्षो के बाद संभव हो पाया।

राजनीतिक गन्दगी ज्यों की त्यों झब्बू की हत्या और रोशनी के पंख का कट जाना उसे नक्सल घोषित करके अन्दर करवा देना। स्थिति जस की तस। वैश्वीकरण का प्रवेश एनजीओ और सवर्णों को लुभाता फायदे नुकसान का व्यापार। गाँव में कम्पनियों का आगमन और वैश्विक प्रभाव यह सही है कि शहरों की अपेक्षा गाँव में आज भी लोग पुराने ख्यालात के हैं। वो आज भी रूढ़िवादी मान्यताओं में विश्वास रखते हैं। जहाँ तक छुआछूत और जाति-पात की कट्टरता की बात है वह ग्रामीण इलाकों में आज भी लगभग उसी रूप में विद्यमान है जैसे पहले थी। सुमित की घोड़ी चढ़कर बारात आने पर जब अर्जुन सिंह द्वारा मना किया जाता है, “गब्बूलाल तो महानगर में ही पला-बढ़ा हुआ था। उसने महानगर में ऐसा पहले कभी नहीं देखा। वहाँ तो जिसकी जेब में पैसा हो, वह अपनी मर्जी में आये तो घोड़ी चढ़े या फिर कार से चले, कोई किसी को ऐसे नहीं टोकता। गब्बू लाल को बुरा लगा, लेकिन वह बर्दाश्त करता बोला- हम कहाँ के ठाकुर या पटेल! हम तो गरीब आदमी हैं साब, पर ख़ुशी का मौक़ा है, शादी बार-बार तो होती नहीं,दूल्हे का मन था तो घोड़ी ले आये।”[44] लेकिन दलित समाज द्वारा घोड़ी पर चढ़ना सवर्ण समाज द्वारा देखा नहीं गया जिसकी वजह से कितनों को अपनी जान गवानी पड़ी और राधाली के पिता का ज़िंदा लाश बन जाना सवर्ण के द्वारा किये गए अत्याचार का ही परिणाम रहा।

पंद्रह अगस्त के दिन दलित सरपंच वो भी पुरुषों के सामने, सवर्णों के मुखियां को सुहाय नहीं रहा था। उसे लग रहा था जैसे बरसों से बसी-बसायी उसकी जागीर एक दलित स्त्री द्वारा छीनी जा रही हो। रोशनी जो एक पत्रकार की हैसियत से रिपोर्टिंग करने आती है, लेकिन सरपंच को झंडा न फहराते देख उसे अच्छा नहीं लगता जिसकी वजह से उसे बहुत आकर्षित करने वाली बरसात भी उसे अच्छी नहीं लगती है। रोशनी स्वयं से बात करती है "उस वक्त उसे बादल अच्छे नहीं लग रहे थे। लग रहा था कि मानो आसमान में टंगे काले पहाड़ों जैसे बादलों में पानी की बूंदे नहीं भरी हैं। बादलों की मश्क में लालच और षड्यंत्र भरा है। जैसे ये न बादलों के पहाड़ हैं। न बादलों की मश्क हैं। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के एजेन्ट हैं। तीसरी दुनिया पर छाए हुए। निर्लज्ज। क्रूर। चालाक। ये बरसने वाले नहीं। ये हमारी नसों से खून- पसीना और देश की धमनियों से धन सोंखने वाले हैं।"[45]

दलित पात्र 'जग्या' बेटी की शादी के दौरान हुई पारिवारिक क्षति के बाद कभी बोल नहीं पाया और न ही कभी सचेत हो पुन: जीवन को जी पाया। परिवार के उस हादसे ने उसे जिन्दा लाश बना दिया था। वह ज़िंदा था पर क्यों यह बात अंत में अर्जुन सिंह पर किए गये उसके वार से पता चलता है कि वह प्रतिशोध की आग में जल रहा था, सामाजिक व्यवस्थाओं के द्वारा। जग्या की गतिविधियों को देखकर वह स्वयं सोचती है कि जग्या का बिना वजह कभी भी कहीं भी नाचना आखिर क्या सूचित करता है। "आजादी की ख़ुशी पर! नाचने से दुःख धुल जाते! नाचने से मन हल्का हो जाता! नाचने से क्या होता! आजादी के बाद से देश नाच रहा या फिर कराह रहा ? तरक्की कर रहा या फिर विकास के दलदल में डूबता जा रहा?"[46] ग्रामीण किसानों की जमींन पर बाहर से आयी कम्पनियों के माध्यम से "किसानों से जमीन ली जा रही। देशी-विदेशी पूँजीपति कम्पनियों को दी जा रही। शुक्ला ने कुछ जोड़ते हुए कहा, और कुछ सोचता हुआ बोला-कभी पार्टी-पॉलिटिक्स से अलग सोचता हूँ, तो लगता है कि देशहित में न अपनी पार्टी सोच रही और न उनकी। सबके सब साले दैत्य हैं और देश जैसे केक या फिर मांस का टुकड़ा भकोसे जा रहे हैं। उसमें अपन भी शामिल हैं।"[47]

भारतीय समाज में वैश्वीकरण के दौर से तात्पर्य- “जब से उदारीकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण के द्वार खोले, तभी से ये जानलेवा आंधी शुरू हुई...।-हाँ यार,एक तरफ सांप्रदायिक ताकतों को रोका और दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतों के झुण्ड के झुण्ड बुला लिए। शुक्ला ने जाम सिंह के समर्थन में गरदन हिलाते हुए कहा, और गंभीर स्वर में बोला- पहले एक ईस्ट इंडिया कम्पनी और अंग्रेजों ने हमें ढाई-तीन सौ साल गुलाम बना के रखा था। सुना है कि अब जो कम्पनियाँ आ रहीं, एक-एक कम्पनी की ताकत हजार-हजार ईस्ट इंडिया कम्पनी की ताकत से ज्यादा है। कुछ ही सालों में देश की स्थिति ऐसी हो जाएगी जैसे डायनासोर के मुंह में चूहा।”[48]

वैश्वीकरण के दौर में समाज के लोगों की फायदा-नुकसान को देखकर बदलती मानसिकता-“यार माखन कभी कभी सोचता हूँ की बड़ा–सा एक कृषि फार्म बनाऊं। आजकल कम्पनियां बना रही न, वैसा। हालांकि कम्पनियाँ पांच-पांच और छ:-छ: हजार एकड़ बना रही हैं, उतना बड़ा तो अपने बस का नहीं, पर दो-ढाई-सौ एकड़ का तो बनाया जा सकता है। उसमें आलू और टमाटर के प्लांट लगवाऊं। खेती को भी लाभ का धंधा बनाऊं।”[49] झब्बू जो बहुत ही बेबाक थी स्त्री चेतना उसमें कूट-कूट कर भर गई थी वह एक तरह से बहुत ही समझदार और ‘लीडर’ की भूमिका में पूरे गाँव वालों के सामने अपने संघर्षों का लोहा मनवाती है। दलित स्त्री के बीच वह एक किरण की तरह विद्यमान चरित्र होती है। उन्हीं के बीच वह सरपंच का चुनाव लड़ती है और जीतती है। इतना ही नहीं वह जी जान से गाँव की समस्याओं को हल करने में पूरा योगदान देती है। उसके कार्य करने की शक्ति और उसकी काम के प्रति सभी लोगों के प्रति ईमानदारी देखकर सभी चकित हो जाते हैं। लेकिन वह भी इस गन्दी राजनीति के पचड़ों से बच नहीं पाती है। और अंत में उसी राजनीति का हिस्सा बन जाती है। रोशनी एक ईमानदार पत्रकार है वह अपनी मम्मी के द्वारा किये जा रहे चालाकी या कहे राजनीतिक कूटनीति को अच्छे से समझने लगती है। झब्बू से भ्रष्टाचार के मुद्दों पर बात भी करती है तो झब्बू उससे प्रतिवाद करती हुई बोलती है “तू यूँ समझ ले बेटी, भ्रष्टाचार लाखों छोटे-बड़े वाला एक जीव है, झब्बू ने कहा, और आगे कुछ सोचती हुई बोली-और इसका पेट बहुत बड़ा और गहरा है। सरपंच से लेकर ठेठ ग्रामीण विकास मंत्रालय तक।

सरपंच भी इसका एक छोटा-सा मुँह है। कोई भी जीव कुछ खाता है न, अपन को उसका खाता हुआ मुँह दिखता, लेकिन मुँह में क्या बचता? जितना दांत और दाढ़ों की खोल में चिपका रह जाता, उतना ही, बाकी लाखों छोटे-बड़े मुंह का खाया हुआ तो पेट में समा जाता और पेट राजधानी है।"[50] वहीं झब्बू जिसने स्वयं समाज की कूटनीति की वजह से स्वयं उसकी शिकार हुई जिसके लिए उसे जीवन भर संघर्ष करना पड़ा लेकिन अपने आपको उससे अलग नहीं कर पाती है, दूसरे शब्दों में कहे तो राजनीति में अपने आपको भ्रष्ट होने से बचा पाना बहुत ही मुश्किल है। वह चाहे भ्रष्टाचार का लेवल जो भी हो। जिसका शिकार आजीवन सामाजिक बुराईयों से लड़ने वाली झब्बू स्वयं होती है।

झब्बू की बेटी युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली रौशनी का कथन-"अगर सभी छोटे-बड़े मुँह खाने में लगे रहेंगे तो फिर बदलाव की कौन सोचेगा? रोशनी ने पूछा।"[51] झब्बू के रूप में दलित समाज को जो उम्मीद मिली थी वह भी कहीं न कहीं उन्हीं जाहिल समाज और व्यवस्था का हिस्सा बन रही थी। अर्थात सबके सब राजनीति में जाकर अपनी ईमानदारी और स्वाभिमान को नहीं बचा पाते हैं ऐसे लोग समाज और देश का कल्याण कैसे कर पायेगे जो केवल अपने बारे में सोचते हैं। राजनीति में जाकर लोग राज को श्रेयस्कर मानने लगते हैं और नीति कूटनीति में बदलकर गन्दी राजनीति भ्रष्ट राजनीति बन जाती है। राजनीति में पहुंचकर अपने ईमानदारी और स्वाभिमान को बनाये रखना असम्भव होता है। कितना भी ईमानदार व्यक्ति क्यों न हो वह या तो राजनीति की चकमक में बदल जाता है या बदल दिया जाता है। जैसा की झब्बू के चरित्र को देखकर समझ सकते हैं।

दूसरी तरफ पत्रकार रोशनी जो की ईमानदारी और स्वाभिमान से अपने पत्रकारिता के कार्यों को करती है। वह समाज और देश के लिए कुछ करना चाहती है लेकिन नहीं उन्हें बदला नहीं जा सकता था आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली रोशनी की बात को राजनीति की गन्दगी धूमिल करने में असमर्थ थी तो उसके और उसके ईमानदारी के गुरुर को मिटा देना ही राजनीतिक फंडा अपनाकर कुछ राजनीतिक गुंडों ने उसे कुचलने का षड्यंत्र रच उसे सलाखों के पीछे डालवा दिया। और उसकी माँ का भी अंत करवा दिया जबकि वह तो राजनीति का भाग बन चुकी थी। फिर उसके साथ ऐसा क्यों हुआ?

यह इसलिए की गंदगी किसी को भी पवित्र नहीं रख सकती और गंदगी में कब तक कोई व्यक्ति जीवित रह सकता है। रोशनी का उसकी मम्मी से संवाद होता है राजनीतिक कूटनीतिक व्यवस्था पर जिस कूटनीति का एक हिस्सा उसकी मम्मी भी बन गई हैं। जब रोशनी भ्रष्टाचार और अपनी मम्मी को गन्दी राजनीति का सहयोगी होने पर भला-बुरा कहती है तो वह सफाई में कहती हैं कि “मैं जो कुछ कर रही, किसके लिए कर रही हूँ बेटी। तेरे सिवा कौन है मेरा! झब्बू ने करुण स्वर में कहा।

रागिनी और रोशनी का संवाद समय, समाज और देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर “हाँ ..तू सही कह रही, मैंने तो उड़ती-उड़ती खबर सुनी कि नई दुनिया में अखबार भी बिक गया। जागरण ग्रुप ने खरीदा। रागिनी ने अचरज से आँखें फैलाते हुए कहा-धीरे-धीरे सभी बिकेंगे! रोशनी ने रहस्यमय आवाज में कहा और आगे समझाती हुई बताने लगी कि कैसे एक प्लाट पर गुंडे कब्जा करते। फिर उसे वे एक बिल्डर को बेचते। बिल्डर उस पर फ़्लैट बनाकर बेचता, या कुछ और बनाता-करता। कैसे महानगर के आसपास के किसानों से मंत्री के गुंडे जमीन खरीदते, फिर मंत्री टाटा, इन्फोसिस, रिलायंस आदि को जमीन बेचता। ऐसे ही अखबारों को भी पहले देश के ही कुछ बड़े समूह बेच देंगे और फिर धीरे से देशी-विदेशी बड़ी कम्पनियों को बेच देंगे। अब मीडिया में सौ प्रतिशत विदेशी निवेश होगा तो, ये सब तो होगा।”[52] रोशनी द्वारा वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था पर भी करारा व्यंग्य है। वह गाँव की सामाजिक राजनीतिक गतिविधियों से लेकर केंद्र सरकार तक की राजनीति को चुनौती देती हुई राजनीतिक व्यवस्था के सुधार हेतु प्रयत्नशील है। “आज हमें अपना वास्तविक हक और सम्मान पाने के लिए धन्ना लालों की बंधक सत्ता और व्यवस्था का तख्ता शीघ्र पलटने की जरूरत है। एक कठिन काम है, लेकिन असम्भव नहीं। यह काम धार्मिक कथाओं में बैठकर ताली बजाने से नहीं होगा। न नमाज पढ़ने, और न हज करने से होगा। न गिरजाघर में प्रार्थना करने से होगा। न गुरूद्वारे में माथा टेकने और न देवालय में मन्नत मांगने से होगा। यह काम पाखंडी धर्मगुरुओं के सत्संग और भण्डारों के आयोजन करने और उनमें शरीक होने से भी नहीं होगा। साफ़ बात है कि क्रांति खून मांगती, न सिर्फ अपने दुश्मन का, बल्कि स्वयं का भी।”[53]

स्त्री त्रासदी की कहानी उसकी सबसे बड़ी कमजोरी का फायदा उठाने को हमेशा तैयार खड़े रहते हैं सभी विकृत मानसिकता के लोग। लेकिन इस उपन्यास में बलात्कार की शिकार झब्बू हो या उसकी बेटी दोनों ही कहीं न कहीं इस भयावह दौर से गुजरती हैं लेकिन इसकी वजह से वह हिम्मत नहीं हारती हुई दिखाई देती हैं। वह बहुत ही समझदारी से अपने हिम्मत का परिचय देती हुई अपने होने का, अपने संघर्ष पूर्ण जीवन की गाथा लिखती हैं। “रोशनी ऐसे चल रही कि जैसे रातभर नंगे पैर बजरी पर दौड़ती रही। पैर में अनेक छाले बनकर फूट चुके। पैर छील गये। थाने की समतल फर्श पर भी पैर रखती तो बदन में दर्द की बिजली-सी कौंध रही, या थाने का पूरा स्टाफ दो रातों से उसकी टाँगों के बीच गश्त करता रहा। उसकी आँखें सूजी और निर्विकार थीं।”[54] यहाँ पर रोशनी के साथ हो रही बर्बरता किसी और देश की नहीं हमारे महान देश और यहाँ की सरकार और व्यवस्था का स्वरूप है। जहाँ पर स्त्री से जीत न पाने की स्थिति में उसके बजूद को कुचला जा रहा है। न्याय व्यवस्था के द्वारा। आखिर हम किस दुनिया में जी रहे हैं जहाँ हासिये के समाज को हासिये का समाज बने रहने को मजबूर किया जा रहा है इतना ही नहीं केंद्र की गन्दी राजनीति में आकर भी तो वह सुरक्षित नहीं रहे हैं। जैसा की झब्बू और रोशनी के साथ होता है।

भारत में सेना के जवानों की स्थिति जहाँ वैश्विक दौर में टेक्नोलॉजी और सूचना प्रौद्योगिकी इतनी विकसित हो चुकी है ऐसे में जवानों का भारी मात्रा में शहीद होना चिंता का विषय है। सैनिक के रूप में झब्बू का भाई अपाहिज हो जिंदगी से लड़ता जूझता है। अपने साथ हुए हादसे को स्वीकार कर अपने आपको वीर पुत्र की संज्ञा देता है की मैंने देश की रक्षा हेतु बलिदान दिया है। वह कोई धनाढ्य अमीर या कहे सवर्ण की औलाद नहीं एक पिछली जाति का मामूली सा व्यक्ति होता है जिसकी भरा पूरा परिवार उसकी दशा से काफी आहत होता है।

झब्बू की मृत्यु के बाद ‘जाम सिंह’ (उपन्यास के खलपात्र) झब्बू की मृत्यु पर विचार करता है कि “क्रोध पागलपन से शुरू होता और पश्चाताप पर खत्म। जाम सिंह गम्भीर स्वर में बोला। ऐसा लग रहा कि झब्बू के जाने का उससे गहरा दुःख किसी को नहीं। चेहरे पर आते-जाते भावों, सोचने और कहने के ढंग से

लग रहा कि अब किसी पचड़े में नहीं पड़ेगा। बोला भी कि कितना कुछ हुआ, झब्बू और मेरे बीच, लेकिन वो गम का जहर पीती रही, और जीती रही। दरअसल वो जानती थी, ज्ञान ही वह पंख हैं, जो उड़ाकर स्वर्ग में ले जाते। नित नया सोचती और करती। सांसारिक चिंतन छोड़े बगैर आदमी को मुक्ति नहीं मिलती। आज तीव्रता से मुझे ये एहसास हो रहा कि ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या।"[55]

3.4-शराब, सिगरेट और सेक्स की ओर आकर्षित नवयुवा पीढ़ी

वैश्वीकृत समाज में युवा पीढ़ी अपने अधिकार और अस्तित्व के प्रति जितना ज्यादा जागरूक और सचेत हुई है उतना ही ज्यादा शराब, सिगरेट और सेक्स जैसी चीजों के प्रति आकर्षित भी हो रही है। समाज में आज की युवा पीढ़ी अपने शौक बस अपनी क्षणिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए अधैर्य बनती जा रही है। आज की युवा पीढ़ी के पास किसी चीज को प्राप्त करने की इच्छा है, चेतना है, समाज परिवार आदि जगहों पर हो रहे शोषण या कहे सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए तत्पर है राजनीतिक सामाजिक और ज्ञान के स्तर पर देश-दुनिया की भी हर पल की खबर रखने वाली है लेकिन सभी चीजों को वह शीघ्र प्राप्त करने की इच्छाशक्ति की वजह से अधैर्य होती जा रही है। जिसका परिणाम उसे ही बहुत भयानक रूप में झेलना पड़ता है। आज की नई पीढ़ी उम्र से पहले ही युवा हो जा रही है। जिसकी वजह है बाजार का पौष्टिक आहार, जिसमें तरह-तरह के 'विटामिन्स हारमोंस' आदि शामिल किए जाते हैं। और दूसरा कारण है- टेक्नोलॉजी, मोबाइल, कंप्यूटर, इंटरनेट आदि के माध्यम से असमय ही बच्चों के पास सारी जानकारी इंटरनेट के माध्यम से पहुँच रही हैं जिसके कारण आज की युवा पीढ़ी तमाम तरह की आधुनिक मानसिक बीमारियों जैसे अकेलापन, बेचैनी, गलत चीजों की लत, टेक्नोलोजी आदि के शिकार हो रहे हैं, जिसका आने वाले समय में कोई विकल्प होगा भी यह कहना मुश्किल है। "इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ी मीडिया का काम क्या सिर्फ शिक्षित करने सूचित करने या

मनोरंजन मात्र के लिए है? या फिर इसे नये बदलते मूल्यों के साथ पुनर्परिभाषित करना है? क्योंकि आज हम देखते हैं कि रोटी, कपड़ा और मकान की बजाय बैंक, पेप्सी और मोबाइलों को मानव के लिए अनिवार्य बताया जा रहा है। इसके अतिरिक्त मीडिया के द्वारा परोसी जाने वाली फूहड़ संस्कृति मानव समुदाय को घातक ढंग से प्रभावित कर रही है। इसका प्रभाव नयी पीढ़ी पर ज्यादा पड़ रहा है।”[56] बाजार और बाजारीकृत संस्कृति ने 21वीं सदी की युवा पीढ़ी की मूलभूत आवश्यकताओं को बदल दिया है। आज की युवा पीढ़ी दिन-प्रतिदिन मोबाईल टेक्नोलोजी की गुलाम होती जा रही है। बैंक, पेप्सी और मोबाईल का ज्ञान बच्चे-बच्चे को है जिसके लिए वह जन्म से ही ललाहित रहता है। बच्चे के पास इन चीजों का अभाव परिवार को अच्छी परवरिश न दे पाना महसूस होता रहता है। मोबाइल और इंटरनेट की दुनिया में प्रवेश कर आधुनिक पीढ़ी वास्तविक दुनिया को छोड़कर पूरी तरह से आभासी दुनिया में सांस लेना अपनी पहचान और स्टेट्स समझ रही है। वह कहीं न कहीं शराब और सिगरेट पीने को भी स्टेट्स और अपना होने का अस्तित्व समझते हैं। उनकी नजर में उन सभी चीजों के अभाव में जीवन साधारण जीवन शैली की श्रेणी में आ जाता है। ममता कालिया के उपन्यास दौड़ में वर्तमान पीढ़ी की जिंदगी की ‘दौड़’ है जो इतनी ज्यादा रफ्तार लिए हुए है कि उसमें आने वाली हर रिश्ते नाते संवेदना मानवीय मूल्य सब कुछ मात्र बाजार की वस्तु बनकर रह गए हैं। आज की युवा पीढ़ी अपने विकास की रफ़्तार के साथ आगे बढ़ने के लिए निरन्तर संघर्षशील है। मुख्य पात्र के रूप में ‘पवन’ और पवन का छोटा भाई ‘युवा पीढ़ी’ के प्रतीक और पुरानी पीढ़ी के प्रतीक उसके माँ-पिता के चारों तरफ कहानी घूमती रहती है। गौड़ पात्र के रूप में बहुतों का जीवन चरित्र देखने को मिलता है जहाँ नई पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी से बराबर आमने-सामने संवाद होता है लेकिन दोनों एक-दूसरे को समझने की कोशिश नहीं करते हैं। पवन घर से दूर एम.बी.ए. करने के बाद प्राइवेट सेक्टर मार्केटिंग में जॉब करने लगता है। उसने उसके दोस्त अनुपम अभिषेक आदि होते हैं। अभिषेक शादी शुदा होता है वह विज्ञापन की दुनिया में काम करता है। यही पर ‘स्टैला नाम की लड़की से पवन का परिचय होता है दोनों शादी करने का निश्चय करते हैं। माँ-पिता के इच्छा के विरुद्ध ‘पवन’ अपनी जरुरत के हिसाब से स्टैला से शादी करने का निश्चय

करता है। उसका भाई सघन मैकेनिकल कंप्यूटर इंजीनियर बनाना चाहता है और पढ़ाई ख़त्म होते ही वह जॉब के सिलसिले में ताइवान चला जाता है। जहाँ वह अपना काम करता है। दूसरी तरफ इलाहाबाद में पवन के पिता राकेश पाण्डेय और माँ रेखा अपने आपको अकेला महसूस करते हैं। बच्चों के लिए वह लोग अपने आपको संतान विहीन महसूस करने लगते हैं। जिस कालोनी में दोनों लोग रहते है वहां पर सभी के बच्चे अच्छी और बड़ी पढ़ाई करके जॉब पाकर बाहर भारत एवं विदेश में ज्यादातर लोग चले गए हैं। उन्हीं सभी के बुद्‌ढे माँ-पिता यहाँ कालोनी में रहते हैं एक-दूसरे के सहारे। यहाँ पर वर्तमान समाज की अजीब सी विडम्बना नजर आती है। शिक्षित होना भी जरुरी है और शिक्षा समाप्त होते-होते नौकरी का होना भी जरुरी है ऐसे में युवा पीढ़ी अगर ज्यादा पढ़-लिखकर बाहर विदेश या अपने देश में ही क्यों न रह रही हो। उसके लिए परिवार के साथ रहना इतना जरुरी नहीं जितना की पुस्तैनी घर पर रहना, जहाँ माता–पिता रह रहे होते हैं। जो कि आज के युग में नौकरी के साथ सम्भव नहीं है। दूसरे माँ–पिता का पुस्तैनी जमीन और घर से इतना लगाव होता है कि वह उसे छोड़कर भी अपने-आपको विस्थापित महसूस करने लगते हैं। ऐसे में यह सोचनीय प्रश्न है कि क्या विकल्प हो सकता है? धीरेन्द्र अस्थाना का कथन दौड़ उपन्यास के सम्बन्ध में- “आर्थिक उदारीकरण ने भारतीय बाजार को शक्तिशाली बनाया। इसने व्यापार प्रबन्धन की शिक्षा के द्वारा खोले और छात्र वर्ग को व्यापार प्रबंधन में विशेषता हासिल करने के अवसर दिए। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने रोजगार के नए अवसर प्रदान किए। युवा वर्ग ने पूरी लगन के साथ इस सिमसिम द्वार को खोला और इसमें प्रविष्ट हो गया। वर्तमान सदी में समस्त अन्य वाद के साथ एक नया वाद प्रारम्भ हो गया, बाजारवाद और उपभोक्तावाद।”[57]

वर्तमान वैश्वीकृत समाज में सहज जीवन जीना सपना बनता जा रहा है हम सभी के लिए बच्चे के जन्म लेते ही सभी चीजों का निर्धारण हो जाता है कि उसे क्या क्या करवाना है और उसे क्या बनाना है आदि। आज का बच्चा जन्म लेने से पहले की मानवीय संवेदना कम और प्रतिस्पर्धा की चपेट में आ जा रहा है। वर्तमान समाज में उसका सहज बचपन छीनता जा रहा है। वह स्वयं बाजार की हाई ब्रेड की वस्तुएं खा-खाकर उम्र से पहले ही बड़ा हो जा रहा है। दूसरा सूचना प्रौद्योगिकी के यंत्रों के माध्यम से हर तरह

की सारी जानकारी उसे उम्र से पहले ही मिलती जा रही है। परिवार के द्वारा बच्चे को समय न मिल पाने के कारण उन्हें व्यवस्थित स्नेह और संस्कार नहीं मिल पा रहा है ज्यादातर बचपन से ही वह अलग-अलग तरह से प्रतिस्पर्धा के दौड़ में शामिल कर दिए जाते हैं जिससे वह संवेदनशील सहज कम और रोबोटिक ज्यादा बनते जा रहे हैं जिसकी तरफ परिवार को समझ तब आ रही है जब बच्चें की संवेदनाएं मशीनीकृत हो सूख जाती है। “प्रतिस्पर्धा से प्रतिस्पर्धा की तरफ जाती इस अंधी दौड़ में रिश्ते-नाते, मानवीयता, संवेदना शहर, सपना, लगाव, परम्परा सबका सब अर्थहीन, दकियानूस और बीता हुआ उच्छवास भर है। यहाँ रिश्ते बहुत व्यावहारिक, रस्मी और सतही हैं। यहाँ शहर का अर्थ केवल रोजगार में खुलता है। यहाँ स्मृतियाँ एकदम व्यर्थ हैं और सपने सिर्फ तरक्की से जुड़े हैं। इस बाजार ने वह सब कुछ लील लिया है जो मनुष्य को मनुष्य बने रहने की ताकत देता है।”[58] समय और समाज में होने वालें बदलाव के साथ परिवार, समुदाय के लोगों के व्यवहार की अनदेखी भी नव युवा पीढ़ी के भटकाव के लिए जिम्मेदार है। इंटरनेट के दौर में युवा पीढ़ी आपसी रिश्तें के वजूद को न समझ वस्तु की भांति संवेदनशून्य होती जा रही है। एक कथन आता है जब पवन की माँ उसे बहु स्टैला के साथ रहने की बात करती हैं, तब वह माँ को समझाता है-“इंटरनेट और फोन पर मुझसे बात करने की फुर्सत निकाल ले यही बहुत है। फिर जेट, सहारा, इंडियन एयरलाइन्स का बिजनेस आप लोग चलने दोगे या नहीं। सिर्फ सात घंटे की उड़ान से हम लोग मिल लेंगे।”[59] इस बाजार के युग में समाज के लोगों की मानवीय संवेदना अपने परिवार, समुदाय, तथा आपसी रिश्तों सभी के प्रति स्वार्थीभाव से बदलती जा रही है। स्वयं के प्रति भी वह चाहे शारीरिक हो मानसिक संतुष्टि संवेदन शून्य बनते जा रहे हैं। “भागदौड़ के बीच आध्यात्म का बदला स्वरूप- देखने से सभी वी.आई.पी. किस्म के भक्त थे, जेब में झांकता मोबाइल फोन और घुटनों के बीच दबी मिनरल वाटर की बोतल उन्हें एक अलग दर्जा दे रही थीं। सफलता के कीर्तिमान तलाशते ये भक्त जाने किस जैट रफ़्तार से दिन भर दौड़ते थे, अपनी बिजनेस या नौकरी की लक्ष्य पूर्ति के कलपुर्जे बने मनुष्य। पर यहाँ इस वक्त ये शांति के शरणागत थे।”[60] दुनिया में मन और आत्मा की शांति कहीं बची है तो वह आध्यात्म में। जिधर बनावटी दुनिया के अनुयायी आभासी दुनिया

से निकल वास्तविक दुनिया के निर्माता प्रकृति रूपी आध्यात्मिक सत्ता की तरफ लौटने पर ही शान्ति और सुकून की तलाश करते हैं। "अभिषेक का कथन विज्ञापन के सम्बन्ध में-"विज्ञापन की दुनिया खर्च और बिक्री की दुनिया है। हम सपनों के सौदागर हैं, जिसे चाहिए बाजार जाए, सपनों और उम्मीदों से भरी ट्यूब खरीद ले। ये विज्ञापन का ही कमाल है कि हमारे तीन सदस्यों वाले परिवार में तीन तरह के टूथपेस्ट आते हैं।"[61]

वर्तमान वैश्विक दुनिया की सच्चाई है, बाजार, उपभोक्ता और मुनाफ़ा। इन तीनों के अलावा कोई नैतिकता माइने नहीं रखती । जैसे एक प्रसंग आता है कि अभिषेक और राजुल के बीच संवाद "ओ शिट! सीधा सादा एक प्राडेक्ट बेचना है, इसमें तुम नैतिकता और सच्चाई जैसे भारी भरकम सवाल मेरे सिर पर दे मार रही हो। मैंने आई.आई. एम. में दो साल बाद नहीं झोंका। वहां से मार्केटिंग सीख कर निकला हूँ। आई कैन सैल ऐ डैड रैट (मैं मरा चूहा भी बेच सकता हूँ) यह सच्चाई, नैतिकता सब मैं दर्जा चार तक मोरल सांइस में पढ़ कर भूल चुका हूँ। मुझे इस तरह की डोज मत पिलाया करो,समझी।"[62] उपभोक्तावादी संस्कृति के समाज का दृश्य हम पवन के कथन से समझ सकते हैं। "पापा मेरे लिए शहर महत्त्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कलकत्ते में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है, कम्जुमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ जहाँ कल्चर हो न हो, कंज्यूमर कल्चर जरुर हो। मुझे संस्कृति नहीं उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूंगा।"[63] पवन के बदलते व्यवहार और उनकी बदलती मानसिकता को देखते हुए उसके पिता चिंतित होते हैं। शीला द्वारा संजय को कुछ कहे जाने पर वह कहते हैं-"तुम समझ नहीं रही हो। पवन के बहाने एक पूरी की पूरी युवा पीढ़ी को पहचानो। ये अपनी जड़ों से कटकर जीने वाले लड़के समाज की कैसी तस्वीर तैयार करेंगे।"[64] समाज की तस्वीर दिन-प्रतिदिन बदलती जा रही है। बच्चों के भविष्य के लिए सचेत रहने वाले माता-पिता जहाँ एक तरफ बदलते समय और समाज की मांग के अनुसार शिक्षा-दीक्षा के प्रति सचेत है। उन्हें टेक्नोलोजी कंप्यूटर मार्केटिंग आदि नौकरी से सम्बन्धित टेक्निकल ज्ञान मुहैया करवाने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं। जिसमें ज्यादातर लोग सफल भी हो रहे

हैं लेकिन अपने उज्ज्वल भविष्य की तरफ आगे बढ़ती युवा पीढ़ी व्यावहारिकता मानविकता आदि व्यावहारिक गुणों से कटती जा रही है। उसके पास स्वयं के लिए भी समय नहीं है फिर वह घर-परिवार और रिश्तों के लिए कहाँ से समय निकाले। उपभोक्तावादी संस्कृति मनुष्य को मशीन बनाती जा रही है। मनुष्य की सहजता उसकी संवेदनशीलता नष्ट होती जा रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो वास्तविक दुनिया का मनुष्य आभासी दुनिया में पहुँचकर मात्र 'रोबोट' बनकर रह गया है। जिसे आज का मनुष्य स्वयं और देश के उज्ज्वल भविष्य की संज्ञा देता है। आज की युवा-पीढ़ी बहुत तेज गति से दौड़ रही है उसे ही नहीं पता है कि उसे रुकना कहाँ और कब है? इसके अलावा वह घर-परिवार और उसकी जिम्मेदारियों को बोझ समझ कतरा रहे हैं। "पवन अपने पापा से कहता है- "हर पुरानी चीज आपको श्रेष्ठ लगती है, यह आपकी दृष्टि का दोष है पापा। अगर ऐसा ही है तो आधुनिक चीजों का आप इस्तेमाल भी क्यों करते हैं। फेंक दीजिए अपना टी.बी. सेट, टेलीफोन और कुकिंग गैस। आप नई चीजों का फायदा भी लूटते हैं और उनकी आलोचना भी करते हैं।"[65] ऐसा नहीं है कि जब तक 'सूचना प्रौद्योगिकी' का विकास नहीं हुआ था तो जीवन में सहजता और गति नहीं थी लेकिन उस समय जीवनयापन करने का अंदाज अलग था। लोगों के द्वारा मानवीय सम्वेदना और एहसास का सम्मान और महत्त्व था। आधुनिक टेक्नोलोजी के आ जाने से मानव जीवन और ज्यादा आसान हुआ है । उससे ज्यादा टेक्नोलोजी का आकर्षण नई-पुरानी दोनों पीढ़ियों के लोगों को प्रभावित करने के साथ आकर्षित भी कर रहा है। आधुनिक समाज न चाहते हुए भी दिन-प्रतिदिन टेक्नोलोजी यंत्रों के वशीभूत होता जा रहा है। पवन के पिता द्वारा रिश्तों की अहमियत के बारे में समझाएं जाने पर कि "पवन का स्टैला के बारे में यह कथन कि वह बहुत व्यस्त रहती है इसमें वह मेरे लिए "इंटरनेट और फोन पर मुझसे बात करने की फुर्सत निकाल ले यही बहुत है।"[66] अर्थात 21वीं सदी के लोगों का जीवन साथ में कम इंटरनेट और फ़ोन से ज्यादा चलने लगा है अब एक-दूसरे को देखने की कमी भी नहीं महसूस होती। टेक्नोलॉजी ने उसकी भी इच्छा पूरी कर दी है। पवन के व्यस्त जीवन से खफा होने पर वह पिता को यथार्थ दुनिया की सैर करवा देता है। कहीं न कहीं वह भी अपनी नौकरी और चीजों में ऐसे बंध गया है कि वह चाहकर भी

अपनी गति को मोड़ नहीं दे सकता। क्योंकि भागमभाग इस दुनिया में वह रफ्तार से पीछे हो जाएगा जिससे उसे डर लगता है। पिता के द्वारा बार-बार उसके जीवन पर टिप्पणी किये जाने की वजह से वह झल्लाकर बोलता है। "पढ़ तो मैं यहाँ भी रहा था पर आप अपने सपने पूरे करना चाहते थे। आपके सपने मेरा संघर्ष बन गये। यह मत सोचिए कि संघर्ष अकेले आता है। वह सबक भी सिखाते चलता है।"[67] युवा पीढ़ी के मन में कहीं न कहीं यह झल्लाहट भी है कि माता-पिता स्वार्थ वश अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु अपने बच्चों की सहजता और संवेदना का ह्रास करते हैं और बाद में उन्हें मानवीयता का पाठ पढ़ाते हैं फिर क्या फायदा होने वाला है जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।

वर्तमान समाज के बच्चों की सफलता माँ-बाप को सुकून तो देती है लेकिन कही न कहीं उससे ज्यादा अकेलापन भी जीवन में भरने का काम करती है। "ये सब कामयाब संतानों के माँ बाप थे। हर एक के चेहरे पर भय और आशंका के साये थे। बच्चों की सफलता इनके जीवन में सन्नाटा बुन रही थी।" समाज में अमीर और सफल बच्चों की गाथा सुनकर देखकर पवन के माँ-बाप और ज्यादा चिंचित हो जाते हैं और एक अंतिम उम्मीद के बारे में सोचने हैं "इतनी दूर चला गया है बेटा,पता नहीं हमारा क्रिया करम करने भी पहुँचेगा या नहीं?"[68] "बच्चे घर के तंतुजाल में किस तरह समाये होते हैं यह उनकी गैर मौजूदगी में ही पता चलता है।"[69] "आप मुरदाघर में रखवा दीजिए। यहाँ तो 'महींनों बॉडी मारच्यूरी' में रखी रहती है। जब बच्चों को फुर्सत होती तो 'फ्यूनरल' कर देते हैं।"[70] विदेशी परिवेश के संस्कृति को भारतीय परिवेश की संस्कृति जहाँ ज़िंदा आदमी स्वयं अपनी कब्र खरीद कर रखता है जिससे मरने के बाद 'ट्रस्टी' वाले उनका अन्तिम संस्कार कर सके। और दूसरी वहाँ पर एक और व्यवस्था होती है जहाँ पर बॉडी को कई दिनों एक सहेज कर रखा जा सकता है। जिसकी तरफ उपन्यास में इशारा किया गया है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युवा पीढ़ी उपभोक्तावादी संस्कृति और उससे निर्मित आभासी दुनिया की गतिविधियों के प्रति दिनप्रतिदिन आकर्षित होती जा रही है। जिसका प्रभाव उनके मानवीय जीवन की सहजता को प्रभावित करता जा रहा है जिसका भान उन्हें नहीं है।

3.5-आदिवासी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का दोहन

आदिवासी समाज तथा संस्कृति वहाँ के जल, जंगल, जमींन से जुडी हुई है। पर्यावरणीय इन तत्त्वों के अभाव में आदिवासी समाज तथा संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती है। जल, जंगल और जमीन अमूल्य निधि तथा इसके जीवनयापन के साधन मात्र ही नहीं बल्कि इनके अस्तित्त्व की पहचान है। यह भी सही है कि जल, जंगल, जमींन से अलग करके आदिवासी समाज और संस्कृति को बचाया नहीं जा सकता है। जहाँ तक आदिवासी समाज के संरक्षण का प्रश्न है- ‘आदिवासी समाज’ के लोगों को बचाना पूरे समाज के अस्तित्व और उसकी अस्मिता को बचाना है। वर्तमान समय में यह पूरी दुनिया के सामने चुनौती का विषय बना हुआ है। 21वीं सदी के दौर में विकास के नाम पर आदिवासी समाज और उनकी संस्कृति को वैश्वीकृत समाज में तब्दील किया जा रहा है। वैश्वीकरण के दौर में इन्हें ही इनके घर से बेघर किया जा रहा है। इतना ही नहीं आदिवासी समाज की अमूल्य निधि के रूप में व्याप्त खनिज संपदा के साथ मानवीय संवेदना का भी दोहन किया जा रहा है। जिसे भूमण्डलीकरण की भाषा में विकास की संज्ञा दी जा रही है। ऐसे समाज में आदिवासियों की ही नहीं किसी भी वर्ग, समाज की ‘अस्मिता और अस्तित्व’ को नहीं बचाया जा सकेगा। वैश्वीकरण के दौर में पूरी दुनिया वैश्वीकृत दुनिया में तब्दील होती जा रही है। यह कहना सही है कि बदलते समय और समाज के साथ देश का विकास होना चाहिए और वह जरुरी भी है लेकिन विकास के नाम पर दिन-प्रतिदिन हो रहा मानवीय मूल्यों का ह्रास, संवेदनशून्यता और केवल स्वार्थी दृष्टि से लाभ ही लाभ को वरीयता देकर सृष्टि का विकास करना कभी सम्भव नहीं है। क्योंकि एक तरफ़ा विकास मानवीय मूल्यों का उल्लंघन कभी भी विकास की श्रेणी में नहीं आ सकता है। मानवीय संवेदना से इतर समाज का विकास वर्तमान समाज को केवल वर्गीकृत कर सकता है एकीकृत व उसका विकास नहीं। किसी भी समाज और उसकी सृष्टि का विकास मानव और प्रकृति के आपसी सहयोग से जुड़ा हुआ है न कि प्रकृति के दोहन से।

उपन्यास- ‘मरंग गोडा नीलकंठ हुआ’ में विकरण, प्रदूषण व विस्थापन की समस्या से जूझते आदिवासियों की समस्या को उजागर किया गया है। साथ ही साथ उपन्यास में आदिवासी समाज की समस्याओं के माध्यम से पर्यावरणीय संकट से जूझते पूरे विश्व की झाँकी प्रस्तुत हुई है। आदिवासी समाज अर्थात मूल निवासी । यहाँ पर उनके ‘समाज’ शब्द पर गौर करें तो ‘समाज’ शब्द ‘सभ्य मानव जगत’ की परिकल्पना का एक रूप कहा जा सकता है और इस पैमाने पर आदिवासी समाज खरा उतरता है! क्योंकि इस समाज में किसी भी प्रकार की अमानवीय गतिविधियाँ न के बराबर देखने को मिलती है। आदिवासी समाज की अपनी भाषा, संस्कृति और अपना एक अलग सामाजिक ढ़ाचा रहा है। जिसमें सभी लोग स्वतन्त्र महसूस करते रहे हैं। जिसे सच्चे अर्थों में सभ्य मानव जगत अर्थात ‘समाज’ की संज्ञा दी जाती है। लेकिन वर्तमान मानव मस्तिष्क की पैशाचिक उपज पूरी तरह से प्रकृति पर अपना अधिकार जमाना चाहती है। जिसकी वजह से मानव ‘प्रकृति’ के बारे में न सोचते हुए बस केवल अपने विकास के लिए प्रकृति का दोहन किए जा रहा है। इस प्रकार वह ‘प्रकृति’, जो सृष्टि के विकास के लिए ‘नीलकंठ रूपी जहर’ को धारण करके हमारी रक्षा में सहायक थी, वही कहीं न कहीं विनाश के उग्र रूप को धारण करने पर मजबूर हो रही है। वैश्वीकरण की इस चकमक में आदिवासी समाज कहीं न कहीं इस व्यवस्था का शिकार हुआ है, और हो रहा है। विकास के नाम पर इन्हीं की दुनिया में इन्हीं के अस्तित्व और अस्मिता को धूमिल करता हुआ भूमण्डलीकरण अपना बाजारवादी साम्राज्य फैला रहा है। जिसके आईने में अब आदिवासी समाज के सहज व यथार्थ प्रतिबिम्ब को देख पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है।

प्राचीनकाल से गौर किया जाए तो आदिवासी समाज की संस्कृति और प्रकृति उनके जीवनयापन का आर्थिक आधार रहा है। उनके अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवनयापन के नियम-क़ानून रहे हैं, जिससे वह पर्यावरणीय तत्वों के आधार पर स्वयं को जुड़ा महसूस करते रहे हैं। आज भूमण्डलीकरण के नाम पर ‘दिकू’ लोग कहीं न कहीं विकास के नाम पर और आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने के प्रयास में उन्हें उनकी निजी पहचान से अलग कर रहे हैं। आज आदिवासियों के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न बना हुआ है कि- क्या उन्हें मुख्यधारा में उनकी पहचान व अस्तित्व के साथ

शामिल नहीं किया जा सकता है? विकास के नाम पर आदिवासी समाज और संस्कृति का लोप होता जा रहा है। आज आदिवासी लोग अपनी संस्कृति से अलग हो, विस्थापन जैसी समस्याओं के शिकार हो, असहाय जिन्दगी जीने को मजबूर हो रहे हैं। इस बाजारवादी संस्कृति ने आदिवासी अस्तित्व व उनकी पहचान के सामने संकट खड़ा कर दिया है। वैसे किसी के भी समाज और संस्कृति का लोप, उसे अस्तित्वहीन बना देता है।

महुआ मांझी के उपन्यास ‘मरंग गोडा नीलकंठ हुआ’ में मूल समस्या विकिरण प्रदूषण और विस्थापन की है। यह समस्या उत्पन्न होने का कारण यदि देखें तो वह है देश का विकास। विकास के क्रम में केवल सभ्य समाज (सवर्ण या अमीर उच्च वर्ग से सम्बंधित हैं) विकसित होता है परन्तु आदिवासियों की स्थिति दयनीय होती जा रही है। यूरेनियम एवं लोहा खदानों से उत्पन्न हो रहे समस्याओं से जूझते आदिवासियों का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। “मरंग गोडा नीलकंठ हुआ” उपन्यास आदिवासी समाज के दर्द और उनकी त्रासदी का महाकाव्य है। उपन्यास में विकास के दर्द को बेहद नाजुक तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें लेखिका एक्टिविस्ट बनकर यूरेनियम खदानों के आसपास जाती है और सारंग के जंगल में विचरण करती है। नीलकंठ का सम्बन्ध भगवान शिवजी से जोड़ा जाता है, उन्होंने सृष्टि को बचाने के लिए जहर पिया था। मरंग गोड़ा वासी यूरेनियम की खदानों से निकलने वाले जहर प्रदूषण विकिरण को पी रहे हैं। यह सही है कि प्रकृति अपने अन्दर बहुमूल्य खजाने का भण्डार छुपाये हुए है। प्रकृति कभी भी सहजता से किसी प्राणी जगत का नुकसान नहीं करती है बल्कि जीवों के विकास और उनके सहज एवं अनुकूल जीवनयापन के लिए समृद्धशाली पर्यावरण का निर्माण करती हैं। अति तब हो जाती है जब मनुष्य जो स्वयं प्रकृति द्वारा निर्मित जीव होने के बावजूद उसकी रक्षा हेतु नहीं बल्कि स्वार्थी भाव से प्रकृति के दोहन की मानसिकता से ग्रसित हो तमाम तरह की समस्याओं का जनक वह स्वयं बनता जा रहा है। आदिवासियों का अपने समाज और संस्कृति के साथ सहज जीवन रहा है। जहाँ पर प्रकृति की गोद में खुशहाल जीवन व्यतीत करते रहे हैं लेकिन उसकी प्रकृति प्रदत्त जल, जंगल और जमींन पर बहेलिया रूपी बाजार धावा बोल उनकी अस्मिता उनकी समस्याओं को

नजरअंदाज कर स्वार्थी और लालची प्रवृत्ति से प्रकृति रूपी खजाने का दोहन करना शुरू कर देता है। जिसकी वजह से सभी सजीव जीवों की रक्षक-भक्षक बनने पर मजबूर हो जाती है। छत्तीसगढ़ में ‘मरंग गोड़ा’ वह स्थान है जिसमें ‘लौह-खदान’ से ‘युरेनियम’ खदान तक शामिल हैं। जिसके कारण स्वाभाविक रूप से प्रदूषण की समस्या बढ़ती चली जा रही हैं। मरंग गोड़ा वस्तुत: जमशेदपुर से तीस-चालीस किमी दूर स्थित ‘जादूगोड़ा’ नामक वह कस्बा है, जहाँ सन 1967 में शुरू हुए ‘यूरेनियम अयस्क’ खनन से आसपास के पन्द्रह गाँवों के तीस हजार से अधिक लोग बुरी तरह विकिरण से प्रभावित हुए हैं। जो जमीन रेडियों धर्मी धातु यूरेनियम के जहर को पीकर देश-दुनिया को ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं। वह यही की आबादी है जो नीलकंठ हुई है। आदिवासी स्त्री अपेक्षाकृत समाज की पहरेदारी से मुक्त होती हैं, बावजूद आदिवासी एवं गैर-आदिवासी(दिकू) लोगों के शोषण का शिकार बनी जाती है।

उपन्यास की लेखिका महुआ मांझी ने आदिवासी समाज की वैश्वीकरण के कारण हुई दारूण स्थिति को बहुत ही सहजता से उनके जीवन की कथा कहीं हैं। उपन्यास को पढ़ने पर आदिवासी समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों की उनके जीवनयापन की मुकम्मल झांकी प्रस्तुत होती है। बहुत ही सुख-शांति से जीवनयापन करता हुआ समाज और उनकी सांस्कृतिक विरासत की धज्जियां तब उड़ना शुरू हो जाती हैं जब उनके समाज में स्वार्थी केवल अपने फायदे के आशिकों का प्रवेश होता है और आदिवासियों के जल, जंगल, जमींन से उन्हें ही बर्खास्त कर दिया जाता है। उन्हीं की अपनी संपत्ति पर दिकू समाज से आये लोगों का सर्वस्व अधिकार हो जाता है और वहाँ की मूल निवासियों का वहीं से खात्मा कर उन्हें मजदूर बना दिन-रात खटने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। इतना ही नहीं स्वार्थी चाह में प्रकृति के दोहन के दौरान उन खनिजों का भी दोहन जारी रहता है जिससे मानव सृष्टि का नाश होता है दिनप्रतिदिन।

उपन्यास में चित्रित ‘मरंग गोड़ा’ वह स्थान है जहाँ पर खनिज सम्प्रदा का भण्डार विद्यमान है। वह खनिज मानवजाति के लिए फायदे से ज्यादा नुकसान देह है। उससे बनने वाले ‘परमाणु बम’ से द्वितीय

युद्ध के दौरान पूरे जापान को ध्वस्त कर दिया था उसी यूरेनियम के भण्डार के खनन से पूरे ‘मरंग गोड़ा’ के आदिवासियों की दशा जापान की जनता की तरफ भयावह हो गयी जैसाकि ‘परमाणु बम’ गिरने के बाद जापान का मानवजीवन ध्वस्त हो गया था जिसका प्रभाव आज भी वहां पैदा होने वाली आज की पीढियाँ भी झेल रही हैं। ‘मरंग गोड़ा’ की धरती बहुत ही उपजाऊ थी वहाँ पर निवास करने वालों का जीवन खेती पर निर्भर था। लेकिन खनिज सम्पदा जो उसकी समृद्धि का प्रतीक था वहीं समृद्ध उसके विनाश का कारण बना वहाँ विद्यमान यूरेनियम। लेखिका ने आदिवासियों की समस्याओं के साथ विश्व स्तर पर जूझ रहे विश्व समाज की तरफ भी इशारा किया है। प्रकृति का विकृत्त रूप पूरे पृथ्वी को उसपर व्याप्त पर्यावरण को दूषित कर उस पर निवास कर रहे मानवीय समाज को उनके जीवन को विकृत्त कर रहा है। दिन-प्रतिदिन उसका प्रकोप बढ़ता ही जा रहा है। विकिरण, प्रदूषण और विस्थापन से जूझती जिन्दगी जल, जंगल और जमींन से टूटता नाता और मजदूर बनने पर विवश तथा मजदूर बन खोते जा रहे हैं। जिसका कोई आंकडा किसी के पास अभी तक ठीक-ठीक मौजूद नहीं है।

‘मरंग गोड़ा’ से कुछ ही दूर स्थिति है ‘सारंडा’ का वह घना जंगल। सारंडा-अर्थात सात सौ पहाड़! या कि सात सौ पहाड़ियों का जंगल! ‘हो’ जनजाति ‘कोल सारंडा से सिंहभूमि से, संताली और मुंडा जनजाति इनका देवता– बोंगा सभी जनजातियों के अस्तित्व पर खतरा बनता जा रहा है। दिकू के नज़र में यह असभ्य हैं। मरंग गोड़ा में तांबा की खदान पहले से मौजूद थी जिसमे आदिवासी कम कर रहे थे...और यूरेनियम की खोज चल रही थी। पत्थरों के डॉक्टर ने पता लगा लिया था उस कीमती खनिज का जिसे जम्बीरा देखकर भयभीत हो गया था।

आदिवासी समाज में दहेज प्रथा का दिकू समाज से अलग प्रथा रही है। यहाँ पर लड़के वालों को धन इकट्ठा करना होता है। लड़की से शादी करने के लिए लड़की के पिता को दहेज देना होता है तभी कोई उसकी बेटी से शादी कर सकता है इसलिए ज्यादातर शादियाँ भगाकर होती रही हैं। आदिवासी समाज में गोनोंग- दहेज अर्थात वधू मूल्य प्रसंग है कि ‘जाम्बीरा और मेन्जारी’ दोनों एक-दूसरे को पसंद करते हैं लेकिन मेन्जारी के पिता ने बेटी की शादी का वधू मूल्य इतना ज्यादा रखा है जिसे अभी जाम्बीरा

अदा करने में अपने आपको समर्थ नहीं पाता है। वह सोचता है कि लड़की को भगा कर शादी कर लेना ही ज्यादा ठीक रहता है। लेकिन “जाम्बीरा ऐसा नहीं करेगा। समाज में बड़ी बदनामी होगी। उम्र भर सुनने पड़ेंगे लोगों के ताने। कहेंगे- हट्टा कट्टा मर्द और गोनोंग(दहेज) तक जुटा नहीं पाया। भाग गया लड़की को लेकर। ढेरों नुकसान करा दिया बेचारे लड़की के बाप का...”[71] वर्तमान दुनिया आदिवासियों की दुनिया से काफी अलग है। अपने स्वार्थ के लिए लोग किसी हद तक गिरने के लिए तैयार हो जाते हैं। मेन्जारी के कहने पर की मैं भी तुम्हारे साथ काम करुँगी और दोनों मिलकर ही पैसा जुटा लेंगे (गोनोंग) के लिए लेकिन जाम्बीरा को यह मंजूर नहीं था वह कहता है “तू बेशक वहां रह ले। इससे मेरा मन भी वहाँ लगा रहेगा पर तेरे पैसे को हाथ नहीं लगाउंगा मैं। गोनोंग के पैसे मुझे खुद से जमा करने हैं।”[72] आदिवासी समाज और संस्कृति बहुत ही सांझा और सहज है सभी लोगों का आपसी प्रेम और शादी-ब्याह के समय में पूरे गाँव के लोग मिलकर एक-दूसरे की सहायता करते हैं। धान कूटने से लेकर हड्डियाँ बनाने तक के सभी कार्य सभी मिलकर शादी में सभी की सहायता करते हैं और मिलकर अपने घर के कामकाज जैसी खुशिया मनाते हैं। 21वीं सदी में दिकू समाज के हस्तक्षेप से आदिवासी समाज की सहजता काफी हद तक प्रभावित हो रही है। वैश्वीकृत समाज में उनका जीवन समाज और संस्कृति सब खतरें में है।

जंगली जानवरों की फितरत को भी यह लोग बहुत अच्छे से समझते हैं। जंगली जानवरों की वजह से हर समय जंगल के रास्ते में खतरा बना रहता है फिर भी ये सब अपने जंगल जमींन से बहुत प्यार करते हैं। उनके साथ रहना सीख लेते हैं उनके लिए जंगली जानवरों का होना कोई आतंक जैसा प्रतीत नहीं होता। वह लोग उनके साथ रहकर सहज हो गये हैं। जाम्बीरा बात-बात में बाघ की तरह स्वार्थी प्रवृति की बात बेन्जारी से करता हुआ बाघ की बाघिन के प्रति स्वार्थी व्यवहार की तरफ इशारा करता हुआ कहता है कि “वो ऐसे कि बाघ अपनी बाघिन को तभी अपने से सटने देता है जब मिलन का समय आता है।”[73] और इतना ही नहीं वह अपने ही नर बच्चों को खा जाता है। इसीलिए बाघिन द्वारा भगा दिया जाता है आखिर कौन माँ ऐसा करने देगी। पत्नी बेन्जारी और उसके बच्चे की अस्वाभाविक मृत्यु

पूरे परिवार को तोड़कर रख देती हैं। जाम्बीरा अपनी पत्नी के लिए पागल सा हो जाता है। पुन: जिन्दगी ठहरती हैं और किसी और के आने से जिंदगी फिर से उठ खड़ी होती है आज समाज की जिंदगी की तरह इनके भी समाज में। जिसका जिक्र दो-तीन पीढ़ियों की कहानी के आधार बनाया गया है इस उपन्यास में।

आधुनिक काल में जागरूक और पढ़ी-लिखी इन्हीं के बीच की पीढ़ियों द्वारा अपने जल, जंगल जमींन के साथ साथ उनके अस्तित्त्व और पहचान के लिए पुन: जिंदगी को आगे बढ़ाने के लिए उनके जीवन को व्यवस्थित बनाने के लिए सुधार किया जाता है। जिसके लिए वह संघर्षशील नागरिक की भूमिका अदा करते हुए कई आंदोलनों में भाग ले सभी को नौकरी छोड़ जागरूक करने की मुहीम छेड़ते हैं। “इस पूरे देश में ...सिर्फ यहीं, हमारे मरंग गोडा में ही तो जमीन के नीचे से निकाले जाते हैं ये कीमती पत्थर- यूरेनियम!”[74] जाम्बीरा यूरेनियम की खदानों में काम करता है। वह अपने पोते सगेन को बताता है कि जहाँ हम रहते हैं वह बहुत कीमती जगह है। इसके नीचे लाखों कीमती यूरेनियम दबे पड़े हैं। जिसे हम जैसे लोग नहीं निकालकर सकते हैं। क्योंकि हमारे पास सुविधाएँ नहीं हैं। तमाम सुविधाओं से संपन्न दिकू लोग बड़ी-बड़ी मशीनों के बल पर हमारे इलाके में प्रवेश कर हमें ही भिखारी बना जाते हैं। जबकि इस जहरीले खनिज का खनन आदिवासी समाज के लिए ही नहीं पूरे विश्व के लिए खतरा और प्रदूषण फ़ैलाने वाला है।

“सन 1976 में हमारे सिंहभूम के सारंग, कोल्हन, पोराहाट जैसे वन क्षेत्रों में विश्व बैंक के सहयोग से वन विकास निगम (फारेस्ट डेवलपमेंट कारपोरेशन) की स्थापना कर दी गई। कारपोरेशन ने करीब एक लाख ब्यानवे हजार हेक्टेयर जमीन को लीज पर लेकर जमीन पर लगे साल, महुआ, कुसुम, करंज, इमली, जैसे हम आदिवासियों के घरेलू उपयोग के पेड़ों को काटना आरम्भ किया। वन विभाग के अंतर्गत पड़ने वाले जंगलों के साथ साथ हम आदिवासियों के अनेक खूंटकट्टी गाँवों की परिधि में पड़ने वाले जंगलों को भी काटना हमें नागवार गुजरा। ये वैसे गाँव थे,जिन पर भारत के स्वत्रन्त्र होने से पहले और बाद में वन विभाग द्वारा कब्जा कर लिया गया था।”[75] आदिवासी समाज और उनके जल जंगल जमींन छीने

जाने से उत्पन्न समस्या की झांकी है। समाज में बदलाव जरुरी है लेकिन वह बदलाव गरीबों के बसाव या भलाई के उद्देश्य से नहीं उनके उजाड़ या खातमें से है। “जंगल में हमें घुसने ही नहीं दिया जाएगा और हमारे इस्तेमाल के लायक कोई पेड़-पौधा ही नहीं छोड़ा जाएगा तो हम अपने पशुओं को चराएंगे कहाँ? अपने ही पशुओं से अपने खेतों की फसल को बचाने के लिए खेत के चारों ओर बाड़ा लगाने हेतु टहनियां कहाँ से लाएंगे?

बैलगाड़ी, हल,कुदाल,कुल्हाड़ी,या हंसुआ जैसे खेती के औजारों में प्रयुक्त होने वाली लकड़ियाँ का जुगाड़ कहाँ से करेंगे।”[76] आदिवासी समाज में अंधविश्वास भी अपने चरम पर है इसकी वजह जागरूकता का अभाव भी रहा है। जब सगेन जो बाहर रहकर पढ़ाई करता है उसे पता चलता है की मरंग गोडा में मरने वाले सभी लोगों पर उसके दादा-दादी जिनकी मृत्यु कैंसर से हुई थी। यूरेनियम की खदानों में काम करने की वजह से। उन्हें भूत-चुड़ैल बताया जा रहा है आज मरने वाले लोगों के लिए। उसे विश्वास नहीं होता है। “इस अंधविश्वास से कैसे मुक्त होगा हमारा समाज? मरंग गोडा में तो फिर भी जानलेवा बीमारियों का प्रकोप है मगर जिन इलाकों में ऐसा नहीं है,उन इलाकों में भी तो छोटी-बड़ी बीमारियों और मौतों के लिए ‘डाइन’का इल्जाम लगाकर निर्दोष को सताया जा रहा है। पूरा ‘हो दिशुम’ इसकी चपेट में है। पहले भी था इतना ज्यादा नहीं। इधर जबसे सूखा,अकाल, शोषण, अत्याचार, चोरी, डकैती की घटनाएँ बढ़ी हैं, तबसे इनके पीछे के असली कारणों को अनदेखा करके सारा दोष इन निरीह औरतों या कभी-कभार किसी पुरुष के माथे मढ़कर उन्हें प्रताड़ित किया जाता है।”[77] असली डाइन पकड़ में आयी-यूरेनियम:-पढ़ाई लिखाई और जागरूकता के बाद सगेन ने जाना की आखिर असल में लोगों की जान कौन ले रहा है। ऐसी भयावह और विदारक मौत का जिम्मेदार कौन है? जब उसने एक दिन पत्रिका में पढ़ा कि जापान के नगर नागासाकी-हिरोशिमा पर परमाणु बम विस्फोट का कारण यह खतरनाक यूरेनियम ही था जिसका असर आज भी है जिसकी वजह से आज भी वहां के लोग शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग पैदा होते हैं। यही कारण है की झारखण्ड में स्थित यूरेनियम क्षेत्रों में मृत्यु की वजह डाइन या चुड़ैल नहीं यह कैंसर पैदा करने वाला यूरेनियम ही है। क्योंकि “विकिरण

जीवित प्राणी के जीन के साथ तो छेड़छाड़ करता ही है, यह स्त्री पुरुष की जनन क्षमता को भी प्रभावित करके उन्हें बाँझ बना देने की ताकत रखता है। जो प्राणी विकिरण या रेडियों-धार्मिता या रेडिएशन के जितना निकट सम्पर्क में आता है, वह उतना अधिक प्रभावित होता है। विकिरण एक ही सेल में लाखों म्यूटेशन पैदा कर सकता है। मनुष्य के सेल में करीब 3.5 खरब (बिलियन) डी.एन.ए. के जोड़े होते हैं।"[78]

आधुनिक युवा पात्र सगेन यूरेनियम खनन के प्रति आवाज उठाता है। वह कहता है कि आखिर क्यों यहाँ के अशिक्षित और अनजान आदिवासियों को नहीं विकिरण की भयावहता के बारे में नहीं बताया गया? "यूरेनियम या विकिरण के खिलाफ सार्वजनिक रूप से कुछ बोलने की भले ही मनाही हो पर विस्थापन, रोजगार अथवा मुआवजे के लिए तो वह मरंग गोड़ा के लोगों के पक्ष में लड़ ही सकता है। और इस बहाने लोगों के करीब आकर विकिरण सम्बन्धी जागरूकता भी ला सकता है।"[79] इस प्रकार वह मरंग गोड़ा के युवकों के साथ मिलकर 'मरंग गोड़ा आदिवासी विस्थापित बेरोजगार संघ' बनाता है। इस प्रकार वह अपनी नौकरी छोड़कर यहाँ आदिवासियों को उनका हक़ दिलाने में लग जाता है। पूंजीपतियों द्वारा मुआवजे की बात करते पर आदिवासी समाज के लोगों का जवाब "किस-किस चीज का मुआवजा देंगे आप? मुआवजा लेकर जो लोग विस्थापित हुए, चंद दिनों में उनके सारे पैसे ख़त्म हो गए। वे अपने घर और खेतों के साथ-साथ अपनी संस्कृति से भी कटते जा रहे हैं। नृत्य संगीत से दूर हो गए। सम्बन्धियों से बिछड़ गये। मांगे: पोरोब में बहनों को भाइयों ने न्योता नहीं दिया। हम कोई बनिया नहीं कि एक-एक पैसा बचाकर खर्च करें। हमें खाने-पीने और मौज-मस्ती करके हाथ आए सारे पैसों को उड़ा देने की आदत है। हमारे खेत बचे रहेंगे तो हमारे बच्चों के, बच्चों के बच्चों के काम आएँगे। मगर उतने दिनों तक मुआवजे के पैसे उनके लिए बचाकर रख पाएंगे क्या?..."[80] संग्रह की प्रवृत्ति आदिवासियों मे नहीं होती है। आदिवासियों के समाज में जागरूकता का प्रभाव देखा जा सकता है। वह कहते हैं कि मुआवजा मिल जाने मात्र से ही यूरेनियम द्वारा उत्पन्न समस्याओं से निजात नहीं पाया जा सकता है। जहरीले सांप को बिल में ही रहने देना ही उचित होगा। आदिवासी समाज की यह सोच केवल अपने समाज संस्कृति और जमींन बचाने के लिए न होकर पूरे विश्व समाज के हित की तरफ इशारा

करते हैं क्योकि प्रदूषण किसी का हित नहीं करता। जमींन जरुर बटी हुई है जहाँ पर अलग-अलग जाति, धर्म, समुदाय और देश का अधिकार है लेकिन आकाश एक ही है जिसका कोई छोर नहीं है और न ही उस पर किसी का राज है। ऐसे में पृथ्वी पर होने वाला प्रदूषण सम्पूर्ण संसार को प्रदूषित करने का कार्य करेगा।

एक अंतहीन सिलसिला था 'मरंग गोड़ा' की त्रासदी " चलता रहा।[81] मछुआरे के स्थिति की तरफ लेखिका इशारा करती हैं-"पहले कितनी मछलियाँ हुआ करती थीं इधर! जमशेदपुर के बाजार में बेचकर भी पैसे कमाए हैं मैंने। अब तो घरवाले भी यहाँ की मछली नहीं खाना चाहते।"[82] आदित्यश्री पत्रकार की भूमिका अदा करते हैं 'मरंग गोडा' के आदिवासियों को न्याय दिलाने के लिए उनके हक़ की लड़ाई लड़ते हैं सगेन के साथ बहुत से यूरेनियम खदानों डेमो की तस्वीर लेकर सभी के सामने यूरेनियम विकिरण की भयावह स्थिति को बया करने का काम किया जिसके माध्यम से सभी आमजन में जागरूकता और सचेतता फैली।

विदेशी पात्र मोमोका का कथन-"लोग जितने शिक्षित होते जाएंगे जितना आधुनिक होते जाएंगे, वर्जनाएं टूटेंगी। चाहे वह कोई भी देश, कोई भी समाज क्यों न हो।"[83] युरेनियम से बने परमाणु हथियार के बारे में विचार करते हैं कि "यह परमाणु हथियार दरअसल भस्मासुर हैं जिन्हें इन्सान बनाता तो दूसरों की तबाही के लिए है पर खुद भी भस्म हो सकता है"[84] परमाणु हथियार की भयावहता जग जाहिर है इतिहास से लेकर आधुनिक काल तक सभी के मत को उल्लेखित करते हुए लेखिका विकिरण प्रदूषण के प्रति सभी को सचेत करती है। "महाभारत में भी जब अर्जुन अपनी आँखे बंद करके अस्त्र का आवाहन करते हैं पलक झपकते ही पाशुपतास्त्र अस्त्र उनके हाथ में आ जाता है।ज्यों ही वह उसे धनुष पर चढ़ा कर चलाने की कोशिश करते हैं आकाशवाणी होती है। सावधान अर्जुन !! इस अत्यंत शक्तिशाली अस्त्र के प्रयोग से पूरी पृथ्वी का विनाश हो जाएगा। इसलिए ऐसी शक्तियों का प्रयोग सिर्फ मानव कल्याण के लिए किया जाना चाहिए, न की मानव, वनस्पति तथा जीव जंतुओं के विनाश के लिए।...और अर्जुन ने

पाशुतास्त्र नहीं चलाया।"[85] आगे कहते हैं कि महात्मा गाँधी ने भी तो 1946 में 'हरिजन' में प्रकाशित एक लेख में लिखा था कि 'परमाणु अस्त्र मानव मस्तिष्क की एक पैशाचिक उपज है।"[86]

शोध के उद्देश्य से आये विदेशी पात्रों के माध्यम से भारत भूमि की उपयोगिता और विदेशी समाज और संस्कृति का तुलनात्मक झांकी प्रस्तुत की गई है। प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन विदेशी पात्रों के द्वारा "बहुत खूब!...सात सौ पहाड़ों के इस प्रदेश में प्रवेश करके रोमांचित हूँ। प्रज्ञा मुग्घ भाव से पहाड़ों को देखते हुए बोली, ऐसा लग रहा है जैसे अपने रूप के मायाजाल का विस्तार करके अपनी दोनों बांहों को फैलाकर प्रकृति हमें अपनी ओर खींच रही है।"[87] 'हो' आदिवासी और हड़प्पा मोहनजोदड़ों से सम्बंधित! "सिन्धु घाटी की सभ्यता दरअसल 'हो' लोगों की सभ्यता थी। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई में मिली चित्रलिपि भित्तिचित्र, पुरातात्विक अवशेष आदि की सभ्यता 'हो' लोगों के घरों की चित्रकला से पायी जाती हैं।..."[88]

माइनिंग के लिए आदिवासियों की धरती से बलात्कार:-"मरंग गोडा के मोआर का यूरेनियम विरोधी आन्दोलन अब अंतर्राष्ट्रीय यूरेनियम विरोधी आन्दोलनों का हिस्सा हो गया था। देश हो या विदेश, शायद ही कोई ऐसा यूरेनियम सम्मलेन होता, जहाँ मोआर के प्रतिनिधियों को आमंत्रित नहीं किया जाता। सगेन तथा आदित्यश्री के अलावा मोआर के कई दूसरे सदस्य भी कई सम्मेलनों में भाग ले चुके थे।"[89] पूरी दुनिया के आदिवासियों की एक जैसी दशा और स्थिति :- "चाहे वह आस्ट्रेलिया हो, कनाडा हो, दक्षिणी अफ्रीका हो या अमेरिका इंडिजिनस लोगों की...ऐबओरिजनल लोगों की...आदिवासियों की लगभग एक जैसी दुर्दशा ! विभिन्न देशों से आए प्रतिनिधियों की एक जैसी पीड़ा...एक जैसी उदगार!"[90]

"सन 1953 से 1980 तक अमेरिका दुनिया का अग्रणी युरेनियम प्रोड्यूसर रहा। शीतयुद्ध काल में जब दुनिया में परमाणु अस्त्रों के विस्तार की होड़ लग गई थी, परमाणु अस्त्र और ईधन बनाने के लिए सिर्फ नवाहो नेशन में ही प्राइवेट कम्पनियों ने यू.एस.गवर्नमेंट के कॉन्ट्रैक्ट के तहत विभिन्न यूरेनियम खदानों

से करीब 4 मिलियन टन यूरेनियम अयस्क निकाला था और जब शीतयुद्ध काल की समाप्ति के साथ इसकी मांग कम हुई तो उन कम्पनियों ने उन खदानों को ज्यों का त्यों छोड़ दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उन खुली खदानों से हवा के साथ आई धुल और बारिश के साथ आए पानी से आसपास के आदिवासियों को व्यापक स्वास्थ्य हानि हुई।"[91] मनुष्य अपने फायदें के लिए दिनप्रतिदिन स्वार्थी बनता जा रहा है उसे न अपने आज का पता है और न वह कल का अर्थात अपने भविष्य का भान वह करना ही नहीं चाहता है। आदिवासी समाज के जल, जंगल, जमींन में विद्यामान खनिज पदार्थ युरेनियम जहरीला और मानव-समुदाय के लिए हानिकारक होने के बावजूद क्षणिक स्वार्थ वश वह अपनी निजी इच्छाओं की पूर्ति के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए संकोच नहीं करता है। "हम सुविधाओं के गुलाम बनते जा रहे हैं। हर कदम पर हमें भोगविलास के साधन चाहिए। आज एक साधु या संन्यासी भी भोगविलास की सामग्री के बगैर नहीं जी सकता तो फिर हम गृहस्थ या सांसारिक लोगों की क्या बात करें! शारीरिक आराम, भोगविलास को ही हम सुख मान बैठे हैं। लेकिन क्या हम दावा कर सकते हैं कि जिनके पास भोग विलास के तमाम साधन उपलब्ध हैं, वह दूसरों से बहुत ज्यादा सुखी है? क्या अति भोगवाद ने ब्लडप्रेशर, डिप्रेशन, हाइपरटेंशन, ब्लड शुगर जैसी तमाम बीमारियों को न्योता नहीं दिया है? फिर भी हम भोग के लिए धरती का, प्रकृति का एक एक कण निचोड़ लेना चाहते हैं।"[92] जबकि हमें पता होना चाहिए की प्रकृति हमारे आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है हमारे लालची प्रवृत्ति की नहीं। एक प्रसंग के अनुसार स्वामी विवेकानंद से किसी ने पूछा – जहर क्या है? तो उन्होंने कहा- जीवन में जो भी जरुरत से ज्यादा है, जहर है।[93]

विकिरण से परेशान आदिवासियों की गुहार "हमें सताकर, हमारी चीख पुकार को अनसुनी कर तुम लोग ज्यादा खुश मत होना। विकिरण कभी किसी का सगा नहीं होता। हम आदिवासियों को तबाह करने के बाद यह तुम्हारी बस्तियों की तरफ भी बढ़ सकता है।..."[94]

"तो तुम सुखी होना नहीं चाहते।" प्रज्ञा ने ठंडी आवाज में कहा। "सबको सुखी किए बगैर खुद भी सुखी नहीं हुआ जा सकता। ऐसा स्वामी विवेकानंद का कहना है। मेरा सुख. तुम्हारा सुख, दूसरों का सुख

अलग-अलग नहीं आ सकता। आने से एक ही साथ हम सबको बहा ले जाने के लिए आएगा वह। मेरा भी यह मानना है कि सुख सागर के उत्ताल समुन्द्र में बहने के लिए स्वार्थ के क्षुद्र जलाशय से बाहर आना होगा हमें। जंग लगे, टूटे फूटे रिश्तों में पैबंद लगाना होगा...आदित्य श्री ने दो टूक जवाब दिया था।"[95] इस प्रकार आदित्य श्री के जीवन में आने वाला दोनों प्यार अपने अपने स्वार्थी फितरत से अलग हो जाते हैं। अंत में बचता है 'मरंग गोड़ा' की चीखे और आदित्य श्री की बेचैनी उसे दूर करने का संकल्प। जिससे वह मुंह मोड़कर नहीं जा सकता है। उसने अपना पूरा जीवन उन्हीं मरंग गोड़ा के आदिवासियों के जीवन के लिए समर्पित कर दिया था।

3.6-मध्य वर्गीय समाज का जीवन और बदलता उनका यथार्थ

वैश्वीकरण ने बदलते समय और समाज में सबसे ज्यादा अगर किसी समाज को प्रभावित किया है और कर रहा है तो वह मध्यवर्ग के ही फलता-फूलता समाज और समाज के लोग हैं। जिसके समाज पर यह चारों तरफ से प्रभावित कर रहा है। वैश्वीकरण के दौर में "दुनिया में अब देशों की सीमाएं ही बेमतलब हैं। कम्प्यूटर की साइबर वास्तविकता क्या किसी सरहद से बंध सकती है? अब तो दुनिया का शासन दुनिया के बड़े कॉर्पोरेट चला रहे हैं। सरकारे और पार्टियाँ तो बस ऊपरी ढाँचे हैं।"[96] ऐसे समाज में पूरा का पूरा तंत्र बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सारी व्यवस्था को पूँजीवादी विचारधारा के वाहक पूँजीपति वर्ग नियंत्रित कर रहे हैं। वैश्वीकृत समाज में अगर कोई वर्ग पूँजी, टेक्नोलॉजी या सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से देशी के बजाय विदेशी वस्तु, स्थान, पूँजी, विचारधारा और वैश्विक गतिविधियों को संचालित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने में सबसे ज्यादा योगदान दे रहा है तो वह मध्यवर्गीय समाज के लोग ही हैं। जिनके योगदान से ही आभासी दुनिया का संसार फल-फूल रहा है। क्योंकि यही वर्ग है जो सबसे बड़ा बाजार का केन्द्र बना हुआ है और उपभोक्ता भी। ऐसे ही लोगों

के लिए 'एक ब्रेक के बाद' की वस्तुएं आकर्षक तरीके से बेवकूफ बनाने के लिए परोसी जाती हैं। विज्ञापन की दुनिया को आगे बढ़ाने में सबसे बड़ी जनसंख्या मध्यवर्गीय समाज से सम्बन्ध रखती है।

उपन्यासकार अलका सरावगी का यह उपन्यास शीर्षक 'एक ब्रेक के बाद' से स्पष्ट रूप से विज्ञापन की दुनिया की तरफ संकेत किया गया है। जिन्दगी में बहुत सी रूकावटे पल भर के लिए आती हैं और जिंदगी की गति को मोड़ देती हैं। साथ ही साथ देश-विदेश से सम्बन्धित चीजों से हमारा परिचय करवाकर इच्छाओं को भी हवा दे जाती हैं। विज्ञापन की दुनिया बहुत चकमक और आकर्षण भरी होती है और अंतत: जिंदगी देखने, समझने और महसूस करने का नजरिया बदल जाता है।

वैश्वीकृत दुनिया में विज्ञापन के माध्यम से न्यूज चैनलों से ख़बरें गायब होती हैं, तथा अपना स्वरूप बदल लेती हैं। वहीं एक छोटा सा 'ब्रेक' देश-दुनिया में अपने उत्पादनों को सभी तक पहुँचाने में सफल हो जाता है। उपन्यास के शीर्षक को दूसरे अर्थ में देखे तो जो उपन्यास के मूल बिंदु की तरफ इशारा करता है कि उदारीकरण की नीति, पूरे ग्लोब को मुठ्ठी में कर लेने के स्वरूप को भी रेखांकित किया गया है। उपन्यास में लेखिका ने दो वर्गों को उजागर करने का प्रयास किया है। एक तरफ शहरी मध्यवर्ग है, उनकी जीवन शैली है, तो दूसरी तरफ आदिवासी समाज की समस्याएं और संवेदनाओं का भी बखूबी वर्णन करती हैं। "इक्कीसवीं सदी में इण्डिया की उन्नति की सारी क्रीम खाने को मिल रही है, तो के.वी. अंग्रेजी के 'ट्रिकल-डाउन इफेक्ट' का भारतीय अनुवाद करके तुरन्त कहते हैं-अरे पानी तो पहाड़ से नीचे ही बहता है। गंगा क्या एकदम नीचे उतरकर समुद्र तक नहीं आती?"[97] यहाँ पर के.वी. के सूत्र के माध्यम से यह मानना है कि जिस प्रकार पहाड़ों से जल नीचे ही आता है और फिर समुन्द्र में जाकर मिल जाता है। इसलिए कॉरपोरेट सेक्टर के लोग भी बहुत सारा धन इकठ्ठा करते हैं लेकिन धीरे-धीरे उसके माध्यम से समान बाजार में अवतरित किये जाते हैं।

समाज में हो रहे परिवर्तन कहीं न कहीं पूरे भारतीय समाज को प्रभावित कर रहा है समाज में वस्तुओं की बढ़ोतरी जैसे-जैसे हो रही है उसी प्रकार लोगों की सोच भी बदलती जा रही है। के.वी. खुद कहते

हैं-“अब नौकरी की दुनिया खरीदारों की मार्केट नहीं है, बेचने वालों की मार्केट है। जो बीस हजार की नौकरी छोड़ता है, वह जानता है कि पच्चीस हजार की नौकरी उसके लिए तैयार है। किसी जूनियर को कोई डॉट-वाट लगानी हो, तो तैयार रहना पड़ता है कि शाम को हर समय आपको नौकरी छोड़ने का नोटिस पकड़ाता हुआ जाएगा।”[98] भारत में कम्पनियों के प्रवेश ने भौतिक रूप से जहां देश समाज का विकास दर को आगे बढ़ा रहा है वहीं दूसरी तरफ हम देखते हैं कि भारतीय मानवता और सम्वेदना के गुण शून्य होती जा रही है। “इण्डिया की ‘इकोनॉमिक बूम’ या आर्थिक उछाल के साथ-साथ इण्डिया में धीरज और सहनशीलता के गुण डूब गए। अब साफगोई का जमाना भी गया कि आप किसी चुभते हुए सच को बेझिझक कह डालें।”[99]

वैश्वीकरण के युग में दो तरह का समाज विकसित हो गया है। जो अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अपने जीवनस्तर को सुखद और सुचारू ढंग से जी रहा है। शहरी परिवेश में ही के.वी.जैसे उच्च मध्य वर्ग के लोग आलिशान जिंदगी को जीते हुए भौतिक जगत में व्याप्त आभासी की सुख-सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग समाज और आदिवासी समाज का जीवन वास्तविक दुनिया में रहकर तुलनात्मक नजरिए से जीवनयापन को मजबूर है। वर्तमान समाज में वह वर्ग कल्पनामात्र ही कर सकता है। “जमाना ‘ये दिल मांगे मोर का है। बस्तर के गाँव में अपनी झोंपड़ी में बैठकर आदिवासी टी.वी.पर वॉशिंग मशीन में कपड़े धुलते देख रहा है और डबल-डोर फ्रिज में जाने कब से रखी ताज़ी लौकी और टमाटर की गाथा सुन रहा है। इस देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रही है-फर्क यही है कि किसी के सपने छोटे तो किसी के ज्यादा बड़े सपने।”[100]

के.वी.शंकर अय्यर उच्च मध्यवर्ग का प्राणी होते हुए भी वह अपनी जिन्दादिली और लोगों के प्रति अपनी संवेदना बचाकर रखना चाहता है। “आदमी ज़िंदा है क्योंकि उसके अन्दर का जज्बात और उसके अहसास ज़िंदा है।”....[101] “के.वी. की यह तमन्ना है कि दुनिया उन्हें महज एक सफल और हर मौके पर अपने को काबू में रखनेवाले आदमी की तरह ही नहीं, एक संवेदनशील, नरम दिल इंसान की तरह भी याद रखे।”[102] भारत के भी बड़े व्यापारी पूँजीपति वर्ग के लोग भी विदेशी कम्पनियों की भांति

विदेशों में अपनी कम्पनियां स्थापित कर रहे हैं। "इण्डिया के लोग दुनिया भर की फैक्टारियां खरीदते घूम रहे हैं। टाटा ने इंग्लैण्ड में स्टील फैक्टरी खरीद ली और बिडला ने अमेरिका में अलमूनियम की। के.वी. अपने अंदाज में हँसकर कहते हैं-चीन का ड्रैगन 2007 में 9 प्रतिशत जीडीपी में बढ़ोतरी दिखाए तो क्या, इण्डिया का हाथी उससे एक सूता ऊपर 9.1 प्रतिशत तक पहुँचने वाला है।"[103]

बदलते समय और समाज की आपाधापी में आदमी स्वयं को ही भूलता जा रहा है। वह वास्तविक दुनिया की सुख, शान्ति और सुकून को कहीं न कहीं भूलता जा रहा है। कम्पनी में जॉब करने वाला व्यक्ति और ख्वाहिशों की बनी आज की फैमिली अपनी दिखावाटी और बनावटी दुनिया में स्वयं के होने का आभास भी नहीं कर पाती। सभी तरह के कार्यों को करने के बाद वह चाहकर भी सुकून को प्राप्ति करने के लिए बैठकर सूकून महसूस कर पाने में अपने आपको असमर्थ पा रहा है जिस कारण भी दिनप्रतिदिन तनाव बढ़ता जा रहा है। आदमी लोगों के बीच में होता हुआ भी अकेलापन और ऊब महसूस करने को विवश है। "आदमी सुबह से रात तक कोल्हू के बैल की तरह खटता रहता है। इसी चक्कर में कब चालीसी आ जाती है, पता ही नहीं चलता। वह थककर सुस्ताना चाहता है, पर एक तरफ कम्पनी चाहती है कि वह सफलता का नया ग्राफ बनाता रहे; दूसरी तरफ पत्नी और बच्चे सोचते रहते हैं कि उनकी सारी इच्छाएं पूरी करने का समय आ गया है। पत्नी को नई गाड़ी, बड़ा फ़्लैट चाहिए। बच्चों को पढ़ने के लिए शहर के कुएँ से बाहर जाना है-"[104] बदलते समय और समाज की गतिविधयों के साथ इंसान दिनप्रतिदिन सुविधा भोगी होता जा रहा है। आभासी दुनिया क्षणिकता को ही वास्तविकता और सुकून का वाहक मान उसकी तरफ आकर्षित हो रहा है। आदिवासी समाज में वर्तमान शिक्षा जागरूकता के प्रति आकर्षण है पर अपनी निजता, अपने समाज और संस्कृति के प्रति सचेता और आकर्षण भी कम नहीं हुआ है। जिसके लिए वह लड़ाई लड़ रहे हैं क्योंकि उनकी पहचान और अस्तित्व उनके जल,जंगल, जमींन से ही है। उपन्यास का पात्र रंगनाथन बहुत ही डावाडोल स्थिति में है वह बहुत विद्वान होते हुए उसके जीवन में ईश्वर ने भटकन ज्यादा लिख दिया है। वह स्वयं से परेशान होते हुए अपने बच्चों और बदलती युवा-पीढ़ी की मानसिकता को भी नहीं समझ पा रहा है। "बेटी ने

पढ़ाई की है एम.बी.ए. की, पर पत्रकार बनी किसी टी.बी.चैनल के साथ जाने कहाँ-कहाँ घूम रही है। जयपुर में कोई बच्चा कहीं गड्ढे में गिर गया है, तो चौबीसों घंटे तक टी.बी.में चिल्ला-चिल्लाकर बता रही है कि वह अभी तक ज़िंदा है और उसे निकालने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। निमोनिया होकर अस्पताल में भर्ती अपनी माँ अभी तक ज़िंदा है या नहीं, यह जानने की उसे फ़ुरसत नहीं।"[105] आज की युवा पीढ़ी की संवेदना मर नहीं रही है बल्कि उसे मार दिया जा रहा है। कारण है आर्थिक तंगी और अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी जीवन का होना। आज की नई पीढ़ी जितनी तेजी से आगे बढ़ रही है उतनी ही तेजी से अपने संस्कारों को पीछे छोड़ती जा रही है। वर्तमान समाज और समाज के लोगों की परिवार के विघटन की यह सबसे बड़ा कारण है कि नई पीढ़ी अपने हिसाब से जीवन की गति और अपनी योजनाओं को आगे बढ़ा रही है जिसमें वह केवल स्वयं के बारे में ही सोच रही है कभी-कभी स्वयं के बारे में भी सोचना भूल मशीन की भांति बस गतिमान है क्यों पता नहीं होता। वह क्या पढ़ रही है उसे अपने भविष्य में क्या करना है क्या नहीं करना है। वह कुछ तय कर पाने में असमर्थ है। दूसरे शब्दों में कहे तो वह वर्तमान में एक पल में जी रही है। उसे आभासी दुनिया ज्यादा आकर्षित कर रही है वास्तविक दुनिया में उसे सुकून नहीं है और न ही वह वास्तविक दुनिया का भान ही करना चाहती है।

दूसरी तरफ हैं के.वी. को ऐसी मानसिकता के बच्चों की मानसिक स्थिति और वक्त की नजाकत समझते हैं इसलिए युवा पीढ़ी से वह प्रश्न नहीं करते हैं। "वे जानते हैं कि इन बच्चों के पास नौकरियाँ छोड़ने-बदलने या अपनी पढ़ाई से कोई तालुल्क न रखनेवाली कोई नौकरी पकड़ने के पीछे वजहें बिलकुल दूसरी हैं। न ये बच्चे के. वी. की तरह अपनी किसी महत्त्वाकांक्षा के पीछे दौड़ रहे हैं कि उन्हें नाम या पैसा कमाना है और न ही वे रंगनाथन या भट्ट की तरह हर जगह पिटे हुए मोहरों की तरह निकाल दिए जाते हैं या नाराज होकर खुद निकल पड़ते हैं। इन बच्चों के लिए सबसे बड़ी समस्या है कि ये बहुत जल्दी किसी भी काम से 'बोर' हो जाते हैं।"[106] जिसकी वजह से उनके जीवन में ठहराव नहीं आ पाता। अत्याधिक महत्त्वाकांक्षी होने की वजह से अपने फायदे के अनुसार बदलते रहते हैं। "जमाना हर समय बदलता है, पर पिछले दस सालों में जमाना एक बार छलांग लगाकर जैसे सौ साल आगे निकल गया

है। इसकी नब्ज पकड़ना अब के.वी. की पीढ़ी के लिए कोई आसान काम नहीं है। के.वी. की उम्र के लोगों ने तो तीस-पैंतीस साल पहले अपनी अंतिम किताब पढ़कर रख दी होगी। आज वही सफल होगा जो अपनी समझ को रोज 'अपडेट ' या तरोताजा कर सकता है।"[107]

आधुनिक प्रेम की परिभाषा और प्रेम की अनुभूति आदि के बारे में के.वी. की निगाह में प्रेम की परिभाषा "प्रेम, प्रेम क्या होता है, कौन जानता है?"- के.वी. फिर उसी विषय पर आ गए। "और प्रेम सच्चा प्रेम? वह तो एक भ्रम से ज्यादा कुछ नहीं। एक ख़ास उम्र में शरीर के कुछ रसायन मिलकर दिमाग में विशेष अनुभूति पैदा करते हैं, वही प्रेम है।"[108] आधुनिक बाजार के समाज और उसकी उपयोगिता का परिमाण दोनों ही विज्ञापन के द्वारा उपभोक्ता समाज को मुर्ख बनाकर पैसा कमाने का धंधा मात्र है। जिसके द्वारा कम्पनी के बाजारीकृत व्यवस्था के माध्यम से लोग इंसान कम वस्तु और संवेदनहीन ज्यादा बनते जा रहे हैं। इतना ही नहीं ये ताकत प्रदान करने वाले प्रोडक्ट बच्चों को उनकी उम्र से पहले ही उन्हें युवा बना उनकी मासूमियत छीनता जा रहा है जिसका प्रभाव आने वाली कुछ ही वर्षों की पीढ़ियों में स्पष्ट दिखने भी लगेगा। "क्या नाम है तुम्हारे प्रोडक्ट का?" गुरुचरण ने धीरे से कहा-"पावर्रिक्स"। "कितना बेचते हो एक साल में? दो सौ करोड़ का? चार सौ करोड़ का? और उसमें है क्या ? थोड़ी सी चीनी, थोड़ा आटा, थोडा दूध. थोडा फ्लेवर- यही तो? उसे पिला-पिलाकर तुम इस देश का क्या भला कर लोगें? बेचारा गरीब मर-मरकर खरीदेगा कि 'पावरिक्स' उसे 'पावरफुल' बना देगा। वह सोचता रहता है कि सारे अमीर यही पी-पीकर ऐसे ताकतवाले बने होंगे। अरे बेटा, दाल-भाल खा, प्रभु के गुण गा। ये पावर्रिक्स किसी को ताकत नहीं देगा, न गरीब को, न अमीर को। यह तो खाली गुरुचरण की मल्टीनेशनल कम्पनी को ताकत देगा।" यहाँ पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आधुनिक समाज किस दिशा की ओर आगे बढ़ रहा है। आने वाले समय और समाज में अगर ऐसे ही चलता रहा तो दुनिया से मानवीय शक्ति नष्ट हो जाएगी और मशीनीकरण का युग पूरे जीवंत समाज को अपाहिज बना राज करेगा। वैसे भी वर्तमान समाज ज्यादातर सूचना प्रौद्योगिकी का आदी हो उसी के अनुसार गतिमान है। एक पल के लिए टेक्नोलॉजी का बंद होना या धीमा पड़ जाना मनुष्य की सोचने समझने और स्वयं से कुछ कर

पाने की सभी आन्तरिक और बाह्य इन्द्रियाँ भी शून्य हो लकवा ग्रस्त महसूस करने लगती है। और ऐसा ही लगा तो अभी जो महसूस कर पाती हैं वह वास्तव में अपाहिज हो जायेंगी। बाजार के उद्योगपति लोग केवल अपने फायदे को ध्यान में रखकर किसी भी खाद्य पदार्थ में आराम से जनता को मुर्ख बना अपना माल बेचे जा रहे हैं। “अब गए वे दिन जब इण्डिया में सरकारी अफसर तय करते थे कि औरतें बाजार से कौन-सी क्रीम और लिपस्टिक खरीदेंगी और लोग किस टी.वी. पर कौन से प्रोग्राम देखेंगे। अब तो देश के दस करोड़ मोबाइल फोन वाले परेशान हैं कि पचासों मॉडल से कौन सा मोबाइल खरीदें।”[109] बदलते समाज और विघटित होते पर्यावरण को क्या बचाया जा सकता है? क्या लोगों की आवश्यताओं पर कुछ हद तक रोक लगाई जा सकती है। क्या सभी कहने मात्र से मान जायेंगे। इन्हीं बातों की गुत्थम-गुत्थी में के.वी. शंकर अय्यर का सम्वाद उनकी पत्नी से– वह अपनी पत्नी की बेचैनी देखकर हंस रहे थे। “दुनिया के ताकत वाले देश ‘ग्लोबल वार्मिंग’ या पृथ्वी के ऊपर हवा की छतरी के नष्ट होने के डर से कोई डेढ़ सौ साल पहले की गँवारू जिन्दगी में लौटने वाले नहीं हैं। लाइफ स्टाइल नहीं हो तो लाइफ का मतलब भी क्या है?...आगे वह कहते हैं- “अब तुम्हें कहा जाय कि हवाई-जहाज में मत बैठो, गाड़ी बेच दो क्योंकि इससे धरती का ताप बढ़ रहा है तो तुम क्या मान लोगी? तुम्हें कोई कहे कि लिफ्ट में मत चलों, एयर-कंडीशंस, फ्रिज, वाटर-हीटर, मिक्सर, माइक्रोवेब सब हटा दो, तो तुम धरती को बचाने के लिए यह त्याग करने को तैयार हो? नहीं ना? बस समझो कि मामला यही है। जैसे तुम यह सब करने को तैयार नहीं हो, यूरोप-अमेरिका के लोग भी यह करने को तैयार नहीं हैं। तो फिर उपाय क्या है?”[110] जीवन की सच्चाई मृत्यु से पहले सारी जीवन जीने वाले परिवार के लिए तैयारी करके जाने का प्रावधान किया जा रहा है। प्रेम और मृत्यु के सम्बन्ध में के.वी. गुरु के विचार वास्तव में जहाँ दार्शनिकता के दर्शन करवाते हैं वहीं दूसरी तरफ यथार्थ की दुनिया का चित्र भी दिखलाते नज़र आते हैं। “अचानक मरने में बड़ा आनंद है। लोग पहले से मौत की कितनी तैयारियां करते हैं- इंश्योरेंस, करवाते हैं ताकि परिवार को उनके जाने पर उतना कष्ट न हो”[111] जीवन की वास्तविकता है मृत्यु जिसके आगे मनुष्य असहाय होता है। लेकिन जब जाना सभी का निश्चित है तो दुःख किस बात का, आराम से

जब तक हो जिंदगी को खुलकर जियो और सभी को जीने दो की भावना से आत्मसात करते हुए जिंदगी के सफ़र में बिना किसी गिले-शिकवे से आगे बढ़ने का नाम है जिंदगी। गुरु की मृत्यु को लेकर बहुत ही अद्भुत कल्पना और इच्छा है। अपने पूरे जीवन में जिस प्रकार तरह-तरह की सुख-शांति का अनुभव उन्होंने बेहिचक किया, उसी तरह भविष्य की या कहें पूर्व जन्म की बिना किसी योजना के वह सुख शांति पूर्वक प्रकृति की गोद में सोने की इच्छा मात्र है। बिना किसी भौतिक स्वार्थ के। "मेरी मृत्यु के बारे में बड़ी विराट कल्पना है। मैं खुले आसमान के नीचे मरना चाहता हूँ। आँखों के सामने प्रकृति का पूरा वैभव हो। अन्धेरा न हो, ताकि दुनिया के रंग वैसे ही उसे देखते हुए इस दुनिया से चला जाऊं"[112]

उपन्यास 'लौटते हुए'-आदिवासी उपन्यास (दिल्ली के स्वप्न प्रदेश में) आदिवासियों के बीच गरीबी, बेरोजगारी और भूखमरी का सबसे बड़ा कारण वास्तविक समाज का वैश्वीकृत समाज में परिवर्तन से है। आदिवासी समाज में गैरआदिवासी (दिकू) लोगों का प्रवेश तथा जल, जंगल, जमींन से अलग होने की समस्या को बढ़ाना, उनकी संवेदना, सहजता आदि मानवीय भावनाओं से खिलवाड़ करना प्रमुख समस्या है। वैश्वीकृत समाज ने मध्यवर्गीय समाज के रहन-सहन, भेष-भूषा, समाज और संस्कृति आदि जीवन के सभी आधार को अत्यधिक प्रभावित किया है। मध्यवर्गीय समाज में टेक्नोलाजी का प्रवेश से जीवन अपेक्षाकृत सहज हुआ है तथा दूसरी तरफ महंगाई की मार मानवीय संवेदना को क्रूर भी बना रही है। प्रस्तुत उपन्यास में वैश्वीकृत समाज से पहले यानी आभासी दुनिया ने आदिवासी समाज के लोगों के लिए जीवन कठिन और संघर्षशील बना दिया है। आदिवासी समाज गरीबी, भूखमरी की मार झेल रहे हैं। उपन्यास की नायिका स्वप्न प्रदेश दिल्ली रोजगार की तलाश में आती है, जहाँ पर उसे तमाम तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वैश्वीकरण के पहले समाज में मानवीय संवेदना बची हुई थी, जिससे मानवीय भावनाओं की संतुष्टि हो जाती थी लेकिन बदलते समय और समाज में मध्यवर्गीय घरों में काम करने वाली आयाओं की स्थिति पहले से बहुत संघर्षशील हो गई है। क्योंकि ज्यातर घरों में घरेलू काम काज के लिए टेक्नोलॉजी जैसी सुविधाओं के आ जाने मात्र से वर्तमान समय में उन्हें पार्ट-टाइम के लिए ही काम मिल पा रहा है। पहले उन्हें स्वयं के रहने-खाने की व्यवस्था नहीं

करनी पड़ती थी। जहाँ उन्हें काम मिलता वहीं पर रहती खाती थी। लेकिन महंगाई बढ़ने और टेक्नोलॉजी बाजार सूचना-प्रौद्योगिकी आदि यंत्रो पर आधारित समाज के विकसित हो जाने से उन कामकाजी लोगों के विकास की गति को कम कर दिया है। लेखक ने युवतियों के महानगरों की ओर तेजी से बढ़ते पलायन की समस्या को कथावस्तु को आधार बनाया गया है। पारिवारिक गरीबी और घर की जिम्मेदारियों को ध्यान में रखकर वह कमाने के लिए अपना घर परिवार छोड़कर घर से काफी दूर दिल्ली जैसे लुभावने शहर में आकर अपनी आर्थिक स्थिति सुधार हेतु वह बड़े-बड़े लोगों के घरों में 'आयागिरी' का काम करती हैं। एक बार घर से भाग आने के बाद घर पर पुन: उन्हें वह स्थान नहीं मिल पाता है जिसकी वह हकदार शहर आने से पहले होती हैं। ऐसी ही सामाजिक स्थितियों से गुजरने वाली 'सलोमी' भी एक आदिवासी लड़की होती है जो बचपन से ही घर में बड़ी होने और घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण अपने घर और छोटे भाई-बहनों के प्रति चिंचित होती है जिस समय उसके लिए घर के माँ-बाप को चिंता करने की जरुरत होती है बच्चों के बारे में माँ-बाप सोचते हैं उनके लिए उनके भविष्य की राह तय करते हैं वहीं सलोमी स्वयं पिता के शराबी होने की वजह से बहुत चिंतित रहने लगती है। उसे समझ में नहीं आता की वह क्या करें। वह घर और छोटे- भाई बहनों की सहायता और उन्हें पढ़ाने के लिए अपना पढ़ने और दसवीं बाद नर्स बनने के सपने को भूलकर घर परिवार और भाई बहन को पढ़ाने हेतु घर से भागकर दिल्ली काम की तलाश में आ जाती है जिससे उसके घर की आर्थिक स्थिति सुधर सके। एक 12 से 14 वर्ष की लड़की अपने घर की जिम्मेदारियों के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। उसे देखकर ऐसा लगता है कि वह अपनी उम्र से 10 वर्ष आगे चल रही है। उसकी उम्र की लडकियाँ जहाँ मौज-मस्ती में समय बिताती हैं वह घर परिवार के लिए संघर्ष करने का निर्णय लेती है। वह अपनी सहेली मार्था के साथ दिल्ली काम की तलाश में आ जाती है। उपन्यास से सलोमी के माध्यम से लगातार ग्रामीण परिवेश, शहरी परिवेश और लोगों की कहानी साथ-साथ चल रही होती है। शहर की घटना उसका तुरंत का भोग हुआ इतिहास हैं तो भूतकाल की वस्तुएं उसके अंतर्मन में चलने वाला गाँव जिसकी वह बार-बार शहरी परिवेश से तुलना करती है। सलोमी अपना घर परिवार छोड़कर अनजान

शहर दिल्ली आ जाती है। यहाँ तक की वह परिवार और घर के पारिवारिक जिम्मेदारियों में इतनी डूबी होती है की वह प्रेम की किरण रूपी चाहत की भी परवाह किये बगैर अपने भाई-बहनों के लिए काम की तलाश में घर छोड़ देती है। एक लड़की का घर से भाग जाना, जबकि उसका उद्देश्य नेक रहा है लेकिन लड़की को स्वयं के निर्णय लेने का अधिकार आदिवासी समाज में भी नहीं मिल पाया है। सलोमी के घर से जाने के सकारात्मक उद्देश्य को जानते हुए भी सामाजिक बन्धनों या कहे मान्यताओं को ध्यान में रखकर उसे उसके परिवार द्वारा ही अस्वीकार कर दिया जाता है जबकि उसके द्वारा भेजे गए पैसे के लिए कोई इनकार नहीं होता है। समाज की इस गहरी पीड़ादायक और दोहरी सोच को नकारने की जरुरत है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि आदिवासी इलाके में बहुत जहालत गरीबी का सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान समाज बदलते भौतिकतावादी दौर में शहरी समाज में इंसानियत और सम्वेदना दोनों की शून्य होती जा रही है। कुछ बच पा रहा है तो आभासी समाज का आकर्षण, अकेलापन और विकृति होती मानसिकता की हैवानियत जिसकी भूमि इतनी क्रूरतम रूप से शहरी परिवेश की ही देन कहीं जा सकती है। दिल्ली में 'आयागिरी' के दौरान सलोमी और उसके जैसे और भी रांची की तरफ से आई हुई लड़कियों के साथ होने वाले हादसे इसी विकृत मानसिकता और बदलती शहरी समाज की संस्कार विहीन नई पीढ़ी के शान-ए-शैक और रैय्यासी का नतीजा है। जिसके बारे में माँ-बाप भी अवाक होते जा रहे हैं अपनी संतान की कारतूतो को देखकर।

दिल्ली शहर के बारे में अभी तक जो कुछ भी सलोमी जान पायी थी वह सब पढ़ाई के दौरान किताबों में पढ़ा-सुना था। वास्तविकता में देखने को मिला घर से भागकर दिल्ली आ जाने के बाद। वह दिल्ली स्थिति लालकिला और जामा मस्जिद की सीढ़ियों को देखकर बहुत सुखद अनुभव करती है। उसके मन में दिल्ली शहर का आकर्षण अपनी सहेली मार्था के रहन-सहन और और पहनावे को देखकर हुआ था। दूसरे यह भी की उसके घर की हालत भी उसे दिल्ली जाकर कमाने के लिए मजबूर कर रही थी जबकि वह पढ़ना चाहती थी उसका सपना था की वह नर्स बनेगी। लेकिन वह भी अधूरा ही रह जाता है। दिल्ली एक अलग दुनिया है...। 'मार्था' की बातें सुनकर 'सलोमी' के मन में भी इच्छा हुई अपने

तरीके से जीने की अपने घर परिवार के लिए वह दिल्ली जाकर ही कुछ कर सकती थी। वह सोचती है कि अगर वह यहाँ रह गई तो शादी हो जाएगी फिर वहीं घर का खेत-खलिहान का काम बस जिन्दगी वहीं तक सिमट कर रह जायेगी। सलोमी ने मार्था से निवेदन किया। “यहाँ रहकर तो मैं भी देहातिन की देहातिन ही रह जाऊँगी, पूरी गंवारिन।”[113] यहाँ पर शहरी परिवेश वहाँ का रहन-सहन, वेशभूषा सब ग्रामीण समाज के रहने वालों को आकर्षित करता है और उन्हें और भी ज्यादा जिनका जीवन अभाव में गुजरता रहा है। मार्था के साथ दिल्ली जाते समय वह रास्ते में घटित होने वाली हर घटना उसके लिए नई थी वह सभी को बहुत ही बारीकी से चुपचाप बैठकर समझने की कोशिश कर रही थी। वह मार्था के बेबाक अंदाज को ट्रेन में सभी से बात करते हुए देखकर महसूस करती है कि“ देश-भ्रमण का फायदा शायद यही है। आदमी बोल्ड हो जाता है। निर्भीकता आ जाती है। व्यवहार कुशल हो जाता है आदमी।”[114] वह पहली बार घर से निकली थी और उसका ट्रेन में बैठने का पहला अनुभव था। ट्रेन जैसे-जैसे अपने पथ पर आगे बढ़ रही थी वह महसूस कर रही थी कि उसका सब कुछ जो अभी तक अपना था अपने पास था सब छूटता जा रहा है। अचानक उसे महसूस हुआ की प्रकाश भी है। उसकी याद ने सलोमी की आँखे नम हो गई। वह सोचती है कि वह मुझे कितना चाहता है। उसने एक मिनट के लिए चाहा कि वह गाड़ी रोककर उतर जाय लेकिन अब सम्भव नहीं था गाडी रफ्तार पकड़ स्टेशन से आगे निकल चुकी थी। दिल्ली जैसे शहर में आगे बढ़ते हुए सलोमी बहुत घबराई हुई थी उसके मन में बार-बार विचार आ रहा था कि उसे वापस अपने घर लौट जाना चाहिए जहाँ “उसे लगने लगा था कि वह एक गलत स्थान की ओर बढ़ रही है। उसे लौट जाना चाहिए वापस उस गाँव की ओर जहाँ सुरक्षा है, प्रेम है, आनंद है, अपना मन है।”[115]

घर-परिवार में अगर स्थिति ठीक न हो तो बच्चों पर उसका कितना गलत असर पड़ता है उसका अंदाजा भी परिवार के लोग नहीं लगा सकते हैं। अपनी आदतों पर कब्जा न पाने वाले परिवार के मुखिया का ही जब परिवार के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं रह जाती तो उसका असर बच्चों पर सीधे पड़ता है ऐसे में बच्चे बहुत ही अपने आपको अपाहिज समझने लगते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें समझ में नहीं आता कि

उन्हें क्या करना चाहिए। और वह न चाहते हुए भी गलत निर्णय लेने के लिए तैयार हो जाते हैं जैसा कि सलोमी को न चाहते हुए भी छोटे-भाई बहनों और घर की आर्थिक स्थिति के सुधार हेतु बाहर आना पड़ा। लेकिन वास्तविकता यह भी है कि अब उस घर परिवार में उसे घुटन महसूस होने लगी थी। वह न चाहकर भी दिल्ली जैसे अनजान शहर में बहुत ही कम उम्र में मार्था के साथ आने का निश्चय कर लेती है। “कितनी घुटन बढ़ गयी थी परिवार में ! अच्छा किया उसने कि भाग आयी। अब रोज की चख-चख से मुक्ति तो मिल गयी न! सलोमी ने अपने आप को समझाया और चुपचाप बाहर आकाश को सूर्य की लाल किरणों से रक्तिम होता हुआ देखने लगा।”[116] सलोमी का व्यवहार बहुत ही सच्चा और ईमानदार रहा है। उसने गलत कामों को कभी महत्त्व नहीं दिया। वह बहुत ही कम उम्र से ही आर्थिक समस्या से गुजरते हुए भी कभी किसी के साथ या अपनी किसी इच्छा की पूर्ति के लिए कुछ गलत की तरफ ध्यान नहीं दिया। अपने काम के प्रति ईमानदार और कठिन परिश्रम करने वाली लड़की रही है। ट्रेन में सफर के दौरान जब उसे पता चलता है कि कुछ लोग बिना टिकेट यात्रा कर रहे हैं तो वह मन ही मन गुस्सा करती हुई सोचती है कि “अजीब हैं लोग! पढ़े-लिखे लगते हैं और काम ये गलत करते हैं! कैसे बेईमान लोग हैं ये! सरकार को घाटा नहीं होगा क्या? लेकिन सलोमी को क्या पता कि यहाँ तो अधिकांश यात्री बिना टिकट ही यात्रा करने में बहादुर समझते हैं स्वयं को। जो टिकट लेकर यात्रा करे वह मूरख...डरपोक!”[117] पूरे उपन्यास के सलोमी द्वारा दो समाज की गतिविधियों को बहुत ही स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जाता है उपन्यास में आँखों देखा दो परिवेश की कहानी चलती है पहला ग्रामीण परिवेश जहाँ सब कुछ प्रकृति पर आधारित है आदिवासी समाज और उनका अपना जीवन और समाज है। दूसरी तरफ दिल्ली बहुत ही विकसित हसीन सा ख़्वाब है। जहाँ आधुनिकता का आभासी दुनिया के तकनीको के साथ-साथ शहरी भीड़-भाड और भौतिकतावाद की प्रतीक दिल्ली बहुत ही सम्पन्न और संवेदना शून्य होती हैवानियत की इमारत बनती जा रही है दिल्ली। सलोमी की सहेली जब से दिल्ली आती है वह एक ही घर में ‘आयागिरी’ का काम करती है। लेकिन सलोमी की ऐसी तक़दीर नहीं मिली उसे कई घर बदलने पड़े काम के दौरान बहुत सी परेशानियों का सामना करना पड़ा यहाँ तक की खन्ना कुछ अन्य लडकों

के द्वारा उसे अपनी आबुरू भी गवानी पड़ी। इन सभी घटनाओं से आहत हो वह अंत में घर की तरफ वापस अपनी दुनिया में लौटने का निश्चय करती है। जहाँ पर उसे विश्वास है की उसे अपने घर- परिवार में अब कोई जगह नहीं मिलेगी लेकिन ख़ुशी इस बात की है कि उसके भाई बहन पढ़-लिख चुके हैं जिनके लिए वह बाहर दिल्ली जैसे शहर में कमाने के लिए आयी थी। अब वह अपना जीवन निर्मल गृह में बच्चों की सेवा में लगाना चाहती थी।

सलोमी की सहेली मार्था का चरित्र बहुत ही समझदार और अनुभवी लड़की का है। वह हर कदम पर सालो को समझाती है। सालो उसे अपना गुरु भी मानती है। उसे हमेशा अपने रांची की तरफ की लड़कियों की परवाह होती है। मार्था और अन्य आया का काम करते वाली लड़कियां रविवार को चर्च में मिलती थी। सभी बहुत ही समझदारी से एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील थी। नीलू जब अपने मालिक से ड्राइवर से परेशान होती है और उसे बताती है कि 'हरामी साला' पीछे पड़ गया मन तो करता है उसे चप्पल से मारने का लेकिन क्या करू बदनामी होगी यही सोचकर रुक जाती हूँ' स्त्री की इसी बेबसी का पुरुष वर्ग ज्यादातर फायदा उठाने ने नहीं चूकते हैं।

भारत गाँवों का देश है। भारत के गाँव आज भी गरीबी और आर्थिक तंगी से गुजर-बसर कर रहे हैं ऐसी स्थिति में भारत का विकास मात्र कल्पना है। जब तक गाँव का विकास नहीं होगा तब तक देश के विकास के लिए किया गया प्रयास अधूरा माना जाएगा। सालों का कथन वास्तव में दिल को छू जाता है। उसकी बेबसी किसी को भी सोचने पर मजबूर कर देती है। "मुझे भी गाँव की गरीबी बहुत काटती है। जब आबा को दिनभर खटने के बाद भी इतना नहीं हो पाता कि अपने बच्चों को पूरा भरपेट खाना खिला सके, तो उसकी मजबूरी पर तरस आता है। तब वे दारू पीकर इस दुःख को छिपाने की कोशिश करते हैं तो रोना ही आ जाता है मुझे।"[118] यहाँ पर गाँव और शहर की तुलना करें तो आज 21 वीं सदी में गाँव की स्थिति में ज्यादा कुछ सुधार नहीं आया है लोग आज भी पलायन करने को मजबूर हैं। दो जुन की रोटी न नसीब होने की वजह से भी लोग पलायन करने पर मजबूर हो रहे हैं लेकिन शहर की

स्थिति और विकास में कोई कमी नहीं आ रही है। शहर का विकास समय के साथ अपनी ही रफ़्तार से हो रहा है दिनप्रतिदिन।

सलोमी घर छोड़ने के बाद, बहुत दिनों बाद घर वापस मिलने जाती है। जबकि वह यहाँ आने के बाद बराबर घर पर पैसे भेजती रही है। घर में सभी को पता होता ही है कि घर की आर्थिक स्थिति देखकर ही उसने दिल्ली जाकर कमाने का निर्णय लिया है। लेकिन फिर भी घर परिवार में वह बेगानी हो जाती है। उसके माँ-पिता के लिए अब वह कुछ नहीं थी।

लड़की

हमारी शिक्षा,

हमारी जागरूकता,

हमारे भाव, हमारे विचार ,

हमारी इच्छा, हमारी चाह,

सब कुछ है हमारा ,

पर कुछ भी नहीं हमारा ,

हम इतने पराये क्यों....?

अगर किसी को उसकी चिंता और परवाह थी तो वह उसके भाई और बहनों को। वापस घर आकर उसे ख़ुशी नहीं बहुत ही बेगानापन लगा। पिता ने उससे बात भी नहीं की। सहेली अंजेला के पूछे जाने पर वह बताती है कि घर में सब ठीक है लेकिन उसके पिता ने उससे एक बार भी बात नहीं की। “बाप लोग ऐसे ही होते हैं रे! और बेटी के लिए तो और ही। बेटा कोई गलती करे तो उसे दस बार माफ़ कर देंगे। लेकिन बेटी कोई अच्छा काम करने के लिए भी कोई कदम उनकी मर्जी के खिलाफ उठाए तो सारा गुनाह बस बेटी का ही होगा। ऐसा ही होता है रे!” अंजेला बोली।”[119] समय का बदलता स्वरूप-रांची

से आयी सभी लडकियाँ आपस में बात करती हैं कि समय बहुत बदल गया है। और ऐसा नहीं है कि जो समय और चीजे बहुत पहले थी वह आज भी वैसे ही हैं। या रहेंगी। समय बहुत बदल गया है। “सालो समय बहुत तेजी से बदल रहा है। तुम देख ही रही हो। कल तक हम यहाँ अपनी मजबूरियों के कारण आये थे। अब लोग यूं ही आ रहे हैं।” [120] अर्थात आज की लडकियां मजबूरी बस आर्थिक समस्या की वजह से नहीं आ रही हैं कमाने बल्कि वह सभी अपने शौक से मस्ती करने और घूमने के उद्देश्य से दिल्ली जैसे शहर में आकर रह रही हैं। क्योंकि उनकी आवश्कताएं बदल गई हैं। उनके लिए जीवन जीने का उद्देश्य बदल गया है बदलते समय और समाज की मानसिकता का प्रभाव उन पर बहुत तेजी से पड़ रहा है। लेखक समाज और समय में होने वाले इसी बदलाव की तरह इशारा करता है। समय बदलने के साथ साथ दिन-प्रतिदिन महगाई बढ़ती जा रही है जिसकी तरफ मार्था इशारा करती है। पहले के लोग ‘आया’ का काम करने के लिए घरों में आया को रखते थे उनके घर में ही उनके रहने खाने का हो जाता था लेकिन बदलते समय और महगाई के चीजे बदलती जा रही हैं। अब कोई भी किसी आया को पूरी तरह से घर में रखकर काम नहीं करवाना चाहता है। क्योंकि टेक्नोलाजी के युग में हमारा देश प्रवेश कर चुका है। लोग सुविधा भोगी होते जा रहे हैं और मंहगाई बढ़ने से भी लोग ‘पार्ट टाइम’ ही एक दो घंटे के हिसाब से ‘आया’ को रखने लगे हैं ऐसे में खाने-पीने के साथ-साथ रहने की भी व्यवस्था हमें स्वयं करनी पड़ जाएगी। जिसके लिए हमारे पास इतने पैसे नहीं होंगे जिससे हम दिल्ली जैसी जगह से रह सके।

युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले पढ़ा-लिखा युवा बैंक मैनेजर सुरेश कुमार सिंह के घर सलोमी के साथ हादसा होता है लेकिन वह भी उसे न्याय दिलाने के बजाय घटना को रफादफा करवाना चाहता है जिससे समाज में किसी को उसका पता न चले। एक लड़की की जिंदगी से उसे कोई लेना देना नहीं होता है। समाज के उच्च वर्ग की नजर में गरीबों की जिन्दगी और उनकी इज्जत का कोई मोल नहीं है। और दूसरी तरफ गरीब वर्ग के पास इतनी शक्ति नहीं होती है कि वह उसका विरोध कर सके। सलोमी हादसा होने के बाद चकाचौंध भरी दिल्ली छोड़कर वापस घर लौट जाने का निर्णय लेती है। और बिना किसी

को बताये वह वापस रांची आकर अनाथालय में काम करने लगती है। जहाँ उसकी प्रकाश(पूर्व प्रेमी) से मुलाकात होती है। उसे देखकर उसके मन में पुन: आशा का संचार होता है लेकिन वह कुछ क्षण के लिए होता है। अपने साथ हुए हादसे को याद करके वह पुन: निराश हो जाती है। लेकिन प्रकाश उसे वह जैसी होती है उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेता है। प्रकाश के गाँव जाकर वह उसके साथ एन. जी. ओ. में लड़कियों को जागरूक करने का काम करती है उसे स्वरोजगार की तरफ आकर्षित करती है। उनसे दिल्ली के अपने स्वयं को अनुभव साझा करती हुई रांची की लड़कियों को दिल्ली जैसे शहर में आयागिरी के काम के लिए आने से रोकती है। उपन्यासकार भविष्योन्मुखी अंत वैश्वीकरण की चकमक दुनिया से अलग अपनी पहचान और अस्तित्व की अहमियत की तरफ इशारा करते हुए एक आदिवासी स्त्री जीवन के संघर्ष की कहानी कहता है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि 21वीं सदी में बाजार और समाज दोनों का स्वरूप बदला है। जिसका प्रभाव समाज और समाज के लोगों पर उनकी गतिविधियों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ रहा है। 21वीं सदी का बाजार बाजारीकरण का रूप धारण कर चुका है और समाज और समाज के लोग बाजार और उपभोक्ता बनते जा रहे हैं। जिसके माध्यम से बाजारीकृत संस्कृति का जन्म हो रहा है। मानवता की वास्तविक सम्वेदनशील दुनिया आभासी जगत का निर्माण कर फायदा-नुकसान का लेखा जोखा सिखलाती हुई इंसान को स्वार्थी, संवेदनहीन और मशीन बनाती जा रही है। उपभोक्तावादी संस्कृति की वजह से शिक्षा का बाजारीकरण हो रहा है। वर्तमान शिक्षा व्यावहारिक ज्ञान कम व्यावसायिक ज्ञान केन्द्रित हो गई है। ज्यादातर युवा पीढ़ी व्यावसायिक ज्ञान सम्बंधित शिक्षा प्राप्त करना चाहता है। बाजारीकृत संस्कृति ने सामाजिक गतिविधियों को टेक्नोलोजी के माध्यम से आभासी दुनिया में प्रवेश करना उचित समझा है। जिसके माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। समाज के नैतिक-मूल्यों भी काफी हद तक परिवर्तित हो रहा है। अत: यह कहा जा सकता है कि 21वीं सदी में भारतीय समाज और संस्कृति ने बाजारीकृत समाज और उपभोक्तावादी संस्कृति का रूप ले लिया है।

संदर्भ सूची-

1. kavitakosh.org/kk/pemdrive_ smay *(दिनकर कुमार*-कविता कोश)

2. kavitakosh.org/kk/pemdrive_ smay

3. kavitakosh.org/kk/pemdrive_ smay

4. जोशी ज्योतिष, संस्कृति विचार, मेघा बुक्स प्रकाशन दिल्ली-32, पृष्ठ सं. 79

5. कस्तवार रेखा, स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं.132

6. सिंह पुष्पपाल, भूमण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पृ.सं-43

7. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी- पृष्ठ. सं. 159

8. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी- पृष्ठ. सं. 159

9. जोशी ज्योतिष, संस्कृति विचार, मेघा बुक्स प्रकाशन दिल्ली-32, पृष्ठ सं.71

10.सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं. 11

11. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.12

12. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.27

13. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं. 35

14. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं. 39

15. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं. 74

16. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.81

17. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.162

18. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.163
19. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.164
20. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.167
21. सिंह काशीनाथ, काशी का अस्सी पृष्ठ. सं.165
22. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 15
23. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं.18
24. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं.23
25. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 23
26. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 31
27. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 39
28. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं.42
29. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 89-90
30. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 136
31. सिंह काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, पृष्ठ. सं. 153
32. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी- पृष्ठ. सं. 298
33. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.07
34. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 8
35. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 31

36. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.40

37. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 45

38. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 48

39. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 82

40. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.97

41. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.196

42. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 197

43. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.197

44. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.217

45. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 226

46. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 230

47. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 236

48. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 235-236

49. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 239

50. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 255

51. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.255

52. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 286

53. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 289

54. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं.309

55. पटेल, सत्यनारायण, गाँव भीतर गाँव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ सं. 318

56. आठवां विश्व हिन्दी सम्मलेन आलेख और प्रतिवेदन –महात्मा गाँधी अन्तराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, पृष्ठ. सं. 65

57. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, उपन्यास के परिशिष्ट से

58. धीरेन्द्र अस्थाना दौड़ उपन्यास के परिशिष्ट से

59. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ.सं.65

60. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ.सं.33

61. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ.सं. 49

62. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं. 40

63. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं. 44

64. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं. 45

65. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं. 49

66. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं.71

67. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं.73

68. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं.75

69. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं. 81

70. कालिया, ममता. दौड़ वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. सं. 89

71. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं.29

72. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 29

73. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 40

74. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 90

75. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 112

76. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 113

77. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 126

78. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 160

79. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 164

80. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 167

81. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 182

82. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 184

83. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 226

84. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 246

85. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 246-247

86. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 247

87. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 289

88. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 308

89. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं.340

90. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 340

91. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 342

92. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 345

93. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 346

94. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 382

95. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ. सं. 393

96. अमित कुमार, भारत और भूमण्डलीकरण, पृष्ठ. सं. 18

97. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.09

98. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.10

99. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 10

100. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 11

101. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 11

102. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 12

103. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 13

104. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.16

105.सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 72

106. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 73

107. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.73

108. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 90

109. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 112

110. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.145

111. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 197

112. सरावगी, अलका, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 198

113. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं.06

114. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं.08

115. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं.16

116. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं.18

117. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं. 21

118. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं.192

119. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं. 237

120. 'तरूण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, सत्य भारती प्रकाशन, रांची झारखण्ड पृष्ठ सं.271

अध्याय-चार

21वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: सूचना प्रौद्योगिकी और समाज

4.1-पारम्परिक मानवीय मूल्यों का विघटन और नये मूल्यों का प्रवेश

4.2-सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव: स्त्री और विज्ञापन
4.3- दलित समाज के अस्तित्त्व और अस्मिता का प्रश्न

4.4-विज्ञान की प्रगति और मानवीय संवेदना का ह्रास

4.5- बदलते सामाजिक मूल्य और टूटती सामाजिक संस्था की नैतिकता

21 वीं सदी के हिन्दी उपन्यास: सूचना-प्रौद्योगिकी और समाज

जहाँ तक सूचना और समाज का प्रश्न है, समाज की गतिशीलता सूचनाओं के आदान-प्रदान पर ही निर्भर करती है। समाज में सूचना प्रौद्योगिकी यंत्रों के माध्यम से जीवन बहुत ही सहज और तीव्र हुआ है। वर्तमान समय में कोई भी जानकारी किसी भी वर्ग या समुदाय तक सीमित न रहकर समाज व देश के सभी वर्ग और समुदाय तक नि:संकोच रूप से पहुँच रही है। सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति के आ जाने से समय और स्थान के बीच की दूरियाँ कम हुई है। इसके माध्यम से किसी भी जानकारी या सूचना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक जिस समय घटना घट रही है, ठीक उसी समय, उसी रूप में पहुँचाना सम्भव हो गया है। सूचना यंत्रों के आने से पहले समाज में किसी जानकारी को एक-दूसरे तक पहुँचा पाना सहज नहीं था और पत्र या डाक के माध्यम से पहुँचाने में काफी समय लगता रहा है। लेकिन आज समय और स्थान के बीच की दूरियाँ मिट गई हैं। व्यक्ति विशेष के विचारों का आदान-प्रदान विश्व स्तर पर आसानी से पहुँच रहा है। वर्तमान समय में समाज का कोई भी व्यक्ति अपने विचार और ज्ञान को सूचना यंत्रों के माध्यम से स्वयं लोगों तक सहजता से पहुँचा पाने में सफल हो गया है। वैश्वीकरण की विचारधारा ने भारतीय समाज के जीवन को सहज बनाने के साथ-साथ मानसिक रूप से कहीं न कहीं बाजार, व्यापार और उपभोक्ता के माध्यम से वैश्वीकृत समाज की निर्मित करता हुआ समाज के लोगों की मानसिकता को अपने अनुसार अग्रसर कर रहा है। जिसे विकास की संज्ञा दी जा रही है। वैश्विक विचारधारा सूचना-प्रौद्योगिकी यंत्रों के माध्यम से समाज को बाजार में तब्दील करता जा रहा है। जहाँ पर वस्तुओं के मोलभाव के साथ मानवीय संवेदना तथा उसकी मानसिकता भी दिन-प्रतिदिन स्वार्थी बनती जा रही है। कवि केदारनाथ सिंह की कविता का शीर्षक है- 'फर्क नहीं पड़ता' में समाज में हो रहे मानसिक बदलाव की स्थिति को सहजता से समझा जा सकता है -

'तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'
वहाँ लिख दो 'सड़क'
फर्क नहीं पड़ता

मेरे युग का मुहाविरा है

फर्क नहीं पड़ता
अक्सर महसूस होता है
कि बगल में बैठे हुए दोस्तों के चेहरे
और अफ्रीका की धूंधली नदियों के छोर
एक हो गये हैं
और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ
मेरी जिह्वा पर नहीं बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में
सटी है....!'

वैश्वीकृत समाज में सूचना प्रौद्योगिकी से तात्पर्य इलेक्ट्रोनिक माध्यम से सूचना का आदान-प्रदान करने से है। वर्तमान समय में 'इलेक्ट्रानिक डिवाइस' जैसे- मोबाइल, इंटरनेट, टी. बी, रेडियों, फैक्स आदि इलेक्ट्रोनिक यंत्रों के माध्यम से पलक झपकते ही हम घर बैठे-बैठे सूचना समाचार प्राप्त कर सकते हैं, इतना ही नहीं देश-विदेश में घट रही दैनिक दिनचर्या की भी जानकारी हम इसके माध्यम से रख सकते हैं। वर्तमान दुनिया किसी के लिए भी रहस्यमयी नहीं रही। समाज का कोई भी वर्ग, जाति, समूह का व्यक्ति, वह पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ ही क्यों न हो। गूंगा हो या बहरा अर्थात किसी भी प्रकार की शारीरिक अपंगता भी क्यों न हो, लेकिन किसी के लिए भी सूचना-प्रौद्योगिकी एवं टेक्नोलॉजी यन्त्र अवरोध उत्पन्न नहीं करती है बल्कि 'सूचना प्रौद्योगिकी यंत्रों' के माध्यम से सहयोगी की भूमिका अदा करती है। वर्तमान समाज में किसी भी प्रकार की सूचना एवं जानकारी को प्राप्त करने हेतु किसी और की जरूरत नहीं होती है। इंटरनेट के माध्यम से हर तरफ की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। सूचना का युग या सूचना के काल को सामान्यत: कंप्यूटर युग के रूप में भी जाना जाता है। "सूचना समाज के प्रमुख अमेरिकी सिद्धान्तकारों में एल्विन टाफलर का प्रमुख स्थान है। भविष्यवादी दृष्टिकोण से समाज को विश्लेषित करने के कारण उन्हें भविष्यवादी भी कहा गया है। टाफलर के मुताबिक़ सामाजिक इतिहास 'लहरदार परिवर्तनों' का इतिहास है। पहली लहर-कृषि क्रान्ति, इसका युग आज से लगभग दस हजार साल पहले शुरू हुआ और सत्रहवीं सदी के अंत तक फैला रहा। दूसरी लहर को औद्योगिक

क्रान्ति के नाम से जानी जाती है। यह उद्योग प्रधान सभ्यता में फलीभूत होती है। यह दौर ढाई सौ वर्षों तक बरकरार रहा। तीसरी लहर है 'सूचना क्रान्ति' की। इसका उदय बीसवीं सदी के छठे दशक में हुआ।"[1]

आज 21वीं सदी में सूचनाएं मात्र सूचना न रहकर एक तीव्र विचार की भांति समाज में गतिशील हो 'सूचना क्रांति' का रूप धारण कर रही हैं। 'भाषा, समाज और सूचना प्रौद्योगिकी का अटूट सम्बन्ध है। भाषायी संवाद के बिना 'सूचना प्रौद्योगिकी' रूपी यंत्रों की क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है। "भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। भाषा और सम्प्रेषण के माध्यम से ही सूचनाओं का आदान-प्रदान सम्भव हो पाया है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक कारणों से विभिन्न मानवी समूहों का आपसी संपर्क बनता है। गत शताब्दी में सूचना और सम्पर्क के क्षेत्र में अद्भुत प्रगति हुई है। इलेक्ट्रानिक माध्यम की वजह से विश्व का अधिकांश भाग जड़ बनता जा रहा है। सूचना-प्रौद्योगिकी की क्रांति ने ज्ञान के द्वार खोल दिए हैं। बुद्धि और भाषा के मिलाप से सूचना-प्रौद्योगिकी के सहारे आर्थिक सम्पन्नता की ओर भारत अग्रसर हो रहा है। इलेक्ट्रानिक वाणिज्य के रूप में ई-कामर्स, इंटरनेट, द्वारा डाक भेजना, ई-मेल द्वारा सम्भव हुआ है। ऑनलाइन सरकारी कामकाज विषयक ई-प्रशासन, ई-बैंकिंग द्वारा बैंक व्यवहार ऑन लाइन शिक्षा सामग्री के लिए ई-एजुकेशन आदि माध्यम से सूचना-प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। सूचना-प्रौद्योगिकी के बहु-आयामी उपयोग के कारण विकास के नये द्वार खुल रहे हैं। भारत में सूचना-प्रौद्योगिकी का क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है।"[2]

वर्तमान समय और समाज भौगोलिक उदारीकरण, बाजारीकरण और उत्तर-आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है। इस प्रकार से वैश्वीकृत समाज की निर्मिति हो रही है। इसमें सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से टेक्नोलॉजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व के तमाम भाषा साहित्य में यही संस्कृति अपनी पूरी गरिमा के साथ उभर रही है। भारतीय साहित्य खासकर हिन्दी साहित्य भी पीछे नहीं है। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत समाज में घटित-घटनाओं के माध्यम से हो रहे बदलाव को 21वीं सदी के हिन्दी साहित्य की विभिन्न

विधाओं जैसे- उपन्यास, कहानी, नाटक, कविताओं आदि के माध्यम से साहित्यिक सृजन किया जा रहा है। तकनीकी संस्कृति का गहरा प्रभाव समाज और समाज के लगभग सभी सामाजिक गतिविधियों पर पड़ रहा है, जिसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब साहित्यिक कृतियों के माध्यम से देख सकते हैं। अर्थात समाज बदल रहा है इसलिए साहित्य भी नये प्रायोगिक कलेवर में कथानक और शिल्प दोनों माध्यम से बदलाव को उद्घाटित करने में सफल दस्तावेज के रूप में सामने आ रहा है। वैश्वीकृत समाज की झलक प्रस्तुत कविता के माध्यम से महसूस की जा सकती है-

“ज्यादातर चीजें उलट-पुलट हो गई हैं
इन दिनों दिमाग पर पहले कब्जा कर लिया जाता है
जमीनों पर कब्जा करने के लिए लोग बाद में उतरते हैं
इस तरह नयी गुलामियाँ शुरू होती हैं,
तरह-तरह की सस्ती और महंगी चमकदार रंग-बिरंगी
कई बार वे खाने-पीने की चीजों से ही शुरू हो जाती हैं
और हम सिर्फ एक स्वाद के बारे में बात करते रह जाते हैं
कोई चलते-चलते हाथ में एक आश्वासन थमा जाता है
जिस पर लिखा होता है ‘मेड इन अमेरिका’”[3]

आर्थिक दृष्टि से अगर सूचना प्रौद्योगिकी का मूल्यांकन करें तो सूचना प्रौद्योगिकी विचारक **“कस्तेल्स-** के अनुसार-“सूचना प्रौद्योगिकी वैश्विक है। भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था विश्व अर्थव्यवस्था से अलग ऐतिहासिक रूप से एक नया यथार्थ है। जैसाकि फर्नांद ब्रादेल और इमैनुएल वालरस्टीन ने बताया है विश्व अर्थव्यवस्था यानी एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें पूँजी संचय का प्रसार पूरे विश्व में होता है, पश्चिम में कम से कम सोलहवीं सदी से हो रहा है। भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था थोड़ी अलग है; यह ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसकी क्षमता पूरे पृथ्वी के पैमाने पर वास्तविक समय में एक इकाई के रूप में काम

करने की है। जहाँ उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति की विशेषता इसका निर्मम विस्तार और समय व स्थान की सीमा को समाप्त करने का निरंतर प्रयास है वहीं बीसवीं सदी के अंत में विश्व अर्थ-व्यवस्था सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों के आधार पर वास्तव में वैश्विक बनने में सफल हुई है। यह वैश्विकता आर्थिक प्रणाली की मूलभूत प्रक्रियाओं और तत्वों से सम्बंधित है।"[4] सूचना क्रांति पर ध्यान दे तो वह मानवीय संवेदना या उसके सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहार के बजाय आर्थिक जगत के बाजारीकृत संस्कृति को आत्मसात करने की तरफ आकर्षित करती रही हैं। क्योंकि "सूचना क्रांति और तज्जनित सूचना समाज का हमारे देश में स्वाभाविक तौर पर जन्म नहीं हुआ है। मुनाफे के विस्तार की मंसा से प्रेरित होकर 'सूचना क्रांति' आई। इससे आई समृद्धि सिर्फ समृद्धों के लिए थी और आम जनता की मुफलिसी और बदहाली दूर करने की प्रक्रिया से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। बुर्जुआ ने समृद्धि के 'शार्टकट' के रूप में 'सूचना क्रान्ति' को लागू किया। इसके अनियोजित और अराजक विकास ने आर्थिक तौर पर निर्भरता में वृद्धि की। पश्चिमी जीवन मूल्यों के प्रति आकर्षण पैदा किया।"[5] समाज और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो यह कहना गलत न होगा कि संचार को जब तक सूचना और संचार तक सीमित रखते हैं तब तक तो वह विकास का माध्यम बनता है। समाज और समाज के लोगों के लिए भले सूचनाओं का आदान-प्रदान करता रहा हो, लेकिन जैसे ही उसका बहु उपयोगी प्रयोग शुरू कर दिया जाता है वह विनाश का सूचक बनने लगता है। वर्तमान समय में संचार व्यवस्था महज संचार और सूचना का वाहक ही नहीं बल्कि वह समाज में हो रहे बदलाव के रूप में नई संस्कृति और नयी जीवन-शैली को लाने का भी काम करता है। "जनसंचार माध्यमों और सूचना तकनीकी का विगत 25 वर्षों में हमारे देश में चौतरफ़ा विकास हुआ है। जीवन के विविध क्षेत्रों में इस विकास ने नए आयाम दिए हैं। स्वातंत्र्योत्तर दौर में निर्मित मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की संरचना के निर्माण में सूचना तकनीकी की प्रभावी भूमिका रही है। साथ ही दूसरी तरफ उपभोक्ता वस्तुओं की खपत के विस्तार में भी यह क्षेत्र प्रमुख उत्प्रेरक का काम करता रहा है। इस दौर में उपभोक्ता बाजार का व्यापक विस्तार हुआ है।"[6] यह नई संस्कृति ही है जो हमारे समाज से हमारी परंपरा और मानवीय मूल्यों का नाश करने में सफल होती जा रही है। यह संस्कृति ऐसे जीवन-

शैली की वाहक है जिसमें हमारे जीवन मूल्यों के लिए कोई जगह नहीं बच पाएगी। “संचार- विशेषज्ञों ‘मर्टन’ और ‘लाजर्स फेंड’ ने संचार की विनाशकारी संभावनाओं की ओर संकेत किया था। उन्होंने कहा था कि संचार उदासीनता को जन्म देगा और उसका प्रभाव मादक प्रदार्थ के सेवन से उपजे नशे जैसा होगा। और उन्होंने यह भी कहा कि संचार के निरंतर सम्पर्क से किसी भी देश की बहु-संख्यक आबादी अपनी सक्रियता खो देगी।”[7] आने वाले समय और समाज में संचार माध्यमों का यूँ ही बोल बाला रहा तो समाज और समाज के लोगों का अपंग या कहे गुलाम बनना तय है। जिसका अंत भयावह भी हो सकता है। “संचार-क्रांति के समानांतर साहित्य को इक्कीसवीं सदी में मजबूती से टिकाएं रखने और उसकी विकृतियों के विरुद्ध सार्थक आवाज बनाने के लिए आवश्यक है कि उसे व्यापक जन से जोड़ने की पहल की जाय। वैसे संचार-क्रान्ति और संचार के साधनों के द्वारा निरन्तर विरोधी स्थितियां निर्मित करने के बावजूद साहित्य बचा रहेगा। क्योंकि जब तक मनुष्य है, साहित्य की जगह कोई नहीं ले सकता।”[8] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य अपने वर्तमान समय और समाज का जीवंत दस्तावेज है जो हमें समाज की मुकम्मल तस्वीर दिखाने के साथ हमारी मानवीय विकृतियों का विरेचन कर हमें स्वस्थ समाज की निर्मिति की तरफ प्रेरित भी करता है। “सूचना-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी बदलाव अर्थात दृश्य-श्रव्य संचार माध्यमों में डिजिटल टेलीविजन, कंप्यूटर नेटवर्क, फैक्स, मोबाइल के कारण वैश्विक संचार दुनिया भर में सूचना, सन्देशों और संकेतों का प्रचार-प्रसार काफी आसान हो चुका है। ऐसे में राष्ट्र-पराजय किसी व्यक्ति की सांस्कृतिक दिशा तय करने वाला मात्र निर्धारण तत्व नहीं रह जाता। बल्कि सूचना-तंत्र ने व्यापार, पूँजी की गतिशीलता को तीव्र बनाया है जिससे ‘विश्व अर्थ व्यवस्था’ से ‘भूमण्डलीकृत अर्थ व्यवस्था’ का ऐतिहासिक परिवर्तन सम्भव हो पाया है। इसी कारण ‘आल्विन टाफलर’ ने सूचना-प्रौद्योगिकी को तीसरी तरंग (थर्ड वेव) कहा है।”[9]

सूचना तरंगों का आवागमन पृथ्वी मार्ग से न होकर आकाशीय मार्ग से होता है। “वर्तमान दुनिया में, जहाँ अधिकतर लोग अभाव की जिंदगी जी रहे हैं, इन्टरनेट से उन्हें थोड़े से धनाढ्य लोगों के लिए उपलब्ध हो सकने वाली उपभोग की वस्तुओं की लुभावनी तस्वीर पेश कर हताशा, मनोरोग और

आत्महत्या का शिकार बनाया जा रहा है। एक विषमता पूर्ण समाज में इन्टरनेट संसार की विसंगतियों को गहरा बनाकर दुष्परिणाम ही पैदा करेगा। पारंपरिक मूल्यों के साथ ही इन्टरनेट से उपलब्ध विशाल ज्ञान के भण्डार को जोड़कर कुछ शुभ परिणाम निकल सकते हैं। मितव्ययिता के आदर्श को लेकर चलने वाले पारंपरिक समाजों के आधारभूत मूल्यों के साथ इन्टरनेट की स्वाभाविक संगति है। अगर हम नवीनता के उन्माद में बह न जाएँ तो भविष्य के समाज में इन्टरनेट और बैलगाड़ी अपने क्षेत्र में साथ-साथ सक्षमता के प्रतीक बन कर चल सकते हैं।”[10]

21 वीं सदी के दौर में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से विकास की गति तीव्र हुई है साथ ही साथ समाज के लोगों के मध्य देश-विदेश की जानकारी पहुँच पाने की वजह से जागरूकता का संचार हुआ है। समाज के लोगों के बीच अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति तथा स्वयं के अधिकारों के प्रति मध्य वर्गीय समाज के बीच अज्ञानता कम हुई है क्योंकि टेक्नोलॉजी के माध्यम से देश-विदेश में घटित होने वाली घटनाओं और ज्ञान को आसानी से सभी तक उपलब्ध हो पा रहा है। प्राचीन काल से लेकर अभी तक जो भी ज्ञान का भण्डार सीमित वर्ग समूहों के बीच मौजूद था या दूसरे शब्दों में कहे तो 20वीं सदी तक हमें किसी भी जानकारी को प्राप्त करने के लिए किसी पुस्तकालयों या विद्वत जनसंपर्क करने की जरूरत होती रही है। अपनी सोच या बात को किसी तक पहुंचा पाने में चिठ्ठी डाक आदि के माध्यम से जो समय लगता रहा है, सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से हम घर बैठे देश-विदेश में हो रहे कार्यक्रम या जानकारी को तुरंत प्राप्त कर सकते हैं इतना ही नहीं आँखों देखा हाल जानने या देखने के लिए भी श्रव्य-दृश्य तकनीक के माध्यम से हम सहजता से जुड़ सकते हैं।

सूचना-प्रौद्योगिकी की ही देन है कि तीव्रगति से आकाशीय मार्ग से गमन करते वाली तरंग रूपी सूचनाएं सूचना के एक-स्थान से दूसरे स्थान या एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति से पहुँचने मात्र तक सीमित न होकर व्यापार, बाजार, संचार और विज्ञापन का माध्यम बनती जा रही हैं। जिसके माध्यम से देश-विदेश से बिना काम और जरुरत की सूचनाएं समान रूप से प्राप्त हो रही है। एक स्वस्थ समाज के लोगों की इच्छाएँ बढती जा रही हैं जिसकी वजह से सहज समाज में अराजकता जैसा माहौल बना रहता है। इतना

ही नहीं सूचना-क्रान्ति के माध्यम से पूरा समाज बाजार में तब्दील होता जा रहा है। समाज के लोग बाजारीकृत संस्कृति के आकर्षण में गुमराह हो अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। जिसको रोक पाना या एक सीमा के बाद सूचनाओं के आवागमन पर रोक लगा पाना अभी पूरी तरह सम्भव नहीं हो पाया है। अब हम सूचना प्रौद्योगिकी के यंत्रों के माध्यम से समाज और समाज के लोगों और उसकी संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से विश्लेषित करेंगे।

4.1-पारम्परिक मानवीय मूल्यों का विघटन और नये मूल्यों का प्रवेश

21वीं सदी में समाज के बने बनाए पारम्परिक मूल्य टूट रहे हैं। उसके स्थान पर नये मूल्य और आधुनिक विचारधारा ले रही है। सहज और वास्तविक समाज की निर्मिति के सारे पैमाने बदलाव की दिशा में गतिमान हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना अर्थात् रहन- सहन, भेष-भूषा, खान-पान विचारधारा के स्तर पर और सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से सहज और प्राकृतिक दुनिया आभासी दुनिया की ओर अग्रसर हो रही है। मानव समाज के व्यवहार और उनकी मानसिकता के स्तर पर भी बदलाव हुआ है। आज का मनुष्य संवेदनशीलता से सवेदनशून्यता की तरफ दिन प्रतिदिन तीव्रगति से बढ़ रहा है। वर्तमान बाजारीकृत समाज में वह उपभोक्ता की भांति सहजता से अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी और ‘मैं’ की शैली में विकसित होता हुआ समाज में बहुत ज्यादा ऊँचाईयों को प्राप्त करने के बावजूद संतुष्ट नहीं हो पा रहा है जिसकी वजह से सारी सुख-सुविधाओं के होने के बावजूद आज का मनुष्य सहज जीवनयापन नहीं कर पा रहा है। समय के साथ पारम्परिक मूल्यों में हो रहे बदलाव और सुधार एक स्वस्थ समाज का निर्माण करता है लेकिन जब इंसान या कोई समाज अपनी जड़ों से कटकर सफलता प्राप्त करने की लालसा रखता है तो वह अपने पारम्परिक मूल्यों का विघटन करके वास्तविकता से कोसों दूर आभासी दुनिया में बिना किसी लक्ष्य के भ्रमण करने लगता है।

इक्कीसवीं सदी में मध्यवर्गीय समाज आधुनिकता और परम्परा के द्वंद्व में अपने वास्तविक और सहज मूल्यों का निर्धारण करने में असमर्थ है वह न पुराने मूल्यों को छोड़ पा रहा है और न ही नये मूल्यों को पूरी तरह स्वीकार कर पा रहा है। अखिलेश के उपन्यास 'निर्वासन' में 'विस्थापन' की समस्या को उजागर करने की कोशिश की गई है लेकिन "यह महज भौगोलिक स्तर पर नहीं है, यह बहुस्तरीय और बहु आयामी है। दरअसल विस्थापन एक ऐसी शाश्वत समस्या है जो निरंतर घटित होती रहती है और मनुष्य के पर्यावरण में यह आदि से अनन्त तक फैली हुई है। एक काल को विस्थापित कर दूसरा काल दाखिल होता है, एक पीढ़ी को दाखिल कर दूसरी पीढ़ी दाखिल होती है, एक स्मृति या अवधारणा को मिटाती हुई दूसरी स्मृति काबिज होती है। कई बार कई प्रसंगों में विस्थापन इतना बे आवाज और अमूर्त होता है कि उसकी भनक तक नहीं लगती। पर चीजे विस्थापित होती रहती हैं और हम वक्त की रफ़्तार में उसकी अनुगूजों को पकड़ नहीं पाते। उससे अनुकूलित होते हैं। जो अनुकूलित नहीं हो वे अन्य तरीके से विस्थापित हो जाते हैं। विस्थापन कई स्तरों पर घटित होता रहा है, समाज के स्तर पर, पारिवारिक स्तर पर, यथार्थ के स्तर पर, अनुभव के स्तर पर, भावनाओं के स्तर पर इसके लिए सबसे सटीक शब्द 'निर्वासन' है जिसे अखिलेश ने उपन्यास के शीर्षक के तौर पर चुना है। भौगोलिक विस्थापन को हर कोई समझ सकता है। वह अति प्रचलित और अति चर्चित है। मगर जीवन स्थितियों और सामाजिक स्थितियों और भावनात्मक स्थितियों के स्तर पर जो निर्वासन बे वजह जारी है उससे पीड़ित प्रताड़ित होते हुए भी हम न उस पर बहुत बात करते हैं और न उसे ठीक से समझ पाते हैं।[11]

मानवीय मूल्यों और मानवीय सम्वेदना का विस्थापन वर्तमान 21वीं सदी की सबसे बड़ी त्रासदी है जिसे हम बहुत कम महसूस कर पाते हैं। आज हम सफलता के शिखर पर पहुँच रहे हैं लेकिन कहीं न कहीं हम अपनी अत्याधिक महत्त्वाकांक्षा के कारण दिन-प्रतिदिन अपनी मानवीय संवेदना से कटते जा रहे हैं जिसे हम अभी समझ नहीं पा रहे हैं। आलोचक राजकुमार ने अखिलेश के इस उपन्यास को संभाव्य चेतना का उपन्यास माना है पर यह शाश्वत चेतना का उपन्यास है। यह उन सच्चाइयों से टकराने

की कोशिश है, जो ओझल तो है पर आक्रांत पूरी सृष्टि को करता है। इस उपन्यास में भविष्य की आहटें भी हैं और अतीत की स्मृतियाँ भी हैं और वर्तमान की जद्दोजहद की ध्वनियाँ भी हैं।

इस उपन्यास में अपने देश, अपने समाज, अपने परिवार और अपने यथार्थ से निर्वासित हुए लोग अपने मूल की तरफ, अपने अतीत की तरफ अत्यंत करुणा व बेचारगी पूर्वक बार-बार मुड़कर देखतें हैं और उसके प्रति पर्याप्त मोह और ममता से आप्त हैं मगर वह अतीत और मूल वक्त के प्रवाह में स्वयं ही इतना जर्जर और जटिल हो चुका है कि उसे पाना उससे जुड़ना भी अंतत: एक निर्वासन का ही चुनाव है। वक्त की आंधी ने चीजों को इतना झकझोर दिया है कि वे अपनी जगह से हिल गई हैं। धकेल दी गई है और धूसरित हो चुकी है। क्या बिडम्बना है कि एक समय जो विस्थापन मजबूरी और यातना का सबब था वहीँ विस्थापन बदले हुए वक्त में स्वप्न बन गया है। निर्वासित चीजें नष्ट नहीं होती हैं बस वह रोशनी से बाहर चली जाती हैं। प्रचलन से हट जाती हैं। उन्हें फिर से कोई चाहे तो संजो भी सकता है। “वे गायब नहीं हुई हैं, वे अपनी जगह से धकेल दी गई हैं। मैं समझ रहा हूँ तुम्हारी बात ये देशी आम ये देशी बरतन ढिबरी, लालटेन ये सिकहर ये सील-लोढ़ा ये सब इसी भारत देश में हैं पर अपनी-अपनी जगह से धक्का दे दिए गए हैं ये सब अँधेरे में गिर गए हैं जो तुम लोगों को दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।”[12] वैश्वीकृत रोशनी की चकमक में आधुनिक समाज धूमिल पड़ता जा रहा है जिसकी वजह से हमारे समाज और संस्कृति के प्रतीकचिन्ह अस्पष्ट नज़र आने लगे हैं। साथ ही साथ नये प्रतीकों की गति तीव्र होने के कारण बहुत तेजी से बदलाव की तरफ बढ़ रही हैं। जिसका भान युवा वर्ग को नहीं हो पा रहा है और न ही वो पारम्परिक सांस्कृतिक धरोहर की पहचान करना ही चाहते हैं।

“दरअसल यह उपन्यास महज निर्वासन के बारें में ही नहीं है। बल्कि निर्वासन के बहाने उन्नीसवीं सदी के उतरार्द्ध से लेकर इक्कीसवीं सदी से पहले दशक तक सामाजिक पारिवारिक यथार्थ और मूल्यों में जो बदलाव घटित हुआ है, जो उत्तर-आधुनिकता है उसको भी पकड़ने की कोशिश है किस तरह समय के साथ मनुष्य का काईयापन, संवेदनहीनता बढती गई, पुनरुत्थानवादी कोशिशे मजबूत होती गई हैं इन सब चीजों की बेहतर पड़ताल इस उपन्यास के माध्यम से हुई है।”[13]

उपन्यास ‘निर्वासन’का आरम्भ अखिलेश सूर्यकांत नामक व्यक्ति से होती है। वह ‘उत्तर प्रदेश’ के पर्यटन विभाग में कर्मचारी है। यहाँ पर एक महत्त्वाकांक्षी परियोजना शुरू होने वाली है। विभाग के अधिकारी सम्पूर्णानन्द ‘वृहस्पति’ से वह सहमत नहीं होता है। इसके परिणामस्वरूप उसकी नौकरी छूट जाती है। वह परेशान है। उसका मित्र पत्रकार बहुगुणा उसकी मदद करता है। बहुगुणा से सूरीनाम के रईस रामअजोर पांडे सम्पर्क करते हैं। जो आजकल अमेरिका में रह रहे हैं। वह बहुगुणा से विदेश में एक बार मिल चुके होते हैं जिससे वह जब भी भारत आते हैं बहुगुणा से संपर्क करते हैं। पांडे को अपने परिवार का पता ठिकाना मालूम करना है। उनके बाबा का परिवार सुल्तानपुर के गोसाईंगंज में होना चाहिए। बहुगुणा यह काम अपने दोस्त सूर्यकांत को दिलवाता है। परिवार का पता ठिकाना मालूम करना और उन पर किताब लिखने की भी योजना होती है। सूर्यकान्त पांडे के परिवार का पता लगाने गोसाईंगंज जाता है जहाँ बहुत दिन से अपने परिवार से दूर रह रहे स्वयं के भी निर्वासन का बोध उसे होता है। पांडे के परिवार के बारे में पता लगवाने में उसके चाचा उसकी मदद करते हैं जो एक बार पहले भी उसकी मदद किए थे, जब वह पत्नी गौरी से शादी करके वापस अपने घर आया था और पिता ने स्वीकार न करके उसे घर से बाहर कर दिया था। सूर्यकान्त के चाचा उसके चाचा कम दोस्त ज्यादा थे। दोनों का आपसी सम्बन्ध बहुत सहज था। उपन्यास पढने के दौरान इस बात का पता चल जाता है कि पांडे का परिवार ‘जगदम्बा प्रजापति’ हैं और वह पांडे नहीं ‘कुम्हार’जाति से सम्बंधित हैं। सारी जानकारी इकट्ठा करने के बाद सूर्यकान्त वापस आकर पांडे को सब कुछ बताता है। लेकिन रामअजोर पांडे के सामने स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती है। यहाँ पर पुन: बहुगुणा और वृहस्पति मिलते हैं। और अनिश्चता में ही उपन्यास ख़त्म हो जाता है। उपन्यास का नायक सूर्यकांत मानसिक अवसाद में आ जाता है और यहीं पर उपन्यास समाप्त हो जाता है। उपन्यास में मूल कथा के साथ-साथ उप कथाएँ भी चलती हैं सभी के मूल में ‘भगेलू कुम्हार’ ही होता है। वह गोसाईंगंज से सूरीनाम जाने तक और राम अजोर पांडे के अमेरिका से भारत आने तक, पुराने भारत की खोज में नए भारत के बनने बिगड़ने की दास्तान कहता है।

उपन्यास पुरातन भारतीय समाज के पुरातन से आधुनिक में रूपांतरण की दर्द भरी कथाएँ सुनाता है। स्त्री पात्र के रूप में सूर्यकान्त की माँ और दादी का चित्रण लेखक ने बहुत ही संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है। सूर्यकांत की माँ जो अपने पति के अत्याचारों को सहती है। जीवन भर उसके आदर्शों का पालन करती है। लेकिन जब सूर्यकांत को घर से निकालने का निर्णय वह स्वयं लेते हैं और माँ अपने आपको असहाय पाती है तो वह भी सचेत हो मुखर होती है। इस प्रकार वह पितृसत्ता का विरोध करती हुई दिखायी देती हैं। सूर्यकान्त के पिता रोते हुए कहते हैं कि उनकी पत्नी कहती हैं कि 'तुमने मेरी जिंदगी बर्बाद कर दी। कोई सहारा नहीं वरना तुम्हारे जैसे जालिम के साथ एक पल न रहती।' मुझे नरक में जाने का, मेरे शरीर में कीड़े पड़ने का श्राप देती है। मुझको इंसान नहीं हैवान बताती है। यहाँ पर व्यक्ति मन के अंदर आ रहे बदलाव को रेखांकित किया गया है।

सूरीनाम और बाबा की कहानी बताते हैं-"सन 1895 में एक्ट आया था कि गिरमिटिया सूरीनाम में बसना चाहें तो यहाँ हमेशा के लिए बस सकते हैं। बसने का फैसला करने वालों को खेत भी दिए जा रहे थे। इस कानून के तहत बाबा को खेत पाकर जो आनंद और उत्साह हुआ था, वह दुर्लभ था। यह एक असंभव स्वप्न का साकार होना था। बाबा इस देश के वासी हो गये थे और अपने खेत के मालिक।"[14] आदमी कितना भी विकास कर ले, प्रगति पथ पर पहुँच जाय उसके मन की बेचैनी और कुछ रूढ़िवादी सोच उसका हमेशा पीछा करती रहती है। जैसा कि पाण्डेय का अपने खून पानी की संतान की चाह रखना, जिसकी पूर्ति न हो पाने पर वह अपने दादा के पूर्वजों (पत्नी) की खोज में भारत आ पहुंचा है। "देश इक्कीसवीं सदी की ओर ले जाया जा रहा था और संसार भूमण्डलीकरण की तरफ। दुनिया एक गाँव बनने के लिए फुदक रही थी। इसी घनचक्कर में हमारे बड़े-बड़े शहरों को रेलों के मार्फत परस्पर सुबह शाम के लिए जोड़ा जा रहा था। ट्रेन राजधानी से राजधानी को, बड़े नगर को बड़े नगर से वाबस्ता कर रही थीं।"[15] वैश्वीकृत दौर में देश का भौतिक विकास दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। लेकिन कहीं न कहीं देश और समाज के लोगों का वास्तविक विकास अर्थात मानवीय संवेदनाएँ शून्य होती जा रही हैं। जिसकी तरफ ध्यान नहीं दिया जा रहा है। एक प्रसंग आता है- "सूर्यकांत ने सुबह के आसमान को

देखा सूरज का लाल गोला था वहाँ। लेकिन चिड़ियाँ के चहचहाने का कलरव न था। न आसमान में एक साथ कई कतारें में चिड़ियों की उड़ान। ख्याल आया सब चिड़ियाँ कहाँ गुम हो गयीं? उसने लखनऊ के अपने घर का तसव्वुर किया और सोचा अब छत पर गौरैया दाना चुगने नहीं आतीं। मुंडेरों पर कौवे आवाज नहीं देते। कोयलें वृक्षों की डालों पर कुंकती नहीं और कबूतर रोशनदानों में फड़फड़ा कर गूटरंगू नहीं करते या गूटरंगू करके फड़फड़ाने नहीं लगते। कहाँ गये ये पक्षी?[16] 21वीं सदी में आज प्रकृति की वास्तविक दुनिया समाप्त करने वालों मनुष्यों की विकास की रफ़्तार सभी मानवीय संवेदना को रौद रही है। प्रकृति प्रदत्त जलमंडल स्थलमंडल और वायु मंडल से निर्मित जैवमंडल पूरा तंत्र प्रभावित हो रहा है है। इतना ही नहीं जैवमंडल की वास्तविक दुनिया नज़रअंदाज कर टेक्नॉलोजी आदि से निर्मित आभासी पटल को ज्यादा महत्त्व दिया जा रहा है। समाज में होने वाले बदलाव और टेक्नोलॉजी के प्रभाव की वजह से घर में बूढ़े-माँ-बाप की महत्ता कम होती जा रही है। जैसे “टी.बी. ने दादी के मांग को, उनकी लोकप्रियता को जीर्ण कर दिया था। इसलिए वह उससे ईर्ष्या करती थीं। वह टीवी देखना छोड़कर आँगन में बिछी चारपायी पर इस प्रत्याशा में लेट जाती थीं कि बच्चे उनको घेर लेंगे और उनसे कहानी सुनाने की मांग करेंगे। मगर वह लेटे-लेटे सो जाती थीं फिर भी बच्चे उनके पास नहीं आते थे।”[17] यहाँ पर जिस प्रकार पुरानी वस्तुएं अपनी महत्ता खोती जा रही हैं और नई वस्तुओ का स्वागत हो रहा है। ठीक उसी प्रकार मानवीय संवेदना और नये पुरानें रिश्तों की भी यही दशा हो रही है। “मैं इन्हें साइंस और तरक्की से जुड़ने के लिए इसलिए उत्साहित करता था कि मेरी निगाह में यही इंसानियत का भविष्य था। यही आदमी के लिए जरूरी था लेकिन ये तो खुदगर्ज और जंगली हो गये। जज्बातों से शून्य हो गये। इन्हें बस पैसा, और अधिक पैसा चाहिए। खुश रहने के लिए नहीं, दूसरों को पीछे छोड़ देने के लिए या दूसरों की भेड़चाल में शामिल हो जाने के लिए पैसा चाहिए। मुझे महसूस हुआ कि इन्हें पैसे के आक्रमण से बचाना होगा। और वही मैंने किया। मैं मानता हूँ कि दौलत की दासता आदमी को आदमी नहीं रहने देती। देखो मैंने सादगी का रास्ता चुना और बहुत खुश हूँ।”[18] सादगी जीवन को सहज और संवेदनशील बनाती है। “सही बात कही, स्पीड आज की सभ्यता की बुनियाद है। कंप्यूटर, वाहन, जिन्दगी, तरक्की

सभी में खूब स्पीड हो। अच्छी बात है, क्योंकि गति में सौन्दर्य भी है। तेज दौड़ते हिरन सबको सुन्दर लगते हैं लेकिन क्या शिकारी के खौफ से भागते हुए हिरन भी वैसे ही सुंदर होते हैं। असलियत यह है कि ये जो लोग भाग रहे हैं-स्पीड में, शिकारी के डर से दौड़ लगा रहे हैं। ये और बात है कि इन्हें ये बात पता नहीं है। ये जानते नहीं कि इनका आखेट हो रहा है। मेरे प्रिय भतीजे! आसमान में उड़ता पक्षी और बन्दूक से निकली हत्यारी गोली की रफ्तारों को एक ही तराजू में नहीं तौल सकते तुम।”[19]

मैं उपन्यासकार से एक सवाल करना चाहूंगा कि ठीक है समस्या की वजह ज्यादा प्रजनन है और ज्यादा प्रजनन की वजह हमारा असभ्य और अशिक्षित होना है। तो कामरेड खता हमारी है कि इस समाज व्यवस्था की जिसने हमें असभ्य अशिक्षित बनाया और बना रहने दिया। यह कलंक हमारे माथे पर नहीं लिखा जाना चाहिए कि भूख लगने की बीमारी के कारण हम परेशान हैं बल्कि इस मुल्क की उन पूंजीवादी, सामन्तवादी सत्ताओं के माथे को दाग देना चाहिए की यदि यह बीमारी है तो उसका तुम्हारे पास इलाज क्यों नहीं है?”[20] उपन्यास के सभी पात्र कहीं न कहीं से अपने आपको निर्वासित पाते हैं कुछ देश से बाहर होने का दंश झेल रहे हैं है और कोई देश के अंदर रहकर भी एक-दूसरे तरह के अपनों से अलग होने का दंश भुगत रहा है, जिसकी भरपायी शायद ही पुन: उसी रूप में हो पाएगी। सूर्यकांत की पत्नी भी निर्वासितों जैसी महसूस कर रही होती है। उसके भी खानदान का कोई पता नहीं होता है। वह अपनी नानी के पूर्वजों की जानकारी के लिए जिज्ञासु होती है कि उन्हें सूखे, अकाल के दौरान कहाँ से बेचा गया था। वह उस समय समाज और स्थिति को समझना चाहती है लेकिन सम्भव नहीं हो पाता है यही वजह थी कि जिसकी वजह से वह सूर्यकान्त के पिता के द्वारा खुद को अपमानित महसूस करती है। सूर्यकांत भी अपनों के पास जाकर कर भी अपना जैसा महसूस नहीं कर पाता है वह अपने आपको अजनबी ही महसूस करता है। हाँ दादी के प्रति उसकी सहानुभूति होती है। सुल्तानपुर से लौटने समय घर के सदस्यों द्वारा दिया गया सारा समान उसे बोझ लगता है जिसे ट्रेन से बाहर फेककर वह अपने आपको सहज और हल्का महसूस करता है।

जहाँ तक अपनों से अलग होने का प्रश्न है तो अपनों से अलग होने की परम्परा आज की नहीं सादियों पुरानी है। पहले भगेलू जैसे लोग गिरमिटिया मजदूर बनकर देश की गरीबी और गुलामी की बदहाली की वजह से अपनी ही गरीबी को दूर करने के लिए गिरमिटिया मजदूर बनने के लिए विवश हो अपने घर-परिवार से अलग होते रहे हैं। लेकिन 21वीं सदी के लोगों कि जो भी वजह या मजबूरी हो लेकिन यह सही है कि वह मजबूरी कम और शौक एवं पैसों की लालच ज्यादा है।

21वीं सदी का समाज काफी हद तक बदल गया है उसका आकर्षण परिवार या समाज, संस्कृति न होकर पैसा होता जा रहा है। भारतीय समाज और समाज के लोग अमेरिकी संस्कृति और पूंजीवादी विचारधारा अर्थात पूंजीवादी व्यवस्था को आत्मसात करते हुए स्वयं को विकसित बता रहे हैं। जबकि सच्चाई यह है कि वह अपनी जड़ों से दिन-प्रतिदिन कटते जा रहे हैं। उसकी स्थिति दिन-प्रतिदिन कटी पतंग जैसी होती जा रही है जिन्हें स्वतंत्र हो विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचने का जोश इतना ज्यादा है कि वह अपनी डोर से अलग हो शून्य में लुप्त होते जा रहे हैं। पूँजी के सिवाय उनका कोई अस्तित्व शेष नहीं रहा है और पूँजी कभी इंसान को स्थिरता प्रदान नहीं कर सकती है क्योंकि वह स्वभाव से स्वयं गतिशील है स्थिरता उसकी फितरत में नहीं है।

भाई शिब्बू और जीजा तेंदुलकर का स्वार्थी व्यवहार वर्तमान समाज की देन कहीं जा सकती है। क्योंकि दोनों में विदेश जाने और बहुत सारा पैसा कमाने की लालसा है। बदलने समय और समाज में विदेश गमन प्रबल इच्छा कहीं न कहीं पूँजीवादी संस्कृति की ही देन कहीं जा सकती है। इतना ही नहीं अपनी बातों को साबित करने और अपने आपको अच्छा दिखने के लिए तर्क भी गढ़ते हैं। बाजारीकृत संस्कृति का समर्थन करते हुए कहते हैं-“अगर अपने को बेचने का शऊर हो तो आज की दुनिया में क्या नहीं बेचा जा सकता है! बस आपको चाहिए एक चांस और खुली भरीपूरी दुनिया। इंडिया में मजबूर हूँ क्योंकि यहाँ लोग अपनी विरासत पर नहीं पश्चिम के पीछे पागल हैं। इसलिए यहाँ आयुर्वेद की कोई औकात नहीं है। लेकिन जिस धरती पर आधुनिक साइंस और विचार अपनी बुलंदी को पार कर चुका है वहां इसका सुंदर सुदृढ़ भविष्य है।”[21] वैश्वीकरण के आ जाने से स्थानीय व्यवसाय ठप पड़ते जा रहे

हैं, जिससे भारतीय परिवेश में 'योग और आयुर्वेद' की महत्ता कम हो रही है। लेकिन विदेशी परिवेश में वास्तविक जिन्दगी को जीने के लिए लोग शांति और ख़ुशी की तलाश में भारतीय आध्यात्म और साधना की तरफ भाग रहे हैं। जिसका जिक्र 'काशी का अस्सी' उपन्यास में काशीनाथ जी भी करते हैं। 'सूर्यकान्त गौरी' के पूर्वजों की पहचान या कहे खोजने की बात पर कहता है कि "वंश का ज्ञान और उसकी प्राचीनता हमें क्या देती है? धर्म और जाति की लम्बी, अगम्य कट्टरता। इस मायने से सोचने पर पाओगी कि तुम कितनी सामाजिक बुराईयों से बची हुई हो-एक ऐसी इंसान हो जो सही अर्थ में आधुनिक है। तुम जातिधर्म कर्मकाण्ड रूढ़ियों अंधविश्वासों से मुक्त अनोखी शै हो जिसे मैं बेइंतिहा प्यार करता हूँ।"[22]

वैश्वीकरण के दौर में आर्थिक बदलाव के साथ-साथ हमारे समाज का सामाजिक-और सांस्कृतिक ढाचे के काफी बदलाव हुआ है। मानवीय रिश्तों और उसकी अहमियत का एक उदाहारण-"अपनों की चाह तभी सबसे अधिक होती है जब जिन्दगी में कोई अपना नहीं रह जाता। इस बिंदु पर मैं तुमसे स्पष्ट रूप से कहना चाहूँगा कि पांडे ने तुमको जो जिम्मेदारी दी है वह जितना अपने बाबा के लिए है उससे ज्यादा खुद के लिए है।"[23] कुल मिलाकर यह है कि वह तो अपनी मंजिल पा लेगा समस्या तो हमारी और हम जैसे लोगों की है जो अपने ही देश और लोगों के बीच रहकर भी निर्वासित महसूस कर रहे हैं। मैं पांडे के बाबा जैसा विस्थापित नहीं हुई और मैं वहीँ हूँ जहाँ पैदा हुआ था। लेकिन अपनों से बिछड़ने की तखलीफ़ कम नहीं सह रहा हूँ। हर विस्थापन में वापसी होती है। लौटने की ख़ुशी होती है लेकिन यह मैं जो विस्थापन जी रहा हूँ यहाँ वापसी नहीं हो सकती। यहाँ लौटना नहीं है बल्कि लगातार दूर होते जाना है। "कितना डरावना है न, वक्त आगे बढ़ रहा है और तुम अपना हाल किसी को सुना न सको।"[24]

बहुत ही बेचैनी भरी है पैसों की दुनिया, जो इंसान को हैवान बना रही है। इंसान की मानवीय संवेदना और इंसानी फितरत छीनते जा रही है। पूँजी की चंचलता और उनमें स्थिरता की कमी मनुष्य में अधैर्य पैदा कर रही है। बेचैनी और स्वार्थी प्रवृत्ति वर्तमान मनुष्य का स्वाभाव होता जा रहा है। आज का मनुष्य आभासी दुनिया की चकमक में केवल अपने स्वार्थ के लिए वास्तविक दुनिया को हानि पहुँचा रहा है।

जिसे वह अपनी नजर में विकास की संज्ञा दिए जा रहा है। "कैसा अभिशाप है कि नये और पुराने दोनों से ही उसका मन उचाट हो गया है और दोनों ही बरदाश्त से बाहर लगने लगे हैं। एक ओर उम्रदराज सम्पूर्णानन्द और पांडे हैं तो दूसरी ओर युवा शिब्बू, तेंदुलकर। जैसे ये अपने अपने वक्त की जोड़ियाँ उस पर घात लगाये हो। और दोनों से उसका बचाव यहीं था कि उनके प्रति उसके अंदर से भावनाओं का लोप हो गया था। उसे लगा कि उसके भीतर बेगानापन और ऊब का ऐसा अपरम्पार घना क्षेत्रफल बन गया जो इस विशाल कोठी तो छोडिए इस भूमण्डलीकृत संसार से भी कमतर कतई नहीं है।"[25]

4.2-सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव: स्त्री और विज्ञापन

सोशल मीडिया ने स्त्री की बनी बनायी छवि को तोड़ा है। वैश्वीकरण के दौर में स्त्री स्वतन्त्र हुई हैं, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि सन 1980-90 के दशक में होने वाले स्त्री-आंदोलन जिसकी वजह से स्त्री-विमर्श जोर-शोर से होने लगा। वह स्त्री जिसकी छवि समाज में सामाजिक दृष्टि से किसी की माँ, बहन, बेटी और पत्नी तक सीमित थी वह अब इन सभी रिश्तों में स्वतंत्र हो स्वयं की छवि को निखारने का काम कर रही हैं। ऐसा नहीं है कि आज की स्त्री अपने जीवन में अपनी माँ, बहन, बेटी और पत्नी की भूमिका नहीं निभाना चाहती है बल्कि वह रिश्तों से नहीं, रिश्तों में स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रही है। वैश्वीकृत समाज ने स्त्री के लिए जो माहौल मुहैया कराया है, उसमें स्त्री स्वयं सचेत हो अपनी स्वतन्त्र पहचान के लिए सफल भूमिका निभा रही हैं।

भारतीय समाज दिन-प्रतिदिन बाजार के बढ़ते प्रभाव के कारण उपभोक्तावादी समाज में परिवर्तित होता जा रहा है। जिसकी वजह से सामाजिक मूल्य भी बदलते जा रहे हैं। सामाजिक मूल्यों का निर्धारण बाजार और बाजारीकृत संस्कृति के आधार पर माँग और आपूर्ति के अनुसार लगातार परिवर्तनशील है। ऐसे वैश्वीकृत समाज में जहाँ तक स्त्री और बाजार की दुनिया में विज्ञापन की महत्ता का प्रश्न है स्त्री इस वैश्वीकृत उपभोक्तावादी समाज में मात्र वस्तु बनती जा रही है। शारीरिक और मानसिक दोनों नजरिये से

वह सहज रूप से स्वयं बाजारवादी व्यवस्था का शिकार हो रही है। बाजारवादी व्यवस्था द्वारा यह लाख कोशिश की जा रही है कि वह अपने आपको एक ऐसी देह समझे जो समाज के लोगों को बहुत अच्छे से लुभाने का काम कर सकती है। यह वैश्वीकृत समाज की व्यवस्था बनती जा रही है। बाजारीकृत समाज की मांग है कि वह अपने लिए अपने शारीरिक सौन्दर्य से ऐसी छवि निर्मित करे कि लोग खीचें चले आये। स्त्री देह को वैश्वीकरण या उदारीकरण ने बाजार का प्रमुख अंग बना दिया है।

मोबाइल जैसे सूचना-प्रौद्योगिकी यंत्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन में हो रहे बदलाव को विषय बनाया गया। टेक्नोलॉजी के माध्यम से समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को बहुत बारीकी से समझा जा सकता है। 'प्रदीप सौरभ' का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' पिछले दो तीन दशकों की घटनात्मक प्रस्तुति है। लेखक के द्वारा दी गई सूचना में इसे उपन्यास कहा गया है। लेकिन उसमें न कोई सीधी कथावस्तु है और न ही कोई कथानक। मुन्नी और पत्रकार आनन्द भारती की बिलकुल अलग-अलग जिन्दगी को रचनाकार ने एक-दूसरे से जोड़ रखा है। पूरा उपन्यास विवरणात्मक शैली में लिखा गया है और घटना प्रधान भी है। उपन्यास का आरम्भ मुन्नी के जीवन से होता है। बिहार से मजदूरी करने के वास्ते दिल्ली आती है और यहीं यमुना पार साहिबाबाद में रहने लगती है। जैसा की उपन्यास के शीर्षक से स्पष्ट है की मुन्नी मोबाइल अर्थात मुन्नी की मोबाइल से हैं। सूचना क्रांति कहे या 21वीं सदी का बहुत बड़ा सूचनाओं का आदान-प्रदान कर्ता देश-दुनिया की सैर कराने वाला यंत्र है-'मोबाइल'। भौतिक जगत का सच होने के साथ-साथ आज हम सभी के जीवन का अभिन्न अंग के समान बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसके बिना वर्तमान दुनिया सक्रिय होने के बावजूद निष्क्रिय महसूस करती है। अब मोबाइल जैसे यंत्रो के अभाव में मानव जीवन की गतिविधियां सहज नहीं रह गई हैं।

उपन्यास के कथावाचक 'आनन्द भारती' के घरेलू नौकरानी के रूप में बिहार के किसी गाँव से आयी एक साधारण स्त्री बिन्दु से मुन्नी बनने तक का सफर तय करती हुई, धीरे-धीरे 'मुन्नी मोबाइल' संबोधन से पूरे कालोनी में प्रसिद्ध हो जाती है। 'मोबाइल' की गति के समान मुन्नी के कदम हमेशा सक्रिय और गतिमान रहते हैं। मोबाइल के माध्यम से चारों तरफ की सूचनाओं को आत्मसात करती है। आधुनिक

स्त्री घरेलू नौकरानी के रूप में काम करने वाली मुन्नी मोबाइल अपनी चालाकी और सक्रियता के माध्यम से दिन-प्रतिदिन तरक्की करने लगती है। इतना ही नहीं वह अपने बच्चों को पढ़ाती भी है। वह देश-दुनिया के बारे में बहुत ही जागरूक और चेतनशील स्त्री के रूप में उपन्यास में नायिका की भूमिका अदा करती है। उपन्यास में एक गाँव की साधारण सी स्त्री का पूरा का पूरा चरित्र मोबाइल टेक्नॉलोजी के माध्यम से विकसित होता है। धीरे-धीरे वह गरीबी से निकलकर सहज और सुचारू जीवनयापन करने लगती है। लेकिन आदमी की इच्छाओं और ख्वाशियों पर किसका वश है? जीवन में आने वाली किसी भी चीज की अत्यधिक लालसा इंसान को गुमराह कर देती है। यहाँ पर स्कूल के दौरान पढ़ा हुआ कबीर का यह दोहा मुझे याद आ रहा है-

"अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।

अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।- कबीर

लेकिन मुन्नी की बढ़ती लालसा, अत्याधिक पैसे कमाने की चाह तथा उसके द्वारा यह स्वीकार कर लेना कि बिना पढ़े-लिखे वह इतना कमा सकती है, तो पढने-लिखने की क्या जरुरत है। 21वीं सदी में पूँजीवादी व्यवस्था और समाज के लोगों की यही लालसा शराब के नशे की भांति इंसान को दिन-प्रतिदिन बर्बाद कर रही है। कुछ समय तक समाज में मिलने वाले पैसे की बदौलत इज्जत और सोहरत अच्छी तो लगती है लेकिन उसका परिणाम सच में बहुत भयावह होता है। जैसा की मुन्नी के साथ भी हुआ। मुन्नी की अत्यधिक पैसा कमाने की लालसा ने उसे 'सेक्स रैकट' जैसे समाज के घिनौने कारनामों तक पहुंचा कर उसकी जीवन लीला ही समाप्त कर दी। दूसरे शब्दों में कहे तो सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग भयावह नहीं है अगर इसका प्रयोग भयावह परिणाम देता है तो वह है सूचना प्रौद्योगिकी का गलत प्रयोग । स्वार्थ की भावना से किया गया कोई भी कार्य सुखद फल की प्राप्ति नहीं करा सकता है। पल भर के लिए सुकून जरुर दे सकता है, लेकिन जीवन भर के लिए कभी कल्याणकारी नहीं हो सकता । मुन्नी के जीवन का अन्त 'सूचना प्रौद्योगिकी' का प्रयोग स्वार्थ सिद्धि की प्राप्ति का ही परिमाण रहा।

वह अपनी मेहनत से अपनी और अपने परिवार की सारी इच्छाओं की पूर्ति करती है, जिसकी पूर्ति अभी तक नहीं कर पा रही थी। लेकिन ज्यों ही इच्छाओं की पूर्ति होने लगी वह देश-दुनिया का भ्रमण करती हुई ख्वाशियों का पुलिंदा बांधना शुरू कर देती है। जिसकी पूर्ति के उद्देश्य से वह धीरे-धीरे गलत कामों की ओर भी बढ़ने लगी। यह सब संभव हो पाया था अभी तक मोबाइल और कम्यूटर के माध्यम से। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता की सुविधाभोगी वस्तुएं आरामदायक जरुर होती हैं लेकिन उसके प्रयोग की भी एक सीमा निर्धारित करनी ही पड़ती है नहीं तो हम अनजान में ही लूटते रहते हैं और हमें लगता है कि हम तरक्की कर रहे हैं। और इन दोनों के नुक्सान का पता तब चलता है जब हम पूरी तरफ से फंस चुके होते हैं। मुन्नी का भी अंत इसी तरह से होता है। लेकिन इस विकसित और सफल भविष्य की राह पर पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्त्व करने वाली उसकी छवि चितकबरी ‘कॉल गर्ल’ के रूप में प्रसिद्ध हो जाती है।

उपन्यासकार पत्रकार आनन्द भारती की भूमिका में प्रस्तुत होता है। वह आज के समय की पूरी रिपोर्टिंग करते हैं। गुजरात के दंगे, चुनाव, सरकार का गठन, सब कुछ करके फिर दिल्ली, कभी इलाहबाद कभी कलकत्ता और लन्दन। सबका आँखों देखा वर्णन। फिर अलग-अलग धन्धों की रिपोर्टिंग। पत्रकारों की अपनी समस्याएँ और उनका बिखरा हुआ जीवन, घरों में काम करने वाली बाईयों की समस्या, फिर बस वालों के धन्धों के लफड़े और अंत में इस सभी सामजिक बुराइयों उत्पातों से गुजरते हुए ‘कॉल-गर्ल’ के धंधों की बारीकी से रिपोर्टिंग और उसी में मुन्नी की हत्या। और उपन्यास का अंत हो जाता है।

उपन्यास का अंत वैश्वीकरण की दुनिया का सच हैं और मुन्नी मोबाइल की बेटी एक स्थान तक सीमित न रहकर उसने अपना बिजनेश विश्व स्तर पर फैला लिया है तथा वह अब विश्व स्तर पर प्रसिद्ध हो चुकी है। आजकल ‘कॉल गर्ल वर्ल्ड’ की नई अवतार ‘मुन्नी मोबाइल’ की ‘बेटी रेखा चितकबरी’ है। जो अपना सारा व्यापार ‘लेपटाप और मोबाइल’ से करती है। मुन्नी का जीवन एक छोटे स्थान विशेष से मोबाइल से शुरू होकर विश्व स्तर पर पहुँचता है। भले ही उसी टेक्नॉलोजी यंत्रों ने उसकी सहजता ख़त्म कर उसकी जान ले ली हो। “मुन्नी मोबाइल समकालीन सच्चाइयों के बदहवास चेहरों की शिनाख्त

करता उपन्यास है। धर्म, राजनीति, बाजार और मीडिया आदि के द्वारा सामाजिक विकास की प्रक्रिया किस तरह प्रेरित व प्रभावित हो रही है, इसका चित्रण प्रदीप सौरभ ने अपनी मुहावरेदार रवां-दवाँ भाषा के माध्यम से किया है। 'प्रदीप सौरभ' के पास नये यथार्थ के प्रमाणिक और विरले अनुभव हैं। इनका कथानक उपयोग करते हुए उन्होंने यह अत्यंत दिलचस्प उपन्यास लिखा है। 'मुन्नी मोबाइल' का चरित्र इतना प्रभावी है कि स्मृति में ठहर जाता है।"[25] उपन्यास की सार्थकता और जीवंतता के बारे में सुधीश पचौरी जी का कथन सटीक है "मुन्नी मोबाइल एकदम नई काट का, एक दुर्लभ प्रयोग है। प्रचारित जादुई तमाशों से अलग, जमीनी धडकता हुआ आसपास का और फिर भी इतना नवीन कि लगे आप इसे उतना नहीं जानते थे। इसमें डायरी, रिपोर्टिंग, कहानी की विधाएँ 'मिक्स' होकर ऐसे वृतांत का रूप ले लेती हैं जिसमें समकालीन उपद्रवित, अति उलझे हुए उस यथार्थ का चित्रण है, इसे पढकर आप गोर्की के तलछितये जीवन के जीवंत वर्णनों और ब्रेख्त द्वारा जर्मनी में हिटलर के आगाज को लेकर लिखे 'द रेसिस्तिबिल राइज ऑफ़ आर्तुरो उई जैसे विख्यात नाटक के प्रसंगों को याद किए बिना नहीं रह सकते। पत्रकारिता और कहानी कला को मिक्स करके अमरीका में जो कथा-प्रयोग टॉम वुल्फ ने किये हैं प्रदीप ने यहाँ किए हैं।"[26] धर्म, राजनीति, बाजार, मीडिया, शिक्षा, बेरोजगारी से सम्बंधित सभी पहलुओं द्वारा समाज में हो रहे बदलाव को रेखांकित किया गया है।

"उत्तर आधुनिक पूँजीवादी परिवेश में बाजारवाद की चकाचौध ने स्त्री को आजादी दी है, आकर्षक दिखने की नई सोच दी है, साथ ही जीवन को सकारात्मक बनाने की शक्ति भी प्रदान की है। आज उदारीकरण की प्रणाली में स्त्री की उपभोक्ता के रूप में मौजूद हैं। 21वीं सदी की स्त्री अपनी छवि पहचान चुकी है। बाजारवादी व्यवस्था ने समाज में आज अपनी पैठ बना ली है। उच्च से निम्न प्रत्येक स्तर पर बाजार ने जन-जीवन को प्रभावित किया है।"[27]

वैश्विक दौर में सामाजिक गतिविधियों में होने वाले परिवर्तन इंसान को और इंसानी फितरत को प्रभावित करता आया है। मानवीय मूल्यों के प्रति लोगों की धारणा काफी हद तक कमजोर हुई है। और स्वार्थ की प्रवृत्ति का विकास मानव द्वारा स्वयं को सर्वशक्तिमान मानने से है। मुन्नी द्वारा समाज में हो रहे बदलाव

और लोगों की बदलती मानसिकता तथा आवश्यकताओं के प्रति सचेत रहती है। वह "जटिल अपराध जगत की कार्य प्रणालियों को भी समझती है। जहाँ मसाज पार्लर, ब्यूटी पार्लर, काल सेन्टर आदि की आड़ में जिस्मफरोशी एवं दूसरे गैर-कानूनी धंधों का लम्बा-चौड़ा तंत्र फैला है, जिसके संरक्षण और गिरफ्त में एक से बढ़कर एक नामचीन लोग हैं। यह एक आयरनी कुछ ज्यादा ही तल्ख और त्रासदी होकर उभरती है जब 'मुन्नी मोबाइल' की पढ़ी-लिखी और सबसे तेज तर्रार बेटी रेखा आखिर में 'रेखा चितकबरी' बनकर अपनी कम्प्यूटर कुशलता का इस्तेमाल उसी 'सेक्स रैकट' का अपेक्षाकृत अधिक फुलप्रूफ तरीके से जारी रखने और उसका विस्तार करने में इस्तेमाल करती है।"[28] वैश्वीकरण के इस दौर में समाज के लोग सूचना प्रौद्योगिकी की तरंगों की तरह बहुत तेजी से उपभोगपरस्त और ग्लैमर तथा विलासिता की चाह में पैसों के पीछे भाग रहे हैं। अत्यधिक की प्राप्ति की चाह में वह अच्छे-बुरे या कहे नैतिकता–अनैतिकता के बारे में सोचने के लिए उनके पास समय ही नहीं है और इस भागमभाग दुनिया में वह किसी से पीछे न छूट जाय इसलिए भी बिना सोचे समझे भेड़चाल से भाग रहे हैं, जिसके अंत के बारे में कल्पना नहीं की जा सकती है।

मनोज सिंह का उपन्यास 'हॉस्टल के पन्नों से' हॉस्टल में रहकर पढ़ाई करने वाले युवाओं और छात्राओं की कहानी है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता की हॉस्टल का जीवन और बिना हॉस्टल में रहे पढ़ाई का अंदाज दोनों में जमींन आसमान का अंतर होता है। हॉस्टल में रहकर पढ़ाई करने और फिर अपनी योग्यता तथा किस्मत के हिसाब से नौकरी पाने के बाद शादी और परिवार के साथ का जीवन आदि सब कुछ कुल मिलकर दोनों की विचारधारा और जीवनस्तर में जमींन आसमान का अंतर हो जाता है। इन सभी चीजों के बीच सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है हॉस्टल का वह जीवन, दोस्ती और दोस्तों की अहमियत जिससे नि:स्वार्थ भाव से सभी जुड़ जाते हैं और भविष्य में हमेशा उनकी जगह फिक्स हो जाती है सभी के दिलों और दिमाग में जिसमें किसी प्रकार की कोई ग्लानि या शिकवा-शिकायत नहीं होती है। बढ़ती जिन्दगी के साथ रौनक बरसाने वाली यादें हमेशा फिर से जवा कर देने वाली होती हैं जिससे हम सभी फिर से एक बार हॉस्टल का जीवन उसी रूप में जी लेते हैं। वर्तमान

समाज का बदलाव हम इस रूप में देख सकते हैं-“नौकरी की तलाश और एक घर का इंतजाम कर लेने के चक्कर में शादी की तारीखें खिसकने लगीं और पश्चिम की तरह नौकरी लगने के बाद ही परिवार बसाने की प्रथा प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के दौरान अधिकांश छात्र-छात्राएँ अविवाहित पाए जाने लगे। पूर्व ने पश्चिम से बाकी सब तो सीख लिया लेकिन व्यक्तिगत संबधों में जो स्वतंत्रता वहाँ है, यहाँ नहीं आ पाई। समाज ने अपने शिकंजे को बनाए रखा। परिणामस्वरूप भारतीय युवावर्ग सेक्स के क्षेत्र में भूखा रह गया। यहाँ के हॉस्टल जीवन को ध्यान से देखें तो यौन विकृति कई रूपों में मिलेगी।”[29] वैश्वीकरण के दौर में भारतीय समाज की सोच में काफी परिवर्तन आया है। जिन लडकियों को घर से बाहर निकलने की आजादी नहीं थी उनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई है। ज्यादा से ज्यादा संख्या में बाहर निकलकर पढने, नौकरी में बराबर से प्रतिस्पर्द्धा के कारण वे और अधिक स्वतंत्र हुई हैं। लडके-लड़कियों के आपस में मिलने की संभावनाएँ बढ़ी हैं। जिससे उनके बीच समानता का भाव भी विकसित हो सका है। इस दौरान हॉस्टल के जीवन में भी एक बहुत बढ़ा अंतर महसूस किया जा सकता है। सामाजिक स्तर पर भी काफी बदलाव भी हुए हैं। आज की नई पीढ़ी समाज की ‘स्टीरियों टाइप’ की छवि से बाहर निकलकर देश के विकास में आगे बढ़ रही है। वर्तमान दुनिया में “आज का युवा वर्ग ‘स्पीड’ की चपेट में है, दिनप्रतिदिन अकेला होता जा रहा है। मुश्किल इस बात की है कि स्वयं के जीवन के साथ-साथ समाज के जीवन की रूपरेखा भी इस युवा वर्ग के द्वारा ही खींची जाती है।”[30] उपन्यास में कुछ दोस्तों के व्यक्तिगत जीवन के साथ हॉस्टल जीवन और आपसी चहलकदमी शरारत के साथ नि:स्वार्थ निश्छल दोस्ती को रेखांकित किया गया है। जो एक साथ इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद अलग-अलग तरह की नौकरी में चले जाते हैं। याहू, इंटरनेट के माध्यम से देश-विदेश में रहते हुए भी लोग एक-दूसरे से जुड़े होते हैं और आपसी बातचीत और अपनी हॉस्टल जीवन का जिक्र आदि एक-दूसरे की खींचतान के साथ आभासी दुनिया में अपनी वही वर्षों पुरानी जिंदगी के। एक बार पुन: जी लेने का सुख प्राप्त कर लेते हैं। इनके बच्चे भी अपने पेरेंस्ट्स की बाते सुनकर काफी जिज्ञासु भाव से हॉस्टल और हॉस्टल जीवन में घटित सभी घटनाओं को क्रमश: याद करते हैं और

रोमांचित होते हैं। हॉस्टल फ्रेंड ‘प्रणव की बेटी काव्यश्री’ जो अपने परिवार के साथ अमेरिका में रहती है लेकिन भारत आकर रिसर्च करना चाहती है भारतीय राजनीति पर। प्रणव की बेटी काव्यश्री को विदेशी परिवेश में रहने के बावजूद भारतीय राजनीति के सामाजिक परिदृश्य पर शोध-कार्य करने को वरीयता देती है।

तीसरी दुनिया के देशों में भारतीय राजनीति को समझने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक परिदृश्य को समझने वगैर हम भारतीय राजनीति को मुकम्मल रूप में नहीं समझ सकते हैं। इस प्रकार भारतीय राजनीति पर शोधकार्य करना अपने आपमें बहुत ही साहसी प्रवृत्ति का कार्य होगा। युवा पीढ़ी की प्रतिनिधित्व करने वाली ‘काव्यश्री’ वास्तव में आज के समाज की आधुनिक विचारों की साहसी लड़की की प्रतीक है।

उपन्यास के नायक के रूप में दुष्यन्त राठौर उपन्यास में शुरू से लेकर अंत तक एक युवा समझदार व ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ भाव से लड़कियों की इज्जत करने वाला व्यक्ति है। वह कभी भी अपने सामने हो रहे गलत चीज को नहीं देख पाता है। जिससे हमेशा दिल का साफ़ होने की वजह से वह शक्तिशाली गुंडागर्दी करने वालों का निशाना बना रहता है यही बात उसके हॉस्टल जीवन से लेकर उसके निजी जीवन में पूरे जीवन चलता रहा। ईमानदारी और गलत का विरोध करने की वजह से उसे अंत में अपनी जिन्दगी से भी जद्दोजहद करनी पड़ती है। खलनायक पात्र के रूप में विष्णुदत्त कालेज के दिनों में भ्रष्ट नहीं होता है लेकिन उसके बाद अपने निजी जीवन में पैसे कमाने के लालच में वह गलत रास्ते पर चलने लगता है क्यों? पैसे से बनी दुनिया ने हमारा चैन सुकून ही नहीं छीना है। हमारे हर तरह के एहसासों को छीनकर हमें बेचैन कर दिया है। विष्णुदत्त जो कि उसी कालेज का उन्हीं दोस्तों के बीच का ही दोस्त होता है वह अपने निजी जीवन में आने के बाद इस कदर बदल जाएगा किसी को उम्मीद भी नहीं होती है। सभी को जब दुष्यंत के बारे में पता चलता है की उसे रेप केश में अन्दर कर दिया गया है किसी को विश्वास ही नहीं होता है। उसे लगता है कि वह अपने दोस्त और हॉस्टल जीवन में कभी किसी लड़की की तरफ देखा तक नहीं जबकि उसे मौका भी मिलता है ऐसे में वह अपने बेटी की दोस्त्त और बेटी की

उम्र की लडकी कामना का रेप कैसे कर सकता है? पक्का कोई शाजिश हुई है। उसके साथ पढने वाले सभी दोस्तों में प्रणव दा अमेरिकी नागरिक बन चुके थे। मिलिंद ब्यूरोक्रेट में चला गया था। अरुण अपनी कोचिंग चलाता है और दुष्यंत कॉलेज का ही ठेका लेकर काम करवाता रहता है। वह और विष्णुदत्त ठेकेगारी में भी जीवनयापन कर रहा होता है। विष्णुदत्त बहुत ही राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय होने के कारण उसकी पहुंच दूर-दूर तक होती है। जिसका उसे फायदा भी मिलता रहता है। अपने ही क्लासमेट लल्लन सिंह का मजा लेते हुए कहते हैं कि वह आजकल प्रोफेसर बन गया है। जिस पर सभी चौककर हंसने लगते हैं। जब आरपी सिंह पूछते हैं कि वह लल्लन सिंह कॉलेज कैसे पहुंचा इस बात पर व्यंग्य करते हुए कोई दूसरा चिढकर बोलता है छोडो न यार पहले यह पता लगाओं कि “कैम्ब्रिज और हावर्ड में जो पढ़ने जाते हैं वो सब क्या बड़े पढ़ाकू होते हैं...? हमारे सारे नेताओं के बच्चे वहीं से पढ़े हैं... समझ लो, लल्लन भी देश का भावी मंत्री है या किसी मंत्री का बेटा...।”[31]

‘सोशल नेट्वर्किंग’ के माध्यम से सभी दोस्त एक दूसरे से जुड़े होते हैं। और वही एक माध्यम होता है जिसके माध्यम से वह सभी एक साथ ग्रुप में बात कर अपना पुराना हॉस्टल जीवन के अनुभव को सांझा करके पुन: उस जीवन को जी लेते हैं। उन्हीं दोस्तों के बीच एक लडकी अपना परिचय देते हुए बताती है कि मैं सेरिल, इलेक्ट्रॉनिक्स में डिग्री ली हूँ, भारतीय विदेश सेवा ज्वाइन की, कई देशों में काम करने के बाद अब विदेश मंत्रालय में हूँ। मेरे पति प्रयाग शुक्ला आईएएस हैं, प्रधानमन्त्री कार्यालय में...।”[32] सेरिल अपने बारे में बताने के बजाय सभी से पूछती है कि अपने कॉलेज में ‘रियल हीरो’ कौन था? सभी अपना अपना दिमाग लगाते हैं और सोचते हैं कि वह कौन हो सकता है पर किसी का ध्यान वहा नहीं पहुँच पाता है जिसकी तरफ सेरिल इशारा करती है। और जब सेरिल कहती है कि वह साहसी है, चरित्रवान है, दूसरों को बिना वजह तंग नहीं करता था...अपने फायदे के लिए किसी का नुकसान नहीं करता, झूठ नहीं बोलता...बुरे के साथ बुरा, अच्छे के साथ अच्छा और सबसे अच्छी बात की लड़कियों की बिना शर्त इज्जत करता...उसका नाम है दुष्यन्त सिंह राठौर!”[33] सभी अवाक हो जाते हैं।

प्रणव दा की बेटी काव्याश्री 'भारतीय समाज और राजनीति का अध्ययन' करना चाहती है। विदेशी परिवेश के बारे में आपसी बहस का एक दृश्य-"दोस्तों, अंत में एक बात और...विदेश के बारे में दोस्तों ने कई सवाल किए... जिज्ञासा स्वाभाविक है...बस, मैं तो इतना कहना चाहती हूँ कि वहाँ पैसा कमाया, इज्जत भी कमाई, सुख-सुविधा सब मिली... लेकिन पता नहीं क्यूँ, एक खालीपन हमेशा रहा है...ऐसा लगता है कि मैं बिना जड़ का हवा में लटक रहा हूँ...कोई मकसद नहीं...कह सकते हैं जीवन तो है मगर आत्मा नहीं...अब आप लोगों के बीच आकर जो प्यार, अपनापन मिल रहा है वो वहाँ कहाँ... हमारे इस 'याहू ग्रुप' के कारण हमारे बीच में मेलजोल बढ़ा है। हम लोग पूरे विश्व में फैले होने के बावजूद एक बार फिर एक-दूसरे से जुड़ने लगे हैं। हमारे बीच की न केवल दूरियाँ खत्म हुई हैं इसने समय को भी पीछे धकेला है। तभी तो हमारा बीता हुआ कल, यूँ लगता है मानो अभी-अभी तो यहीं था।"[34] सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सोशल नेट्वर्किंग के द्वारा यह सम्भव हो पाया है कि आज स्थान और समय की दूरिया कम होती जा रही है। देश-विशेष के अलग-अलग कोनों में रह रहे लोगों का अपने घर परिवार दोस्तों से जुड़े रहने का कोई माध्यम है तो वह है सोशल नेट्वर्किंग की दुनिया जिसके द्वारा रिश्तों के अपनेपन का एहसास दूर होने पर भी बना रह सकेगा।

जीविका और कव्याश्री आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हुई अपनी भूमिका दर्ज कराती हैं जिसे देखकर प्रणव और उनके दोस्त अरुण सभी गर्व महसूस करते हैं। प्रणव दा दुष्यंत की बेटी जीविका की सक्रियता को देखकर उसकी सूझबूझ और समझदारी को देखकर बहुत ख़ुशी का अनुभव करते हैं।

विश्वविद्यालय स्तर पर होने वाले छात्र संघ चुनाव युवा पीढ़ी में अपने देश, समाज और राजनीति को समझने की तथा उसके हित में कार्य करने की तरफ प्रेरित करता है। विश्वविद्यालय में होने वाले चुनाव और अन्य गतिविधियों का बहुत ही सहजता से उद्घाटित किया गया है। उपन्यास के नायक दुष्यन्त को चुनाव में प्रतिनिधि के रूप में दोस्तों द्वारा पेश किया जाता है। कालेज चुनाव विशेष...दुष्यन्त राठौर को सुनने के लिए कृपया रात दस बजे मैस के हॉल में इक्कठा हों..' और आश्चर्य से अधिक, उम्मीद से ज्यादा, तकरीबन सारे लडके इकट्ठा हो गये थे। दो-चार पांच को छोड़ दीजिए। उनके भी खून में विरोधी

गुट का रस अब तक नहीं पहुंचा था। फिर उनके पास कोई मुद्दा भी तो नहीं था।"[35] लेकिन होता यह है कि कालेज के प्रशासन भी अपनी भूमिका अदा करते हुए "कॉलेज प्रशासन ने चुनाव पर दो साल के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया था। और जो नाम दुष्यन्त ने कमाया था वह अविनाश ने अगले बैच में गंवा दिया था। दुष्यन्त का आज भी नाम तो था मगर उसका शराब-सिगरेट और पढ़ाई में ध्यान न देना उसके व्यक्तित्व को घूमिल कर रहा था।...धीरे-धीरे वह कब एक बदमाश बिगड़ा छात्र माना जाने लगा, पता ही नहीं चला।"[36] दुष्यंत का जीवन बचपन से ही जब से वह होश सभालता है तब से ही पारिवारिक कलह और उनकी गलत गतिविधियों का असर बदलते समय और समाज की देन कहीं जा सकती है। "बचपन से लेकर जवानी तक, कुछ बोल नहीं पाया। माँ-बाप को अपनी लड़ाई से फुर्सत नहीं तो बच्चा किससे कहता। बचपन की उत्सुक्ताएं, अज्ञानता, लडकपन, वो जिद्द, जो बच्चे किया करते हैं, किससे करता?...चुप रहने की आदत पड़ गई।"[37] दुष्यन्त के ऊपर उसके पारिवारिक माँ-पिता की गतिविधियों का बहुत गहरा असर पड़ा था वह किसी से इस बारे में कुछ नहीं बोल पाता लेकिन अपनी माँ के बदचलनी की वजह से काफी परेशान रहता था जिसे उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था और पिता का प्यार दुष्यंत के प्रति तो था लेकिन वह भी सहज भावनात्मक न होकर जिम्मेदारी स्वरूप था जिसकी वजह से दुष्यंत उनसे भी जुड़कर अपने आपको जुडा नहीं महसूस कर पाता था। और हॉस्टल के दिनों में ही उसके घर से चिट्ठी आनी बंद हो गई थी। अगर एक दो साल में आ भी जाती तो वह उसे पढता ही नहीं था ऐसे ही टेबल पर पड़ी रहती थी। वह अपने ही माँ से काफी आहत हो चुका था जिसकी वजह से वह चाहकर भी अपने व्यवहार को बदल नहीं पा रहा था। माँ-पिता के आपसी रिश्तों की खटास बच्चों पर बहुत असर करती है। आधुनिक महानगरीय समाज में ऐसी घटना का होना आम बात होती जा रही है। समाज में पारिवारिक जिम्मेदारियों को न समझने वालों की संख्या बढती जा रही है। अपने स्वार्थसिद्ध के लिए दुष्यन्त की माँ पिता जैसे परिवारों की कमी नहीं रह गई है। जिसका असर युवा पीढ़ी की परवरिश और संस्कार पर पड़ना स्वाभाविक है। जिससे वे अनाथ न होते हुए भी आधुनिक बीमारियों जैसे अकेलेपन, घुटन, बेचैनी और अनाथ बच्चों की जिंदगी को महसूस करता है। जबकि उसका परिवार

और रिश्ते सलामत होते हैं। जिसका प्रभाव हम दुष्यन्त के जीवन और झल्लाहट भरी जिंदगी को देखकर महसूस कर सकते हैं।

एक उदाहरण है-

“कब से पीना शुरू कर दिया है?

याद नहीं।

पिता के सामने?

आप भी तो बेटे के सामने पी रहे हैं। और फिर क्या फर्क पड़ता है...मैं छुपकर तो नहीं कर रहा।” दोनों बातों का सार ढूढने की एक बाप ने कोशिश की थी। और फिर मौन।

“तुम्हारी माँ और मैंने अलग-अलग होने का फैसला कर लिया है।”

एक मिनट के लिए दुष्यन्त के ह्रदय ने स्पंदन करना बंद कर दिया था। मगर फिर आवाज आई थी...कमजोर नहीं पड़ना दुष्यन्त...और वह चुप रहा था। बीयर का एक लम्बा घूँट जरुर गुटक गया था।”[38] “मैं कमजोर आदमी की औलाद बनने से अच्छा अनाथ जीना पसंद करता। गलत बात तो गलत है। और उसे तुरन्त स्वीकार करना चाहिए। फिर चाहे उसकी कोई भी कीमत चुकानी पड़े। नहीं तो छोटी बीमारी बड़ी बन जाती है और फिर बड़े होने पर बड़ी कीमत चुकानी पडती है...।”[39] कभी-कभी इंसान न चाहते हुए भी गलत रास्ते पर चलने लगता है। जब तक उसे पता चलता है वह बहुत आगे निकल चुका होता है। ऐसे में सही रास्ते का भान हो जाने पर वह चाहकर भी कभी-कभी वापस नहीं हो पाता है। जिसकी तरफ उपन्यास में इशारा किया गया है।

पिता के जाने के बाद दुष्यन्त “हाँ, मैंने उन्हें जाते हुए दूर से देखा था।” कहकर वह बालकनी की ओर जाने लगा तो मैंने उसके कंधे पर पीछे से हाथ रखा था। वह मुड़ा था। मैंने उसकी आँखों में झाँका और फिर बिना कुछ पूछे गले लगा लिया। बस...फिर वह लिपटकर जो रोया याद करके स्वयं को कोसता

रहा।...”[40] एक बच्चे के अंतर्मन की व्यथा उसे चैन से जीने नहीं देती है । परिवार द्वारा गलत कार्यों का असर बच्चे को तोड़ देता है। समाज में वह अपने आपको तुच्छ सा महसूस करने लगता है। दुष्यन्त द्वारा दोस्त के पूछने पर रोना दोस्त के सहचर का एहसास करवाता है। क्योंकि अरस्तु के विरेचन सिद्धांत के अनुसार मूल्यांकन करें तो रोने से मनुष्य के मनोविकारों का विरेचन होता है जिससे इंसानी दिमाग पवित्र और सार्थक सही दिशा की ओर स्वत: अग्रसर हो जाता है। लेकिन अपने ही माँ पिता के द्वारा मिली चोट जब चरित्र से जुड़ जाती है तो वह पूरे जीवन पीछा नहीं छोडती है। वर्तमान समाज कही न कहीं ऐसी गतिविधियों की चपेट में सहजता से आ रहा है। क्योंकि उन्हें ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ के तीव्र युग में पूरा का पूरा माहौल मुहैया कराया जा रहा है। और स्त्री हो या पुरुष दोनों ही स्वतन्त्र हो टाइमपास और क्षणिक सुख के लिए ज्यादा व्याकुल है, स्थिरता तो उनमें बहुत कम रह गई है। बहुत जल्द वह बहुत कुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं और इतना ही नहीं बहुत जल्द वह उससे ऊब भी जा रहे हैं । वह वस्तु हो या इंसानी रिश्ते। पूँजीवाद ने पूरी दुनिया के मन-मस्तिष्क को बहुत ज्यादा प्रभावित कर रहा है। समाज के लोगों का एक मात्र लक्ष्य ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाना होता जा रहा है वह चाहे जैसे भी कमाया जाय। इसी संदर्भ में एक प्रसंग आता है -“राजनीति हो या गुंडागर्दी, पैसे तो चाहिए। पैसा और पॉवर साथ-साथ चलते हैं। वर्चस्व की लड़ाई में दोनों चाहिए। युगों-युगों से और शायद आगे भी। पैसे से पॉवर आती है तो पॉवर से पैसा अपने आप आ जाता है। और हॉस्टल की राजनीति में पैसे का स्रोत मैस था। दोस्तों-यारों के साथ मुफ्त में खाना-पीना ऐश-मौज सब यहाँ चलता।”[41] उपन्यास की पात्र ‘कामना’ जिसकी हत्या कर दी जाती है। ‘कामना’ और दुष्यन्त की बेटी जीविका के चरित्र में अन्तर परिवार और उनके संस्कार के बीच होने वाले अंतर को दर्शाया है। बदलते समय और समाज में लोगों के पास अपने बच्चों के लिए भी बहुत कम समय मिल पाया है। जिस वजह से भी बच्चे अकेलापन महसूस करते हुए गलत आदतों की शिकार होती जाती हैं। कामना को उसके परिवार से मिले संस्कारों का ही नतीजा है कि वह हॉस्टल में आकर कई तरह की गलत आदतों और गलत लोगों की संगति में आकर स्वतंत्र जीवनयापन के नाम पर अपना पूरा जीवन बर्बाद कर लेती है और अंत में स्वयं की आदतों की वजह से

मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। वैश्विक समाज में कामना जैसे लोगों की नई पीढ़ी बहुत तेजी से बढती जा रही है। जिन्हें बाजारीकृत संस्कति की चकमक में अपने वास्तविकता का कोई भान नहीं है और न ही वह कोई भान करना ही चाहती हैं। आभासी पटल की सोशल नेट्वर्किंग साईट के माध्यम से नई और नाज़ुक कोपले गुमराह हो रही हैं। “असल में कामना बड़े घर की बिगड़ी औलाद है...नयी पीढ़ी माता-पिता की गलती पर आक्रोश नहीं करती अब उन्हीं की तरह मस्ती करती है। उसकी माँ की दूसरी और नये बाप की तीसरी शादी है। पहले शुरू-शुरू में जब वो कॉलेज आयी तो जीविका के साथ घूमती थी, धीरे-धीरे उसके खाने-पीने की आदत देख जीविका दूर हो गयी। वैसे भी जीविका बहुत समझदार लडकी है तुम मिलोगे तो देख लेना...हर साल की टॉपर और बास्केलबाल की नेशनल प्लेयर...।”[42] किसी भी परिवार में मुखिया की भूमिका- “परिवार का मुखिया एक सेना प्रमुख ही तो होता है, वह टूट गया तो युद्ध समाप्त। और कुछ ही पल में जीविका ने मुझे प्यार से ऐसे स्थान पर बिठा दिया था जहाँ से मैं चाहकर भी नहीं उतर सकता था।”[43]

किसी भी व्यक्ति के द्वारा डायरी लिखने की आदत उसे बहुत गहराई से महसूस करने और बहुत ही संवेदनशील होने का परिचय देती है। इतना ही नहीं डायरी लिखना बहुत ही साहस का परिचय देना है। वर्तमान समय में ब्लॉग लिखना डायरी लेखन के अंतर्गत आता है। दुष्यंत की डायरी से-“मेरी माँ एक चरित्रहीन औरत थी। जो कुछ उस रात, घर अचानक पहुंचकर मैंने देखा, मैं बर्दाश्त कैसे कर पाया? पता नहीं। एक पल को लगा या तो उस आदमी का गला घोंट दूँ या फिर खुद का। फिर लगा कि जब उस माँ को किसी की परवाह नहीं तो मुझे उनकी क्यूँ होने लगी...।”[44]

वैश्विक जगत में मीडिया और सूचना क्रांति का बहुत बोलबाला है जिसकी तरफ झुक जाय वह क्षण भर में राजा और क्षण भर में राजा को रंक बना दे बिना किसी वजह और तर्क को जाने। यहाँ पर दोस्त की सहायता के लिए उसी मीडिया की सहायता ली जाती है। एक दोस्त की दूसरे दोस्त से मीडिया के योगदान पर बातचीत-“देख, यह लड़ाई हमें मिलकर लड़नी है। वो भी दिमाग से...और आजकल लड़ाई

पैसे और सम्पर्क से लड़ी जाती है मीडिया एक शस्त्र बन चुका है...पावरफुल शस्त्र...ब्रह्मास्त्र कह सकते हैं जिसके पक्ष में खड़ी हो जाए समझो बाजी उसकी।"[45]

मीडिया की भूमिका अपने नैतिक मूल्यों 21वीं सदी में थोडा कम हुई है इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है। "एक नयी सोच नयी उम्मीद के साथ आज की पीढ़ी का बदलता स्वरूप एवं समाज के विकास में इनका योगदान-"केजी सर, मेरा एक अनुरोध है। आप एक विश्वविद्यालय खोलिए। आपको इस लाइन का अनुभव भी है। असल में अच्छे कॉलेज की देश और समाज को बहुत आवश्यकता है। सच, जब एक 'इंस्टीच्यूट' ने इतना कमाल कर दिया तो फिर विश्वविद्यालय की तो बात ही कुछ और होगी। आपका नाम भी होगा और बच्चों का भला भी।"[46] जीविका का भाषण –"मेरे पिता ने समाज के हित में अपना हाथ गंवाया लेकिन इज्जत नहीं गंवाई। मैं भी अपनी जान गँवा सकती हूँ। लेकिन आप सभी का सिर शर्म से झुकने नहीं दूँगी। आज के बाद अगर मुझे कुछ होता है तो मान लेना कि मेरा भी वहीं हत्यारा है जो कामना और डिम्पी का रह चुका है। मगर तुम दोस्तों, रुकना नहीं, उलटे और तेजी से आगे बढना, परिवर्तन की इस हवा को तूफ़ान बना देना, उन सभी पेड़ों को उखाड़ फेकना जो हवा को प्रदूषित कर रहे हैं...जय हिन्द।"[47] जीविका का जोश और उसका आत्मविश्वास और उसकी समझदारी और सूझबूझ देखकर वहाँ उपस्थित दुष्यन्त के सभी दोस्त गौरान्वित महसूस करते हुए उसके अन्दर दुष्यन्त की छवि का भान कर रहे थे।आज दुष्यन्त को भी पढ़ पाना सम्भव था। अर्थात वह भी अपनी जीविका रुपी आत्मा से बहुत आशावान हो ख़ुशी का अनुभव कर रहा था।

4.3-दलित समाज के अस्तित्त्व और अस्मिता का प्रश्न

दलित समाज का उद्धार अगर किसी समय और समाज में सच में हुआ है जमीनी स्तर पर तो वह है वैश्वीकरण के दौर में। वैश्वीकरण की विचारधारा ने समाज में चली आ रही सामाजिक बुराईयों की जड़ को कमजोर करने का काम किया है। भारतीय समाज में वर्षों से चली आ रही जाति-पाति की व्यवस्था

समाज में व्याप्त ऊँच-नीच का भेदभाव आदि समाज में व्याप्त रूढ़िवादी सामाजिक बुराईयों पर तार्किक रूप से सवाल उठाने का काम वैश्वीकृत समाज में ही संभव हो पाया है। क्योंकि अभी तक समाज में व्याप्त सामाजिक विसंगतियों के प्रति अगर कोई आवाज उठा सकता था तो वह स्वयं दलित या पिछड़ा समाज स्वयं नहीं बल्कि उस समाज के शुभचिंतक और जो किसी संस्था के अनुयायी रहे हैं। लेकिन वैश्वीकरण ने समाज के हर तबके को समान रूप से मौका उपलब्ध करवाने का कार्य किया है। अब कोई भी जानकारी या सूचना किसी एक वर्ग समूह तक सीमित न होकर पूरी दुनिया में व्याप्त सभी वर्ग, जाति समूह के लिए सार्वभौम हो चुकी है।

वैश्वीकरण के माध्यम से 'विश्वग्राम' की कल्पना वास्तव में स्थानीयता के स्तर पर सभी तक पहुँच चुकी है। वर्तमान समय में कोई भी चीज किसी भी तरह का ज्ञान किसी के लिए अनोखा या रहस्य नहीं रह गया है। पूँजी और पूंजीवादी विचारधारा की नजर में वही व्यक्ति श्रेष्ठ और उच्च है जो कठिन मेहनत करके अपने आपको वैश्विक दुनिया में अपना नाम कमाने की शक्ति और जज्बा रखता हो। दलित समाज के लिए वैश्वीकरण के माध्यम से होने वाले सामाजिक बदलाव आर्थिक और राजनीतिक बदलाव जीवंत सुखद के साथ अपने अस्तित्व और सम्मानपूर्वक जीवनयापन का सुनहरा मौका है।

21वीं सदी में आज वे स्वयं अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं और इतना ही नहीं दलित समाज स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने और संघर्ष का जज्बा रखते हैं। आधुनिक दलित स्त्री की सचेत भूमिका के लिए कविता- 'दलित स्त्री' की पंक्तियाँ-

"जिंदगी वास्तव में,
दोहरा अभिशाप है दलित स्त्री की
समाज से ही नहीं अपनों से भी छली जाती हैं ये
समाज में स्त्री होने की ही नहीं
अछूत होने की भी

विदारक पीड़ा को सहती हैं ये
आक्रोश संघर्ष के साथ
जिंदगी में बस इक उम्मीद के सहारे
होगा नया सबेरा हमारे भी जीवन में।
थोंडा सा विचलित हो जाती हैं
जब अपनों से ही ठगी जाती हैं ये
फिर भी ये डरती नहीं
आत्महत्या करती नहीं
देती हैं चेतावनी
उस पितृसत्तामक व्यवस्था को
जिसकी वजह से रही
ये अपाहिज सदा के लिए।।

दलित लेखक ‘रूप नारायण सोनकर’ द्वारा लिखा गया उपन्यास ‘सूअरदान’ में प्रेमचन्द के उपन्यास ‘गोदान’ जैसी रूढ़िवादी और समाज में चली आ रही अंधविश्वास रूपी मान्यताओं पर बहुत ही सहजता से चोट किया गया है। उपन्यास का मुख्य उद्देश्य समाज में विकास के साथ समानता, मानवता और सभी को एकता का पाठ पढ़ना है जिसके माध्यम से ही एक गाँव, शहर और देश का विकास संभव हो पायेगा। सभी लोग मानव हैं, मानवता की रक्षा करना ही मनुष्य का पहला धर्म होना चाहिए। आस्था अलग-अलग ईश्वर के प्रति हो सकती है लेकिन सभी धर्मों का उद्देश्य एक ही है मानवता की रक्षा करना। वैश्वीकरण के इस दौर में उपन्यासकार अपने समाज, संस्कृति के साथ विकास तथा उसकी रक्षा की तरफ इशारा करता है।

उपन्यास रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं का खंडन करता है न कि धर्म और उसके अनुयायियों को कोई क्षति पहुँचाने का कार्य करता है। मुख्य पात्रों का किसी के प्रति कोई दुर्भावना कभी नहीं रही, न ही वह किसी षड्यंत्रकारी के प्रति ईर्ष्या भाव रखते हैं। उन्होंने हमेशा मानवता की रक्षा के लिए, गाँव के लोगों को शिक्षित बनाने, तथा देश के विकास में सहयोगी के रूप में समाजसेवी की भांति देश के विकास में अपना योगदान दिया। जबकि ज्यादातर देखने को यही मिलता है कि ज्यादा पढाई लिखाई कर लेने के बाद लोग जब एक बार गरीबी से निकलकर सुचारू और व्यवस्थित जीवन जीने लगते हैं तो ज्यादातर अपने वास्तविकता को भूलने के साथ अपने जमीर को भी भूल जाते हैं लेकिन उपन्यास के चारों युवा एक छोटे स्तर से अपने गाँव के विकास के लिए काम करने की ठानते हैं। जिसके माध्यम से वो देश के विकास में अपना योगदान करने के लिए लक्ष्य निर्धारित कर आगे बढ़ते हैं बिना किसी पूर्वाग्रह के। जबकि गाँव समाज में उच्च-जाति वालों से उन्हें कई तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। लेकिन कभी उनके मुंह पर सिकन पता नहीं चली हमेशा उन्होंने बहुत समझदारी से अपना योगदान देते हुए सभी लोगों का दिल जीत लिया। सोनकर जी द्वारा लिखा गया उपन्यास –‘सूअरदान’ आज 21वीं सदी में समाज की माँग थी।

वैश्वीकरण के दौर में अन्धाधुन्ध हो रहे विकास और शून्य पड़ती संवेदना तथा धार्मिक अन्धविश्वासी से उपजी कुरीतियों को दूरकर, समाज में लोगों के बीच समरसता और एकता का पाठ पढ़ने के साथ ‘जाति-प्रधान’ समाज में सुधार हेतु सभी को मानवता का पाठ पढ़ते हुए ‘कर्म’ के माध्यम से अपनी जिंदगी सवारने के लिए विकल्प मुहैया करवाते हैं। यह नई पीढ़ी में जागरूकता फ़ैलाने जैसा सराहनीय कदम है।

उपन्यास में कहीं भी तीखापन या पूर्वाग्रह नहीं दिखाई पड़ता है। बहुत ही सहज भाव से लेखक के पात्र अपनी बात रखते हुए नज़र आते हैं। “आदिकाल से धर्म और कर्म का युद्ध चलता रहता है। सदैव धर्म कर्म पर भारी पड़ता है। अब कर्म धर्म पर भारी पड़ रहा है। धर्म एक कपोल-कल्पित चीज होती है जबकि कर्म वास्तविक होता है। इस कपोल-कल्पित चीज पर नर-संहार हो जाते हैं। सृष्टि को मिटाने तक की

बात आ जाती है। सच्चा कर्म सृष्टि को बचाता है और बनाता भी है।"[48] उपन्यास के प्रारम्भ में ही उपन्यासकार ने बहुत ही साफगोई से स्पष्ट कर दिया है कि उसका मुख्य उद्देश्य क्या है? आदिकाल में हमारा समाज कर्म प्रधान समाज ही था। उसी के आधार पर समाज के लोगों की योग्यता के अनुसार समाज बड़ा हुआ और अपना काम सुचारू रूप से सहज और समानता के भाव से कर रहा था किसी का किसी से किसी प्रकार का धार्मिक विवाद नहीं रहा। लेकिन जब कर्म को धर्म से जोड़कर उसे धर्म और जाति की संज्ञा दे दी गई तो उसका रूप समाज में विकृत होता गया। और धीरे-धीरे यही विचारधारा मनुष्य को मनुष्य से अलग करती हुई एक-दूसरे को ही दुश्मन बना देती है। कर्म, धर्म से जुडा, धर्म जाति से और जाति सामाजिक पहचान बन समाज में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, का भेद-भाव पैदा कर उसे सामाजिक पहचान से जोड़ दिया गया और उसी का नतीजा है की समाज इतना भयावह हो गया है।

आज 21वीं सदी में विदेशी परिवेश की सभ्यता, संस्कृति को पहनाने में हम गर्व महसूस कर रहे हैं। लेकिन ज्यादातर हम आज भी उनकी बुरी चीजें अपनानाते हुए नजर आ रहे हैं। कुछ आर्थिक कर्म हैं जो सभी जाति वर्ग स्त्री-पुरुष के लिए बराबरी का बोध कराती है, ऐसी व्यवस्था अगर कट्टर जातिवादी भारतीय समाज में अपना ली जाए तो मेरे समझ से बहुत बड़ी समस्या स्वत: हल हो जाए। जैसे एक प्रसंग आता है-"धन की शक्ति वह शक्ति होती है जो सारी परेशानियों पर विजय प्राप्त कर लेती है। अमेरिका, इंग्लैण्ड और अन्य पश्चिमी देशों में वहां के मूल निवासी टाई सूट पहनकर झाड़ू लगाते हैं। लेकिन उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई आंच नहीं आती है। लेकिन भारत में किसी सवर्ण ने ओछा कार्य किया तो सामाजिक प्रतिष्ठा और धर्म उनको लहू-लुहान कर देता है।

ऐसा लगता है कि उसने उल्टी गंगा बहा दी।"[49] उपन्यास नई पीढ़ी के युवा वर्ग के सूझबूझ की कहानी कहता है। "रामचन्द त्रिवेदी, सज्जन खटिक, घसीटे चमार और सलवंत यादव विदेशों से उच्च तकनीकी शिक्षा ग्रहण कर अपने गाँव सिंहासनखेडा आए थे। रामचंद त्रिवेदी ने एम. बी.ए. सज्जन खटिक ने बी.टेक. सल्वन्त यादव ने वैतरनैरी डॉक्टर की डिग्री ली थी, घसीटे चमार ने बार-एट-ला की डिग्री ली। इन सभी दोस्तों ने उच्च तकनीकी व कानूनी शिक्षा ग्रहण की थी। इन चारों को देश-विदेश में अच्छी

नौकरियाँ मिल रही थीं, लेकिन वे लोग कहीं भी नौकरी नहीं करना चाहते थे। चारों तरफ आतंक का वातावरण फैला हुआ है। चारों तरफ शहरों में मारकाट हो जाती है। सैकड़ों की संख्या में निर्दोष लोग मारे जाते हैं। वे लोग कोई ऐसा बिजनेस चाहते थे जो अशिक्षित, शिक्षित बेरोजगारों को नौकरी दे सके। विशेषकर ग्रामीण नव-युवकों को। गाँव में एक ऐसा वातावरण बनाना चाहते थे जहाँ प्यार, समानता और भाईचारा हो। गांवों की गरीबी को वे लोग जड़ से उखाड़ फैकना चाहते थे। सदियों से समाज में चली आ रही अंध-धार्मिकता को उखाड़ फेकना चाहते थे। जातिवाद को समूल नष्ट करना चाहते थे। विश्व बंधुत्व पर यकीन करते थे।”[50] वैश्विक दौर में बाजार, व्यापार और बाजारीकृत संस्कृति ने सामाजिक मूल्यों को बदल दिया है ।

“आज के युग में कोई भी व्यापार करना अधर्म नहीं होता है। मेहनत और ईमानदारी से किया गया कार्य उस कस्तूरी को प्राप्त कराता है, जो मृग में रहती है। पुजारी दयाशंकर हजारों वर्षो पुरानी अंध-धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं को ढो रहे थे, जो स्वयं सवर्णों, विशेषकर ब्राह्मण समाज के लिए घातक साबित हो रही है। क्योंकि ब्राह्मणों की आर्थिक अवस्था इन्हीं पुराने विचारों की वजह से कमजोर हो गई है।”[51] चारों के द्वारा मिस हैरी सिल्वा के शादी के प्रस्ताव को स्वीकार करना कहीं न कहीं लिंगानुपात की कमी की ओर इशारा करता है। मिस हैरी की शर्त और बोल्डनेस कहीं न कहीं 21वीं सदी की सोच कहीं जा सकती है जिसका प्रभाव विदेशी है, जहां से आयतिक हो रही है। पुन: लेखक महाभारत कालीन पांचाली से तुलना करता हुआ कहता है कि क्या महाभारत कालीन पांचाली की भाँति विदेशी लड़की मिस हैरी सिल्वा आधुनिक चार पांडवों के साथ यह धर्म निभा पायेगी? मिस हैरी विदेशी जरुर है यह विचार भारतीय परिवेश में पश्चिमी सभ्यता की देन है जिससे हमारी संस्कृति धूमिल हो रही है यह नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह हमारे भारतीय समाज और संस्कृति की ही उपज है।

जिसकी तरफ लेखक नि:संकोच इशारा करता है। इसलिए किसी को पूरी तरह से भारतीय परम्परा पर गर्व करने और पूरी तरह से विदेशी वसूलों को नकारने के बजाय जहाँ से जो चीज ठीक लगे अपने समय समाज और परिवेश की मांग और मानवीय मूल्यों के हिसाब से उसे अपनाने की जरुरत है न कि

अधविश्वास की आड़ में विश्वासघात करना उचित है। चारों के साथ रहना मिस हैरी सिल्वा का सहज और स्वयं का निर्णय था न कि किसी और का तो इसमें अस्वीकृति जैसा सामाजिक नियमों की महत्ता का प्रश्न नहीं उठता है। सभी को अपने हिसाब से जीने का हक़ सम्विधान में वर्णित है। जिसे स्वीकारने की जरुरत है न की धर्म की आड़ में अंधविश्वास फ़ैलाने से धर्म की रक्षा हो सकती है । इसलिए किसी के धार्मिक आस्था पर कोई प्रश्न या जोर-जबर्दस्ती करना ठीक नहीं होता है।

लेखक बहुत बारीकी से विदेशी जागरूकता और भारतीय पिछड़ेपन को रेखांकित करता है। 'भारतीय युवा प्रेम-प्रसंग' को लेकर लेखक आधुनिक समय की मांग को ध्यान में रखकर जागरूकता की तरफ इशारा करता है। "विदेशों में लड़की के साथ प्रतिबन्ध नहीं होता है। लड़की का भाई उसकी पहरेदारी नहीं करता है। वहाँ पर प्यार आत्मसंतुष्टि व सेक्स की भूख मिटाने के लिए होता है। टिन एज(उम्र) में ही लड़कियां सेक्स का मजा उठा लेती हैं। फिर भी गर्भवती नहीं होती हैं। इसका कारण वहाँ जागृति है। सभी लोग शिक्षित हैं। गर्भधारण का मतलब लड़कियां समझती है। इसीलिए वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करती हैं। उन्हें सेक्स की शिक्षा दी जाती है। वहां लड़कियां पुरुष समाज से बिल्कुल नहीं डरती हैं। जूडो-कराटे की ट्रेनिंग लेती हैं। अपनी रक्षा करना स्वयं जानती हैं। बिना लड़की की मर्जी के कोई भी पुरुष उसके साथ कोई गलत हरकत नहीं कर सकता है।"[52] उपन्यास में सुनयना नाम की एक दलित स्त्री है गाँव का सत्यनारायण त्रिपाठी जिसका शोषण करता है। उसे बंधक बनाकर रखता है डर बस कोई उसका कुछ नहीं कर पाता है। जब सुनयना सत्यनारायण त्रिपाठी से आग्रह करती है की उसे जाने दें उसके माँ बाप-गरीब हैं तो उसे डाटते हुए कहता है कि मैं तुम्हें हलवा पूरी खिलाता हूँ और तुम वहाँ नमक रोटी खाती हो और यहाँ तुम्हें नहीं रहना है। जवाब में सुनयना का कथन उसके अस्तित्व की पहचान कराता है इतना ही नहीं उस त्रिपाठी के लिए वह वस्तुगत थी लेकिन उसे अपनी आबरू इज्जत ज्यादा प्यारी थी। गरीब भूखे पेट सोना स्वीकार कर सकता है लेकिन इज्जत वह कभी शौक से नहीं बेचता है। जबकि त्रिपाठी जैसे लोग अपने वीबी बच्चे के होते हुए भी अपनी इज्जत नीलाम करके अपना शौक पूरा करना शौक समझते हैं अर्थात उससे उनकी झूठी शान बढती है उनके शब्दों में।

‘‘सत्यनारायण त्रिपाठी मूंछे ऐठते हुए कहा-‘‘जो ताकतवर है वही सभी चीजों का भोग करता है। ऐसा सभी युगों में होता आया है। तुम सुन्दर हो। अति सुन्दर हो। मैं इस गाँव का राजा हूँ। हर चीज पर मेरा हक पहले है।’’[53] समाज में व्याप्त सवर्ण मानसिकता और उससे निजात की तरफ लेखक का इशारा है, गरीब और दलित वर्ग की स्त्री से छेड़छाड़ खुलेआम हो रहा है। यह आज का सच है। हमारा वर्तमान समाज आज भी इन समस्याओं से जूझ रहा है।

उपन्यास में पात्र ‘संकटा प्रसाद चिकवा’ इलाहबाद से पढाई करने के बाद प्रशासनिक अधिकारी वी.आर.एस.बनने के बाद शहर की भौतिकता वादी बेचैनी से ऊबकर वापस घर आकर खेती-बाडी में लग जाता है। वैश्वीकरण के दौर में शहर में सब कुछ है। लेकिन शांति और शुद्ध वातावरण की लगातार कमी होती जा रही है। शहर में अकेलापन और घुटन जैसी आधुनिक बीमारियाँ बढ़ती जा रही है। जिससे ऊबकर वह गाँव में रहकर समाजसुधार के कार्य को महत्त्व देने लगता है। जिसे वह अपनी नैतिक जिम्मेदारी भी समझता है। ग्राम प्रधान के रूप में गाँव ‘खेडा’ के विकास के लिए नयी सोच और नये युवापीढ़ी के नये नजरिये से गाँव के विकास के साथ शून्य पडती जा रहीं मानवीय संवेदना को भी उभारने का प्रयास करता है जिससे आपसी भाई-चारा, समानता और शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सके। धार्मिक भावनाओं की आस्था की अवहेलना न करते हुए भी मानवीय संवेदना और उसके अस्तित्व को धूमिल नहीं होने देता है। वह कहता है ‘‘इस गाँव का मुझे ग्राम प्रधान चुनकर आप लोगों ने मुझ पर जो निष्ठा और विश्वास व्यक्त किया है। मैं आप सब से वायदा करता हूँ कि मैं आपके विश्वास को तोड़ूंगा नहीं चाहे मैं खुद टूट जाऊंगा। यदि गाँव सम्पन्न दिखेगा तो पूरा देश सम्पन्न दिखेगा। इस गाँव की समस्त बुराइयाँ हमें हटाना है। यह ‘कंप्यूटर’ और ‘इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी’ का जमाना है। इस गाँव में इस वैज्ञानिक क्रान्ति को लाना है।’’[54] लेखक को बदलते समय और समाज की गति को बढ़ाने के लिए कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी की महत्ता का ज्ञान बहुत बारीकी से है। गाँव के विकास के लिए 21वीं सदी में कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के बिना विकास की रफ्तार में बहुत पीछे रह जाएँगे। क्योंकि विकसित होना

अर्थात वैश्वीकृत दुनिया का भाग होना है। सारी सेवाएं, वस्तुएँ, ज्ञान, व्यापार और पूँजी का बिना रोकटोक आवागमन ही वैश्वीकरण है।

उपन्यास के माध्यम से समाज में 'स्त्री शिक्षा' प्रचारक के रूप में उपन्यास की पात्र 'मिस हैरी सिल्वा' गाँव की स्त्रियों को पढ़ाने और उन्हें जागरूक करने का बीड़ा उठती है। "वह अनपढ़ औरतों को हिन्दी, अंग्रेजी और गणित पढ़ाया करती थी। उसके पास एक लैपटाप था, जिसमें वह उनको एक हिन्दी फिल्म दिखाया करती थी। देहात की औरतें इसको एक अजूबा समझती थी। सवर्ण औरतें और लड़कियाँ अपने घर वालों से छिप-छिप कर दलितों के घर आ जाया करती थीं और मिस हैरी सिल्वा से हिन्दी फ़िल्में दिखाने के लिए अनुरोध करतीं थीं।"[55]

वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ केवल फायदें को केन्द्र में रखकर समाज, बाजार और व्यक्ति संचालित हो रहा है। ऐसे समाज की सोच को एक नयी दिशा देने और नयी युवा पीढ़ी की संवेदनशीलता को दिखाना समाज में भौतिक जगत विकास के साथ मनुष्य की आतंरिक संवेदना को भी जाग्रत करना। "जो व्यापारी अपनी उन्नति के साथ-साथ गरीबों की उन्नति की चिंता करते हैं। देश की समृद्धशाली बनाने के लिए रात-दिन मेहनत करते हैं। वे व्यापारी व उद्योगपति देश के लिए वरदान होते हैं। उनसे देश व समाज का गौरव बढ़ता है। ऐसे व्यापारियों व उद्योगपतियों के रहते गरीबी ताण्डव नृत्य नहीं कर सकती है। बल्कि गरीबी देश व समाज से पूँछ दबाकर भाग जाती है।"[56]

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वैश्विक दौर में कर्म की प्रधानता ने जाति को पीछे छोड़ दिया है। वैश्वीकृत समाज की ही देन रही है कि दलित समाज से सम्बन्ध रखने वालों की समस्याओं में थोड़ा कमी आयी है। उनको पढने-लिखने, पैसा कमाने और कर्मशीलता के आधार पर एक संपन्न और सम्मानित जीवन जीने का मौका मिल पाया है। ऐसा नहीं है कि समाज में दलितों का शोषण ख़त्म हो गया है लेकिन लोगों की सोच में बदलाव आने लगा है आज की युवा पीढ़ी समान रूप से जीवनयापन में विश्वास रखती है। सभी को अपने-अपने कार्य को सुचारू रूप से संपन्न करने और प्रतिस्पर्धा की होड़

में सबसे आगे निकल जाने और पूँजी अर्थात पैसा कमाना ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है बजाय रूढ़िवादी परम्परा सेवक और रक्षक बनने के। आधुनिक समाज की यही वास्तविक सच्चाई भी है कि कोई भी "आदमी जाति से नहीं बल्कि कर्म से बड़ा होता है। जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना समाज में एक कोढ़ की तरह है। यदि इसका इलाज न किया गया तो पूरा समाज रोगी बन जाएगा।"[57]

प्रेमचंद द्वारा लिखा गया उपन्यास 'गोदान' आजादी के पहले की भारतीय समाज और संस्कृति को केंद्र में रखकर लिखा गया अद्भुत उपन्यास है। किसान जीवन की समस्या और गरीबों की स्थिति तथा महाजनी व्यवस्था में किसान को किसानी से मजदूर बनने दारूण दशा का वर्णन किया गया है। धार्मिक मान्यता के अनुसार 'गोदान' की प्रक्रिया अपने आप में चली आ रही धार्मिक रूढ़िवादी मान्यताओं का समर्थन करती है। गोदान उपन्यास में लेखक प्रेमचंद सन 1936 के समय और समाज की स्थिति को उजागर किया है। गोदान उपन्यास में 'गाँव और शहर' दोनों का मिला-जुला रूप प्रस्तुत किया गया है। गाँव में किसान या दूसरे गरीब लोगों की स्थिति बहुत ही दयनीय है। जाति-पाति की बात करें तो यहाँ पर भी ब्राह्मण पंडितों और गरीबों की स्थिति सोचनीय है। क़ानून शासन व्यवस्था भी अमीरों का ही है। प्रेमचंद द्वारा बहुत ही साफगोई से उस समय के समाज की समस्याओं को विषय बनाया गया है जैसे विधवा विवाह, अनमेल विवाह, गरीबों की बेहाल स्थिति महाजनी व्यवस्था और दूसरी तरफ शहरी लोग मालती जैसी पढ़ी-लिखी लड़की उसका जीवन। गोबर का शहर में जाना और वहाँ पर शोषण की व्यवस्था से मुक्ति का भान करना तथा शहरी जीवन को गाँव की अपेक्षा श्रेष्ठ मानना अर्थात गाँव का शहर की ओर पलायन आदि। इसके विपरीत आज 21वीं सदी के समाज की झांकी प्रस्तुत करने वाला 'सुअरदान उपन्यास' भी 'गोदान' जैसे रूढ़िवादी समाज और संस्कृति में हो रहे बदलाव और सामाजिक परिवर्तन को उजागर करता है। इतना ही नहीं उसमें उठाई गई समस्या चाहे वह जातिगत समस्या हो या समाज में ऊँच-नीच असमानता की व्यवस्था, स्त्री समाज की स्थिति का प्रश्न हो। गोदान के समय और समाज की मांग युवा पीढ़ी का प्रतीक गोबर को शहर की ओर प्रस्थान करती है यहाँ उसे सहज जीवनयापन का माहौल और सम्मान प्राप्त होता है। और सूअरदान उपन्यास में 21 वीं का युवक शहर

से गाँव की ओर वापसी करता है। क्योंकि वह गाँव की समस्याओं पर गौर करना और उसे दूर करने में योगदान देना अपनी जिम्मेदारी समझता हैं। गाँव के विकास तथा लोगों को रोजगार देने के लिए अमेरिका के तर्ज पर गाँव के युवाओं द्वारा ‘सूअर फार्म’ की स्थापना की जाती है। जिससे पढ़े-लिखे और अशिक्षित सभी लोगों को उनकी योग्यता से हिसाब से रोजगार मिल सके। जिसका एक मुख्य उद्देश्य है गाँव से गरीबी दूर करना और सभी को वह चाहे किसी भी जातिधर्म का हो सभी की उन्नति के लिए। आज की पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी बहुत ही जागरूक और तत्पर हैं। उन्हें पता है की गाँव की समृद्धि ही देश की समृद्धि का प्रतीक है इसलिए सबसे पहले गाँव और गावं के लोगों की रूढ़िवादी मानसिकता को बदलने की जरूरत है। जिससे आधुनिक विचार अर्थात तर्कशील विचारों को यथार्थ के धरातल पर जगह मिल सके। जिसमें सभी का कल्याण सुनिश्चित है। ‘गोदान’ उपन्यास में जहाँ गोबर का बढ़ता कदम भविष्य की ओर उन्मुख था वहीँ यहाँ पर आज की पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी काफी जागरूक है। वह विकास को प्राथमिकता देती है।

21वीं सदी में जहाँ विकास की अंधाधुंध में लोग बनावटी दुनिया के साथ भौतिक वस्तुओं को महत्त्व देने के लिए वास्तविकता को नजरअंदाज करते जा रहे हैं अब तो उनकी संवेदना शून्य पड़ती जा रही है ऐसे समय और समाज में सूअरदान उपन्यास में चित्रित युवा पीढ़ी के प्रतीक चारों लड़के बिना किसी पूर्वाग्रह के बहुत ही बेहतरीन तरीके से समाज सुधार के रूप में आगे बढ़ते हुए नजर आ रहे हैं। उनका विकास मानवीय मूल्यों और उनकी संवेदना के साथ विकास के पथ पर अग्रसर होते हुए आगे बढ़ रहे हैं। जहाँ वर्तमान समय में वैश्वीकरण के दौर में मानवीय संवेदना सूखती जा रही है पूरी दुनिया बाजार बन गई है और वहां के लोग उपभोक्ता ऐसे समय में यह उपन्यास वास्तव में प्रेमचंद के उपन्यास गोदान का अगला विकसित कदम कहा जा सकता है इसमें कोई संशय नहीं है। गोदान उपन्यास के अंत में जहाँ प्रेमचंद गरीबी के अभाव में गोदान जैसे धार्मिक मान्यताओं का खंडन करते हुए गोदान वास्तव में नहीं करवा पाते हैं वहीँ सूअरदान उपन्यास में पुजारी दयाशंकर ने स्पष्ट इनकार कर देता है गोदान करने से। “मैं गोदान नहीं करूंगा” स्वर्ग और नर्क सभी कल्पना की चीजें हैं, मरने के बाद आदमी इसी मिटटी में

विलीन हो जाता है।” आगे अपनी बात बढ़ाते हुए कहते हैं “मरने के बाद मृत व्यक्ति के लिए काल्पनिक भव सागर की बात मिथ्या है। फरेब है। यदि मुझे दान करना पड़ा, तो मैं प्यार, भाईचारा, सांप्रदायिक सद्भावना, देश प्रेम, जानवरों और मानवों के प्रति लगाव का दान करूंगा। पूरे विश्व में शान्ति रहे, इसलिए मैं अहिंसा के उपदेश का दान करूंगा। पूरा संसार प्रदूषण मुक्त रहे, इस उद्देश्य का दान करूँगा। प्रत्येक नागरिक देश की रक्षा करे, इस संकल्प का दान करूंगा।” और अंत में वह कर्म को महत्त्व देना उचित समझते हैं। जीवन में जिसकी वजह से उसकी और उसके परिवार के साथ-साथ पूरे गाँव की स्थिति सुधरी थी उस कर्म रुपी “पिगरी फॉर्म” और उसके सभी कर्मचारियों को याद करते हुए अंतिम सांस लेते हैं। अंत में पुन: लोगों के बीच भ्रम पैदा करते हुए चारों ब्राह्मण सत्यनारायण त्रिपाठी, मार्कण्डेय अग्निहोत्री कामता प्रसाद बिष्ट और सीताराम भट्ट वहाँ आ गए। पुजारी दयाशंकर का हाथ सूअर के बच्चे के ऊपर देखकर खतरे को भाफ कर चिल्ला पड़े। “पुजारी दयाशंकर जी ने ‘गोदान’ के बदले ‘सूअरदान’ कर दिया।” जबकि वास्तविकता यह है कि उन्होंने इस प्रकार का कोई भी दान नहीं किया था। गोदान उपन्यास में गोदान के समय प्रेमचंद की स्त्री पात्र धनिया गरीबी की हालत में गोदान नहीं कर पाती है लेकिन उसके मन में इच्छा होती है लेकिन प्रेमचन्द कहीं न कहीं गरीबी की बेबसी पैदा करके गोदान रुपी काल्पनिक परम्परा को नकारते दिखाई देते हैं। ‘सूअरदान’ उपन्यास में किसी भी तरह के रूढ़िवादी काल्पनिक मान्यता का पालन करने से पात्र स्वयं इन्कार कर देता है। और उसके पीछे अपने यथार्थ जगत का वास्तविक तर्क भी देता है। ‘गोदान’ उपन्यास में पात्र अपनी बात नहीं बोल पाता है। दोनों उपन्यास को ध्यान में रखकर देखे तो गोदान आजादी के पहले की गाथा है तो सूअरदान वैश्वीकरण के दौर के समाज की तर्कशील सामाजिक गाथा का चित्र प्रस्तुत करता है। सूअरदान उपन्यास में मिस हैरी सिल्वा का चरित्र विदेशी लड़की का है जो अपने भारतीय दोस्तों के भारत उनके गाँव में आकर ‘स्त्री शिक्षा’ और उसकी स्थिति में सुधार हेतु काम करती है। वह उनके मनोरंजन के लिए उन्हें फ़िल्में भी दिखाती है। उन्हें उनके बच्चों को साफ़-सफाई से रखने की सलाह भी देती है स्वयं भी उनकी सहायता करती है। पढ़ी-लिखी और काफी जागरूक होने के कारण वह हमेशा सक्रिय रूप में समाज सुधारक की

भूमिका में चारों दोस्तों के साथ गाँव के विकास के लिए काम करती है। यहाँ पर विदेशी लड़की से भारतीय परिवेश में शादी करवाकर समाज में एक बनी बनाई मानसिकता को तोड़ने का काम किया गया है।

गोदान के ग्रामीण पात्र पढ़े-लिखे जागरूक नहीं होते हैं उनका ग्रामीण समाज बहुत सी सहज और सीधा है उन्हें बहुत आसानी से गुमराह किया जा सकता है। धार्मिक रूढ़िवादी मानसिकता में आसानी से जकड़ा जा सकता है लेकिन 21 वीं सदी का समाज बहुत की जागरूक और चेतनशील समाज है जिसमें ज्यादातर पढ़े-लिखे और जागरूक युवा पीढ़ी अपनी स्थितियों को सुधारे के बाद बिना किसी पूर्वाग्रह के बदलते समय और समाज की गतिविधियों को स्वीकार कर सहज रूप से एक मानवीय संवेदना के साथ इंसानियत का पाठ पढ़ाते हुए विकसित समाज के निर्माण में अपना योगदान करना ही जीवन का दान समझते हैं न कि ‘गोदान’ या ‘सूअरदान’ जैसी धार्मिक काल्पनिक चीजों में विश्वास करते हैं।

उपन्यास में एक सामाजिक प्रसंग चलता रहता है जिसके माध्यम से यह पता चलता है कि रतनलाल नामक पात्र भौतिकता और अपने स्टेट्स को देखते हुए अपनी पहली पत्नी को छोड़ देता है और दूसरी शादी कर लेता है दूसरी पत्नी को बिना बताये कि वह शादी शुदा है। जिसकी वजह से पहली पत्नी और बच्चों का जीवन नर्क हो जाता है। जब पहली पत्नी की बेटी ‘जानकी’ किसी कारण वश ‘कॉल गर्ल’ के रूप में कोट में उसके सामने आती है, तब वह स्वयं कटघरे में आ जाता है। पहली पत्नी की बेटी की दारूण दशा देखकर दूसरी पत्नी उसे बेटी के रूप में अपनाती है और उसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैरो पर खड़ी करती है। रश्मिसिंह का यह रूप एक आधुनिक और पढ़ी-लिखी समझदार स्त्री के रूप में विकसित और व्यवस्थित तथा सचेत स्त्री का उदाहरण प्रस्तुत करती है। जबकि ज्यादातर समाज की स्त्रियाँ ऐसी स्थिति में नकारात्मक रूप में सामने आती हैं।

4.4-विज्ञान की प्रगति और मानवीय संवेदना का ह्रास

विज्ञान की प्रगति ने देश के विकास में अहम योगदान दिया है। यंत्रों के विकास के माध्यम से समाज के आर्थिक क्षेत्र हो या राजनीतिक, सामाजिक गतिविधियों सूचना क्रांति और टेक्नोलॉजी के माध्यम से वर्तमान दुनिया वैज्ञानिक प्रगति के क्षेत्र में तीव्रगति से आकाश से भूगर्भ तक और भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक की सारी दुनिया पर विजय पताका लहरा रही है। वैज्ञानिक प्रगति ने आधुनिक जीवनयापन को अत्यधिक आसान और सुविधाजनक बना दिया है। विज्ञान की प्रगति के माध्यम से हम घर बैठे पूरे विश्व की जानकारी प्राप्त करने और विश्व भ्रमण आसानी से कर सकते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो अध्यात्म के नाम पर बनी बनाई सामाजिक बुराईयों एवं रूढ़िवादी विचारधारा पर तार्किक ढंग से विचार विमर्श करने के लिए खुला माहौल मुहैया हो सका है। क्योंकि विज्ञान की प्रगति ने संसार के बहुत से गूढ़ रहस्यों से पर्दा उठाकर सत्य का उद्घाटन किया है। संजीव का उपन्यास रह गई दिशाएँ इसी पार में- "इसमें टेस्ट-ट्यूब बेबी के बहाने उन्होंने जन्म, मृत्यु, जीवन, मरण, जेंडर, ईश्वर और अनंत, के रहस्यों पर एक वैज्ञानिक की तरह बात की है। दूसरे शब्दों में उपन्यास एक ऐसी प्रयोगशाला है जहाँ निरंतर प्रतिक्षण चल रहे हैं और इन प्रयोगों को अंजाम दे रहे हैं देशी-विदेशी पात्र।"[58] उपन्यासकार का उद्देश्य जीवन की सच्चाई के सम्बन्ध में यह है कि इस पृथ्वी पर सब कुछ नश्वर है। "अजर और अमर होने की अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद न कोई अजर रह पाता है और न अमर। लाशों की बदबू को न चन्दन ढंक पाता है, न डीप फीज, न वैज्ञानिक और आध्यात्मिक मिथ।"[59]

"आर्ट और साइंस यानी कला या मानविकी तथा विज्ञान के विभाजन की सीमित दृष्टि ने समग्र मानवीय ज्ञान के विकास को बाधित ही किया है। स्वयं हिन्दी साहित्य में ज्ञान और संवेदना को अलग मानकर चलने वाली दृष्टि पर एक लम्बी आलोचनात्मक बहस मौजूद है और बार-बार ज्ञान और संवेदना के एकत्व पर जोर दिया गया है। संजीव का यह उपन्यास इसी ज्ञान और संवेदना के समन्वय की अगली कड़ी है। 'रह गईं दिशाएँ इसी पार' हिन्दी में विशुद्ध जैविकी को आधार बनाकर लिखा गया अपनी तरह का पहला औपन्यासिक प्रयास है। कई मायनों में हिन्दी पाठकों की पाठकीय रूढ़ियों को झकझोरता

और तोड़ता उपन्यास है।"[60] उपन्यास के पात्रों में डॉ जैक्सन स्त्री रोग विशेषज्ञ हैं और अजय जड़ी-बूटियों वाले खानदानी वैद्य परिवार का सदस्य (विस्नु बिजारिया और एलिस (कैथरीन माँ) का पुत्र जिम जिसका वास्तविक नाम अतुल बिजारिया) अजय (वास्तविक दुनिया का सहज स्वरूप) को मिस्टर और मिसेज बिजारिया यानी विस्नु और एलिस द्वारा स्पांसर किया जाता है फंडामेंटल रिसर्च के लिए। जिससे अजय जिम के दोस्त के रूप में हमेशा उसके साथ रह सके। अजय के प्रति आकर्षण बिजारिया परिवार को तब होता है जब वह उसके बड़ों के प्रति संस्कार और प्यार को देखते हैं। जिसकी तरफ डॉ. जैक्सन इशारा करते हैं आधुनिक समाज और परिवार की स्थिति "सुनों वहाँ बहुत-से एंग्लों इंडियन्स हैं, बच्चे आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, इंग्लैण्ड, साउथ अफ्रीका, मैकलुस्कीगंज या कहीं और जा बसे हैं, इन बूढों-बूढियों की देख-भाल करने को कोई नहीं है। आपने जिस बूढ़े को सड़क पार कराया, उन्हीं में से एक था। वह मेरा बड़ा भाई था जो बाद में मैकलुस्कीगंज में मर गया। बाद में हमने आपको फिर ट्रेस आउट किया ठाकुर पुकुर की मार्निंग वाक् में। बिजारिया परिवार के लिए आपसे बड़ा फिटिंग फ्रेंड हो ही नहीं सकता था उनके बेटे के लिए।"[61] परिवार और समाज के बीच यह सबसे बड़ी त्रासदी है जिसकी तरफ उपन्यास में इशारा किया गया है।

मनुष्य के जीवन में "बड़ी घटना की शुरुआत एक मामूली घटना से होती है।" जिंदगी की डगर में मिलने वाली सफलता और असफलता का स्वरूप इन्हीं घटनाओं की ही देन होती हैं। वह घटना प्राकृतिक और अप्राकृतिक दोनों ही रूपों में घट सकती है मानव जीवन में। जैसा कि अजय के जीवन में प्रवेश किया एक छोटी सी घटना किसी बुजुर्ग को सड़क पार करवाना अजय के लिए एक अलग दुनिया में प्रवेश करवा दिया। समय की बदलती मार-"सुंदरवन की फ़ूड हैविट्स बदल गयी हैं। शाकाहारी बंदर को यहाँ फल कहाँ मिले? लाचार होकर मछली या मांसाहार पर निर्भर होना पड़ रहा है। " हाय रे मेरे हनुमान जी! देबू ठाकुर ने हाथ जोड़कर अपने प्रभु से उनकी इस दुर्दशा के लिए माफ़ी मांगी।"[62] 'जिम' यानी अतुल बिजारिया के जीवन का रहस्य जिम के परिवार को छोड़कर केवल डॉ जैक्सन को ही पता था। अजय के पूछने पर की जिम इतना शांत क्यों रहता है? क्योंकि अजय को जिम के साथी के रूप में

रखा गया था जिससे वह सम्वेदनशील रहे और कोई मशीन जैसी अमानवीय हरकत न करे। अजय बहुत ही संवेदनशील है इसलिए उसे उनके साथी के रूप में उसके साथ रहने का निर्णय ‘विस्नु बिजारिया’ ने मिलकर लिया है । जिससे जिम भी समाज की वर्तमान बदलती स्थिति और संवेदना को समझ सके। इसलिए डॉ जैक्सन नहीं चाहता कि अजय से उसके बारे में कोई बात छिपाई जाय। डॉ. अजय को बताते हैं कि उन्नीस साल पुरानी बात है उस दिनों वह शिकागों में थे एलिस और विस्नु की शादी हो चुकी थी लेकिन वे इंडिया नहीं आये थे। मैं इनका ‘फैमली डॉक्टर’ रहा। एलिस के गर्भाशय में एलर्जी होने के कारण वह उसके गर्भ में बच्चा नहीं रूक पा रहा था। इसलिए उसे ऐसे में एक ही उपाय था ‘टेस्ट ट्यूब बेबी’ का क्योंकि ये बच्चा भी गोद नहीं लेना चाहते थे किसी और का। इसलिए यह उपाय स्वीकार कर इन्होंने एलिस की माँ ‘कैथरीन’ को इसके लिए मनाया वह अपनी बेटी की ख़ुशी के लिए मान गई। जिससे उनके गर्भ में ‘जिम’ को विकसित किया गया। “एक दिन मैं एक मेडिकल जर्नल उलट-पलट रहा था कि एक लेख पढ़कर एक आइडिया आया। अगर निषेचन के बाद डिम्ब या भ्रूण को ‘फेलोपियन ट्यूब’ में थोड़ा डेवलप कर बाकी डेवलेपमेंट को किसी अन्य गर्भाशय में कराया जाय तो...?”[63] फिर इस प्रकार पैदा हुए जिम यानी अतुल बिजारिया को विस्नु बिजारिया लेकर घर आया। आगे बात करते हुए डॉ. उसे बताता है की भारत में यानि अपने समाज में हम इस बात को बता नहीं सकते हैं क्योंकि यह नैतिकता का प्रश्न नहीं है यह समाज अभी उतना व्यस्क नहीं हुआ है कि इस विचार को पचा सके। जिम की परवरिश और उसके बढ़ती उम्र को लेकर बस यही है कि वह बढती उम्र के साथ सब कुछ जानकर नास्तिक न हो जाय। “मैंने कभी कहा था की अमेरिका निर्वासितों की जगह है, कलकत्ता भी...प्राय: हम सभी ही...लेकिन जिम का निर्वासन तो और भी गहरा है, जन्म से पहले ही शुरू हो जाता है। वैसे विज्ञान की भाषा में कहीं कुछ असामान्य नहीं मगर यह इडियट समाज...।” विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति ने समाज और इंसानी फितरत को ही पलट दिया है। आपसी रिश्तें मात्र कृत्रिम सम्बन्ध बनकर रह गये हैं। अजय सोचता है- “जिम अपनी माँ को क्या कहेगा-माँ या बहन? क्या कहेगा अपनी नानी को-नानी या माँ? और विस्नू बिजारिया को पापा या जीजा? इस तेज रफ्तार से भागती

दुनिया में किसी रिश्ते का कोई मतलब बचा भी है क्या?” इस उपभोक्तावादी समाज में सारी नैतिकता धरी की धरी रह जाएँगी। सहजता या कहे वास्तविक जगत की कोई चीज नहीं बचेगी इस समाज में सारे रिश्ते नाते सब धूमिल पड़ते जा रहे हैं। सबमें संकरीकरण होना शुरू हो गया है। विज्ञान की प्रगति ने प्रकृति सत्ता को धत्ता बता दिया है। बहुत तेजी से भागती दुनिया ने प्रकृति को चुनौती देने के साथ ही साथ मानवता का हनन किया है इतना ही नहीं इंसान की हैसियत को भी मशीन बनाकर रख दिया है। मनुष्य प्रकृति की चीजों से छेड़छाड़ कर उसका स्वरूप तो अपने अनुसार बनाने में सफल हो रहा है लेकिन वह मनुष्य की संवेदना सहजता और सहृदयता से बहुत ज्यादा छेड़छाड़ कर उससे काफी दूर निकलता जा रहा है जहाँ से पीछे मुड़ने पर सारे दृश्य-अदृश्य चित्र नज़र आने लगेगें। उसका भान अभी उसे नहीं है अभी वह अपनी विजय पर जश्न मना रहा है। लेकिन अगर ऐसे ही होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब वह स्वयं को ही नुकसान पहुँचाने पर भी उसे महसूस कर पाने में असमर्थ होगा। लेखक की बेचैनी भविष्य के लिए चिंतित है। एक उदाहरण है-“लारा दुनिया से बड़ी तेजी से गायब होते ईमानदारी के जींस को बचाने हेतु अपने अति ईमानदार पिता का ‘क्लोन’ रूप सुरक्षित रख लेना चाहती है और इसके लिए अपने गर्भ के इस्तेमाल से उसे कोई हिचक नहीं। परन्तु सामाजिक नैतिकता आड़े आती है, एक बेटा अपने ही पिता की माँ...असम्भव! इसे समाज भला कैसे बर्दाश्त करे। ‘शाहनवाज’ सेक्स परिवर्तित करा के ‘शाहनाज’ यानी पुरुष से स्त्री हो जाता है जो कि उसकी वास्तविकता है परन्तु इतने से ही समाज का नजरिया उसके प्रति असहनीय हो जाता है। वह सोच नहीं पाती कि “क्या जेंडर बदलने मात्र से क्वालिफिकेशन, डिग्रियां, सर्टिफिकेट सब गलत हो गये? उसके काम करने की क्षमता घट गई या वह काम नहीं करता?”[64]

अजय, जिम के हर क्रियाकलाप पर नज़र रखता है। जिम (‘टेस्ट ट्यूब बेबी) की खोज के प्रति तत्परता देखकर अजय (सामान्य इंसान) बहुत चिंतित है कि आखिर बात क्या है कि वह इनता डूबा हुआ है और वह उसे तड़पा रही है।“ बाहर क्रिकेट है, पालिटिक्स है, सिनेमा है, टी.वी. है, इंटरनेट है, अड्डेबाजी है, औरतें हैं लेकिन जिम को यह सब देर तक नहीं बाँध पाते। जिम की खोज कुछ और ही है। क्या है

वह?"[65] जिम के क्रियाकलाप असामान्य असामाजिक प्राणी की तरह लगता है। असामान्य तरीके से प्रकृति से छेड़छाड़ करके कृत्रिम रूप से पैदा किया गया यह जिम अमानवीय प्रवृत्ति यानी संवेदनाशून्य व्यक्ति 'रोबोट' जैसा व्यवहार करता है। यह कहाँ तक सही है। प्रकृति पर पूर्णरूपेण विजय प्राप्त करने की विचारधारा कहाँ तक जायज है। आधुनिक मनुष्य की पिपासा जानवर को भी नहीं छोड़ रही है। जानवरों की नस्ल में सुधार हेतु वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेते हैं। जिससे अच्छी गायें और अच्छा उत्पाद उनसे प्राप्त किया जा सके।

वैश्वीकृत समाज में बाजारीकरण की संस्कृति का बोलबाला होने की वजह से उपभोक्तावादी समाज और उत्पादन ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। "नस्ल का सुधार! सारी गड़बड़ी की जड़ तो वे स्थानीय मरियल 'सांड' हैं, जिनसे इनकी नस्ल दिन-ब-दिन खराब होती जा रही हैं। लगातार अकाल क्षेत्र में रहने के चलते इन सांडों में कुछ रह नहीं गया है।"[66] आगे कहते हैं कि "अभी स्थानीय मरियल सांड हटा देते हैं। उनकी जगह कुछ सांड जहाँ भी मिलते हैं, ले आते हैं। फिर बाद में विदेशों से आयात कर लेंगे।"[67]

पूँजीवादी दौर में एक अमीर और अमीर, तथा एक गरीब और गरीब होता जा रहा है इसका कारण यही है कि मूलभूत आवश्यताओं की पूर्ति सम्भव है लेकिन विलासिता पूर्ण जीवनयापन करना दूसरे शब्दों में कहे तो धनवान बनने के लिए सहज और ईमानदारी का रास्ता वहां तक कभी नहीं पहुंचा सकता है उसके लिए आपको रास्ता बदलना ही होता है थोडा ज्यादा या कम अजय का कथन इस बात की पुष्टि करता है। -"बिना दूसरे का हक मारे कोई भी धनवान नहीं हो सकता।"[68] व्यापार और बाजार की तुलना- भारतीय और विदेशी परिप्रेक्ष्य में-"देखों इण्डिया में बर्ड्स और कैटल की कमी नहीं है। काटे भी जाते हैं, कुछ खुलेआम, कुछ चोरी-छुपे। लेकिन दिक्कत कहाँ है जानते हो- प्रोसेसिंग और पैकेजिंग में, बहुत सारी चीजें जिनका बाई प्रोडक्ट बनता, वह यूँ ही बेकार चला जाता है जबकि शिकागों वगैरह में कुछ भी बेकार नहीं जाने देते- बाल; चमड़ा, हाड़ नाडिया, खून, मल, मूत्र, सारा कुछ। व्यवसाय तुम लोग भी करते हो, वे भी करते हैं, पर वे जो भी करते हैं 'टोटल एंड कम्प्लीट' और तुम लोग जो करते हो आधा और अधूरा।"[69] वैज्ञानिक शोध इतना ज्यादा प्रगति कर चुका है जिसके माध्यम से सब कुछ सम्भव है

लेकिन वह एक चीज में आज भी असफल है वह है किसी के चेहरे पर सहज मुस्कान लाना, किसी के लिए सहज भाव प्रेम को पैदा कर पाना, किसी की बढती उम्र और बुढ़ापा आने से रोक देना या मरने के बाद शरीर में फिर से जान डालकर जीवित कर देना आदि प्रकृति प्रदत्त घटनाओं को होने से नहीं रोक पाया है विज्ञान। एक उदाहरण-अजय के पूछने पर की जिम इतना विधेय क्यों है डॉ का कथन है कि "जिम ही क्यों, उस परिवार में कोई भी खुश है? उनके पास सबकुछ है-पैसा, रूतबा, सिर्फ एक चीज नहीं है- ख़ुशी। सब के सब 'ट्रांसप्लांटेड' जो हैं- अपने बिछड़े बसेरे के वियोग में उदास। और ख़ुशी ही वह चीज है जो 'ट्रांसप्लांट' नहीं की जा सकती।"[70]

बिजारिया का मत्स्य उद्योग- मछुआरों की जिंदगी का वर्णन बहुत ही बारीकी से लेखक करता है। समुंद्री तट पर निवास करने वाले मछुआरें और उनकी जीविका समुंद्र से प्राप्त होने वाली मछली पर आधारित होती है। वैश्वीकरण के दौर में विज्ञान और टेक्नोलॉजी के बढ़ते प्रयोग और व्यापार बाजार ने उनसे उनका आहार छीन रहा है दिनप्रतिदिन। व्यापार और बाजार की भूख अपनी बाजार और व्यापार की रणनीति के माध्यम से उसे अकाल के मुंह में झोक रही है। मछुआरें समाज तटीय क्षेत्रों पर अपनी स्थानीय बाजार में मछलियों को बेचकर अपनी और अपने परिवार की जीविका का निर्वहन करते हैं, जहाँ बाजारीकृत व्यवस्था ने धावा बोल दिया है। समुंद्री कन्या 'बेला' अपने माँ पिता को समुन्द्र में खो देने के बाद आज भी वह समुन्द्र पर होने वाले विश्वास की आस लिए इन्तजार में बैठी रहती है कि समुन्द्र उसके साथ ऐसा नहीं कर सकता है? उसके माँ–पिता जरुर वापस आयेगे। उसके समुदाय के लोग पूरी तरह से समुद्र से प्राप्त होने वाली खाद्य पदार्थों पर आधारित हैं। इसलिए वह अपने इलाके में प्रवेश करते वालों से सावधान ही नहीं रहती, उन्हें अपने इलाके में प्रवेश न करते की चेतावनी भी देती है। "आपके लिए मछली मारना व्यवसाय है, हमारे लिए जीने का आधार। 'ट्रायर' से आप हमारे हक की मछली चुराते ही नहीं, उसकी आवाज से उन्हें डरा-भगा भी देते हैं, छोटी-छोटी मछलियाँ तो मर ही जाती हैं, भविष्य में हमें भूखों मरना होगा।" बेला ने कहा।"[71]

बेला (मछुआरें की बेटी) एक संघर्षशील और स्वाभिमानी लड़की है। जिम के कहने पर की इनकी मछलियाँ वापस कर दो तो जवाब में बेला कहती है कि “हम खैरात की मछलियाँ नहीं लेते।”[72] आगे अजय कहता है कि-“यह गुरुर भी गजब का सेंटीमेंट है। सारा कुछ खुद को विसर्जित करने की ओर बढ़ता है।” अजय ने कहा, “विशाल से पूछेंगे कि क्या ‘आकांक्षा’ का भी कोई जीन होता है?”[73] वैज्ञानिक प्रयोग और सोच के कुछ नमूने जिसमें सामाजिक ज्ञान का पूर्णत: अभाव होता है। जिम का बेला के प्रति व्यवहार को देखकर अजय क्रोधित होता है। वह बोलता है कि “वो दूसरी माटी की बनी हुई हैं, यह दूसरी माटी की। साइंस के साथ-साथ सोशल साइंस पर भी एक नज़र डाल लेते तो यह गलती न होती।”[74] आगे अजय जिम को समझाते हुए कहता है कि “मान लो तुम्हारी चोंच में वह स्वाभिमानी लड़की आ भी गयी, पर तुम शादी तो करोगे नहीं इससे” वह उसे देखता रहा। न ‘हाँ’ न ना! “काम (सेक्स) कार्य है या कारण? कारण! तो फिर कार्य क्या है-सृष्टि। वह फिर सोच में पड़ गया, फिर लिखा, “गेयकों क्लोनों तो बिना सम्भोग के डिम्ब से मादा गेयको को जन्म देती है...पर वहां भी सेक्सुअल मिलन के बाद जो गेयको पैदा होते हैं, बिना सम्भोग के पैदा हुए गेयको से बेहतर नस्ल के होते हैं। लेकिन इंसान ही है जिसके लिए काम सिर्फ सृष्टि के लिए नहीं जीवन की आनन्द भरी पूर्णता के दीगर कामों के लिए इस्तेमाल होता है।”[75]

वैज्ञानिक शोध का एक नमूना अर्थात प्रकृति से छेड़छाड़ जिसका अंत कभी सफल नहीं हो सकता है। वर्तमान समय और समाज का मनुष्य बूढा नहीं होना चाहता। चाहे वह कितनी भी उम्र का हो उसे जवान ही दिखने का शौक होता है। इसलिए भी विदेशी अपनी सुन्दरता और बढती उम्र की रफ़्तार कम करने के लिए अपने शरीर पर एक-एक प्रयोग करते रहते हैं। जिसका प्रभाव भारतीय समाज के लोगों पर भी दिखाई देने लगा है। मनुष्य के जीवन के रहस्यों को खोलना इनका उद्देश्य है। जिम जैसे ‘टेस्ट ट्यूब बेबी’ खोज तथा मानव शरीर के आन्तरिक रहस्यों पर शोध एवं उससे जुडी सामाजिक-सांस्कृतिक जितने भी तरह की मानव जीवन से सम्बधित मान्यताएं हैं, सभी मुद्दों पर विचार विमर्श के साथ मनोरंजन का भी विषय होता है। शोध में लगातार डूबने के बाद ‘फिटनेस’ के लिए इकट्ठा हो मस्ती करते की वजह बनती

है। क्लोन से जीवन देने के रहस्यों का उद्घाटन- जिम को शोध के द्वारा क्लोन के माध्यम से जीवन देने से मतलब है उसे यह ज्ञात ही नहीं होता कि वह जो कर रहा है वह घटना केवल वैज्ञानिक न होकर उसका समाज परिवार और नैतिकता के प्रश्न से भी जुड़ा विषय है। "लारा की कोख में पिता का क्लोन ही वह चिरचिरता पलीता था जिसके विस्फोट की आशंका मात्र से थर्रा गया शेष परिवार- यह कैसे होगा? बाप रे! रिश्तों का क्या होगा? प्रलय आ जाएगा प्रलय।"[76] विशाल का कथन "अपरिमित संभावनाओं से भरा है यह हमारा जीवन। हममें से कुछ लोग नहीं चाहते कि हम इन संभावनाओं की बात करें। उन्होंने देश बनाए, धर्म बनाए, जाति बनाई और मनुष्य को बांटा। वे नहीं चाहते कि हमारा दिमाग मनुष्य की बेहतरी के लिए कार्य करे, वे ललकार रहे हैं कभी जाति के नाम पर, कभी देशभक्ति के नाम पर, कभी मनुष्यता के नाम पर कि वह खतरे में है और हम आपस में ही लड़ मरें।"[77] विज्ञान की प्रगति ने इंसान को स्वार्थी और संवेदनाशून्य बनाता जा रहा रहा है। उपन्यास की पात्र लारा का स्पष्टीकरण पिता के क्लोन के सम्बन्ध में-"एक बात पूंछू दादा, आप तो दुर्लभ नस्ल की प्रजातियों को बचाने के लिए खासा परेशान रहते हैं, अगर मैं अपने इस ईमानदार पिता की नस्ल को बचाना चाहती हूँ तो कौन-सा गुनाह कर रही हूँ। मुझे न धर्म की परवाह है, न नैतिकता की। मुझे इस बात का गर्व है कि मैं ऐसे पिता की संतान हूँ और इस बात का भी कि मैं पिता जैसी दुर्लभ होती जा रही प्रजाति को बचाने का माध्यम बन रही हूँ।"[78]

वैश्विक समाज से सम्बंधित दूसरा उदहारण अध्यात्म से है कि ना कछु तेरा, ना कछू मेरा-किस्नू जिम का चाचा "देखो माँ, यहाँ न कोई किसी की माँ है, न कोई किसी का बेटा। सब माया का बाजार है। मैंने संन्यास व्रत धारण करते समय ही अपना श्राद्ध कर डाला है। समझ रही हो माता। तुम्हारा बेटा किस्नू मर चुका है। यह जो सन्यासी तुम्हारे कुलगुरु स्वामी जी के साथ तुम्हारे पास आया है, वह किस्नू नहीं एक मामूली अवधूत है। वह भिक्षा मांगने आया है तुम्हारे दर पे। अपने लिए नहीं, हजारों मरती गायों के लिए।"[79] यहाँ पर किस्नू जिम के चाचा के द्वारा सन्यासी व्रत धारण करने के बाद माँ के साथ होने वाला

संवाद और पुत्र जिम की चिंता करते रहना कहने का मतलब है कि वारिश प्राप्ति की प्रबल चाह। दोनों ही एक-दूसरे के विपरीत विचारधारा है। जिसकी तरफ लेखक इशारा करता है।

समाज में स्त्री-पुरुष से अलग ‘अन्य’ की संज्ञा पाने वाले ‘लिंग’ अर्थात ‘ट्रांस जेंडर’ के रूप में समाज में पाए जाने वाले इंसान इतना ही नहीं एल.जी.बी.टी. के अंतर्गत आने वाले समलैंगिक लोगों के जीवन को सुचारू रूप से विकसित करने में विज्ञान की प्रगति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ के विकास ने असम्भव को सम्भव बनाने का काम किया है। “समलैंगिकता शहनाज और शाहनवाज-हिन्दू धर्म और उसकी मान्यताओं पर कटाक्ष करती है। एलिस की माँ कैथरीन जबकि रिश्तों और रिश्तें के अहमियत की बात करे तो उसके यहाँ वैज्ञानिक समाज में सब कुछ वस्तु तुल्य ही है। “कैथरिन ने कहा, “पहले माँ थी मैं पर जिम के जन्म के साथ सन्तान भी हूँ और तुमने मेरे इस अधिकार से मुझे हमेशा वंचित किया हमेशा...।” माँ एलिस और नानी कैथरीन की सारी नोकझोक सुनने के बाद अजय को आश्चर्य हुआ लेकिन ‘जिम’ पहले जैसा ही भाव शून्य रहा। ‘जिम’ को अपने जन्म के बारे में सब कुछ पता हो चुका था लेकिन अजय को इस बात का भान नहीं है। जिम भले ही ‘टेस्ट टयूब बेबी’ क्यों न हो वह बहुत ही तेज और वैज्ञानिक दिमाग रखता है। और ऐसा भी नहीं है कि वह सोशल साइंस की जानकारी नहीं रखता है उसे देश-दुनिया और समाज में घटित हो चुकी सारी घटनाओं का इतिहास पता है इतना ही नही भारतीय संस्कृति और परम्परा में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादी मान्यताओं और समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्था पर भी टिप्पणी करता है। वह अपने जन्म को बहुत ही तार्किक तरीके से स्पष्टीकरण देता है। “आपका...आपका ही नहीं, किसी का भी जन्म मेरे जन्म से अलग कहाँ है- वहीं शुक्राणु, वही डिम्ब, वही क्रोमोजोम्स, वही डी.एन.ए. का चक्कर, वही भ्रूण, वही विकास, वही प्रसव...दिस एंड दैट!” कृत्रिम रूप से कराए जाने वाले गर्भधान और प्रकृति की सहजता से निर्मित गर्भधान दोनों को एक ऐसा ही बता रहे हैं। वैज्ञानिक प्रगति के अनुयायी लोगों के द्वारा प्रकृति की सहजता को भंग करना और उस पर अपनी विजय घोषित कर पाना अपनी जीत समझते हैं। जबकि सच्चाई इससे इतर है।

अजय का कथन- “ जैसे हम नंगे भी रह सकते हैं। मगर सभ्यता के वर्तमान तकाजों के चलते आवरण डाल लेते हैं गूप्तांगो पर, हालांकि इसके बावजूद सब जानते हैं यहाँ यह है और वहां वह।”

जिम का कथन-“मुझे लगता है, छुपाने का ही दूसरा नाम सभ्यता है। जो अपने को जितना अधिक छुपाता है, वह उतना ही सभ्य! पर मुझे आपने बताया स्ट्रेंज।”

“वो तो टेस्ट ट्यूब बेबी होने के नाते।”[80]

“कौन नहीं है टेस्ट ट्यूब बेबी? सबसे अकडू खां अमेरिका को लीजिए, स्पेन का शुक्र, इंग्लैण्ड का डिम्ब, इंग्लैण्ड का शुक्र, फ्रांस का डिम्ब, फ्रांस का शुक्र, इटली का या जर्मनी या कहीं और का डिम्ब या इनके परमुटेशनकंबिनेशनस, इनका मिलन कहाँ हुआ और प्रत्यारोपित कहाँ हुए-अमेरिका के गर्भाशय में।....”[81]

अजय के द्वारा यह कहने पर की वो तो तार्किक है लेकिन मातृत्व और मानवीय रिश्तों के बारे में क्या सोचे। जिम विशाल के रिसर्च और लेख की तरफ ध्यान दिलाता हुआ अजय से कहता है कि रिश्तों को अब नये आलोक में देखने की जरुरत है। अब वह हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को केंद्र में रखकर अपनी बात का स्पष्टीकरण देता है। “सूर्य पृथ्वी का पिता है और वह पृथ्वी को गर्भधारण भी कराता है। माँ मान लें तो भी वही...। ये ब्रह्मा-सरस्वती, यम-यमी, इडिपस, उसकी मदर एक तरह से देखिये तो एन्क्रोचमेंट्स हैं, दूसरी तरह से देखिए तो साधारण मामला। बस ऊपरी अर्थ-क्रस्ट की तरह थोड़ी-सी संवेदनाओं की परत बिछा दी गई है, वहीं रिश्ते हैं, भावनाएं हैं,....आगे कहता है कि “हम एक दूसरे से रिश्तों और संवेदनाओं से, स्मृतियों और कल्पनाओं से जुड़े हैं और एक लम्बा सफर तय किया है हमने। इन्हें छीनकर नि:सहाय न करो प्लीज!”[82]

दुनिया बहुत बड़ा बाजार है- विस्नू बिजारिया देश-विदेश में मिलकर बहुत से कारोबार से जुड़ा हुआ था मतलब बहुत से उद्योग थे जिससे वह बहुत सी कमाई करता था और उसके जितने भी बिजनेस थे उसमें से लगभग सभी अपने परिवार के सदस्यों के नाम कर रखा था और स्वयं ही उस बिजनेस को

चलाता था। मत्स्य उद्योग के डूब जाने पर उसका भंडाफोड़ होता है उससे पता चलता है कि वह उन सभी कारोबार से प्राप्त होने वाले पैसों का कहाँ–कहाँ लगाता है। जिसके बारे में जानकर एलिस को उसके किये पर उसे ठगा हुआ महसूस होता है। वह सोचती है जिसके लिए उसने इतना पूजा व्रत किया वही उसे धोखा देता रहा। “आधुनिकता की आड़ में यौनिकता उद्योग मेरे बेटे के नाम पर, पूण्य के कारोबार माँ-बाप के नाम पर...खुद तो हाथ झाड लिया...मेरा क्या है!”[83]

“बिजारिया का बिजनेस पार्टनर घोष कैथरीन के बारे में कहता है कि “मत्स्य कन्याएं ढूढ़ने गया होगा उनका पति। यौन-उद्योग में कड़ी प्रतियोगिता है। रोज नए स्वाद के लिए नई-नई लडकियाँ चाहिए। किस्म-किस्म की लडकियाँ, गोरी, काली, भूरी, पीली, नीली और बिल्लौरी और सपनीली आँखों वाली, बिंदास और शर्मीली...जवानियाँ वैसे भी दो से पांच साल में ढल जाती हैं, सो हमेशा फ्रेश माल चाहिए। दुनिया भर में करोड़ों लडकियाँ जवान हो रही हैं। बनी रहे तीसरी दुनिया की गरीबी, बनी रहे पश्चिम-पूरब की स्वेच्छाचारी वृत्तियाँ, लडकियों की कोई कमी नहीं। फैशन शोज, मोडलिंग, रिमिकिसंग। कितना कपड़ा? कैसे ढंकें की देह और एक्सपोज्ड हो जाय। मछलियों की तरह ही धंधा है जवान लडकियों का।”[84] जिम मानवीय संवेदनहीनता की वह चरम अभिव्यक्ति है जिसके आगे कोई दिशा नहीं बचती। उपन्यासकार संजीव जिम की अस्वाभाविकता को उसकी अस्वाभाविक जन्म-प्रक्रिया से दिखाते हैं। इतना ही नहीं वह आधुनिक तथा ज्ञान और संवेदनहीन मनुष्य को समाज में एक समस्या के रूप में घोषित कर देते हैं। जिम का पिता बिस्नू बिजारिया कम अस्वाभाविक नहीं होता है। वह पूरे विश्व में मांस का व्यापार करता है। पूरे विश्व में उसके कई जगह उसका मांस का बिजनेस अलग-अलग लोगों के नामों से चल रहा था। वह आवश्यकता से कहीं ज्यादा पैसा कमाता है। उसकी एक ही ख्वाईश होती है अपनी जिन्दगी की अजर अमर होना और हमेशा युवा ही दिखना चाहता है अर्थात वह कभी बूढा होना नहीं चाहता है। इसके लिए वह विज्ञान की शरण में जाता है। वह अपने कमाई का बहुत सारा धन खर्च करता रहता है जिससे कहीं से कोई ऐसी दवा बन सके उसकी खोज हो सके जिसे खाकर वह हमेशा जवान युवा बना रह सके और जीवन के रस का पान करता रहे। बिस्नूबिजारिया के इसी अमरत्व

की चाह ने उसे एक बहुत ही संवेदनहीन खूंखार दरिंदा बना दिया था। मांस-मछली के धंधे का मालिक बिस्नू बिजारिया के लिए मनुष्य मात्र पदार्थ के अलावा कुछ भी नहीं था। उसकी अपनी लैब थी जिसमें दुनिया के बहुत से जैव-वैज्ञानिक उसके गुलाम बने अजरत्त्व के प्रयोग में लगे हुए थे। लैब में किसी भी प्रकार की कोई सीमा नहीं रही लैब में हर प्रकार के प्रयोग चल रहे थे अर्थात किसी भी प्रकार की संवेदनशीलता मानवीयता की कोई सीमा बची नहीं थी। यह विज्ञान के चरम दुरूपयोग की कार्यशालाएँ रही हैं।

भारतीय समाज और संस्कृति की भूमिका के निर्माण में योगदान देने वाले प्रमुख्य आचार्य रहे- "चाणक्य, मनु, शंकराचार्य, मुहम्मद साहब, वांशिगटन, फ्रेंकलिन, जेफरसन या रैले जैसे लोग काफी सचेत बुद्धिजीवी थे। जाति-धर्म, सेक्स और स्वामी का सवाल आने पर बड़े-बड़ों का आसन डोल जाता है, विवेकानंद में भी जाति और स्वधर्म के प्रति कलर ब्लाइंडनेस था। पर वे ऐसे क्यों थे, इसका कोई जवाब मुझे नहीं मिलता शिवाय इसके कि हर व्यक्ति अपने समय की संतान होता है। मूल्य सापेक्ष होते हैं। सभ्यता का रथ कितने बेगुनाहों को पिसता हुआ रक्त पंकिल पथ से आज पूँजीवाद की प्रतियोगिता मूलक असामाजिक प्रवृत्ति तक आ पहुंचा जिसमें अब समाज नहीं होगा। एक-दूसरे को कुचलकर लोग आगे बढ़ेंगे। समाज नहीं होगा तो व्यक्ति दिनों-दिन अकेला और असहाय होता जाएगा।" उपन्यास अपने शीर्षक को सार्थक करता हुआ इंसान और समाज के बीच बने वैज्ञानिक रिश्तों को स्थापित करता हुआ आगे बढ़ गया और "मिथ, इतिहास, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नए से नए विषय तथा चिंतन की प्रयोग भूमि है यह उपन्यास और यह जीवन और मृत्यु के दोनों छोरों के आर-पार तक ढलकता ही चला गया है,जहाँ काल अनंत है, जहाँ दिशाएँ छोटी पड़ जाती है, जहाँ गहराइयाँ अगम हो जाती हैं और व्याप्तियाँ अगोचर...!"[85] एक संवेदनशील पात्र जो उपन्यास के दूसरे पात्रों की विचारधारा के अनुसार विपरीत धारा की ओर बहता है। जैसे उपन्यास का पात्र पिटर की समस्या भी कुछ इसी विज्ञान की ही देन है। जिसकी वजह से वह भी तमाम आतंरिक द्वंद्वों से गुजरता है। वह समाज के प्रत्येक पुरुष में अपना पिता ढूंढता फिरता है। सिर्फ एक सवाल पूछने के लिए कि-"उसने मुझे जन्म क्यों दिया। माना कि स्पर्म

बैंक में स्पर्म देकर वह निवृत्त हो गया, जैसे पेशाब-पाखाना किया, फ्लश किया निवृत हो गये। माना कि यह गैर इरादतन हत्या है...पर है तो हत्या ही।”[86]

संजीव ने मछुआरिन बेला के माध्यम से श्रमिक और निम्न वर्ग के जुझारू संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। जीवन का एक रूप यह भी है जिसके उद्देश्य कितने व्यापक और अलग हैं। यहाँ विस्नू किस्नू या जिम जैसों की संकीर्ण मानसिकता नहीं है। यहाँ अमरत्व की कामना नहीं है। है तो बस अपूर्णता में भी जीवन की सम्पूर्णता।”[87] जैव वैज्ञानिक खोज की स्थिति और वास्तविकता का बोध समाज और समाज संस्कृति तथा व्यवहारों रिश्तों के बीच स्थापित नवीनीकरण की पद्यति पर प्रश्न चिन्हन लगाते हैं। “मनुष्य और मानवता की भलाई की दुहाई देकर अंधाधुंध आगे बढ़ती जैव-वैज्ञानिक खोज आखिर कहाँ जाकर थमेगी? इस क्षेत्र में अनुशासन की कोई आचार-संहिता होती चाहिए कि नहीं? जीनोम डिकोड हो ही चुके हैं। आदमी ने एक व्यापक अर्थ में जीवन और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। वह मनुष्य के भूत और भविष्य के बारे में जानने की विधि निकाल रहा है। इतना ही नहीं जीवन की इकाई को उत्पन्न करने का दायित्व जिन शुक्राणुओं और डिम्बों पर था वे अब कृत्रिम तौर पर उत्पादित किए जा सकते हैं। फिर बचा ही क्या?”[88] संजीव हमारे संभावित भविष्य का एक डरावना दृश्य पेश करते हैं। सब कुछ बाजार में बिक रहा है। “पूरा देश बैठा है बेचने। क्या बेच रहे हैं लोग? मछली? मांस? सिर्फ मछली नहीं, सेक्स, आँख, दिल, खून, किडनी, स्टेम सेल्स, कोख...।”[89]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि जैव जीवन की वृद्धि और विकास के लिए वैज्ञानिक प्रगति और कृत्रिमता प्रकृति रुपी सहजता और संवेदनशीलता से छेड़छाड़ करना मशीनीकृत आभासी पटल की दुनिया का निर्माण करना है । अगर वैज्ञानिक प्रगति की जैव जगत से यूँ ही छेड़छाड़ जैसी गतिविधियाँ होती रही तो वह दिन दूर नहीं जब वास्तविक समाज और समाज के लोगों की सहजता दुनिया से गायब हो जाएँगी। जिसका परिणाम सृष्टि के विनाश का सूचक है। इसलिए मनुष्य को बदलते समय और समाज की गतिविधियों और पाश्चात्य संस्कृति के अधिकता पर प्रभाव पर अंकुश लगाने की जरूरत है। तभी भारतीय समाज और संस्कृति की सहजता को बचाया जा सकता है।

4.5 बदलते सामाजिक मूल्य और सामाजिक संस्थागत नैतिकता

(विवाह संस्था के विशेष संदर्भ में)

भारतीय समाज में विवाह संस्था प्राचीनकाल से ही बहुत विधि-विधान से चली आ रही है। समाज में 'विवाह संस्था' मानव जीवन-निर्वाह हेतु बनाया गया है। यह मानव जीवन के चारों पुरुषार्थों में से एक है। जिसके साथ मनुष्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार विवाह स्त्री-पुरुष के बीच रिश्तों का एक पवित्र-बन्धन है। जिसके कुछ नियम कायदे होते हैं। जिसको आधार बना कर सृष्टि का विकास सदियों से चला आ रहा है। ऐसे सामाजिक व्यवस्था को सामाजिक अधिकार मिला हुआ है। लेकिन आधुनिक विचारधारा ने चली आ रही विवाह-रूपी इस संस्था पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। जिसकी वजह से इस संस्था में काफी हद तक इसके नियम-कायदे जो कि पुरुष समाज को ध्यान में रखकर बनाए गए थे उस पर प्रश्न चिन्ह्न लगाना शुरू किया ही था कि वैश्वीकरण और पूंजीवादी विचारधारा ने सामाजिक धरोहर के रूप में व्याप्त विवाह संस्था को ही धत्ता बता स्त्रियों ने अपनी बेड़ियों को पूरी तरह से नकारा शुरू कर दिया। वह शोषण के प्रतीक, नारी अस्तित्व को अस्तित्वहीन बना देने वाली सस्था का उलंघन करने लगी । कहने का तात्पर्य यह है कि बदलते समय और समाज के साथ बहुत सी अकाट्य सहज स्वीकार कर लेने वाली मान्यताएं वर्तमान तर्कशील और बौद्धिक समाज में काफी हद तक बदल गई हैं। लेकिन भारतीय समाज में आज भी उपन्यासकार ने जो विषय उठाया है उसे मान्यता नहीं मिल पायी है। भले ही हम आज वैश्विक स्तर पर समाज में होने वाले सारे परिवर्तनों को स्वीकार कर समय की मांग के अनुसार तीव्रगति से वैश्विक रेस में शामिल होने की होड़ में हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि आज भी हम सभी अपनी परम्परा और समाज व संस्कृति की उन दकियानूसी मानसिकता से आज भी नहीं निकल पाए हैं। ऐसा नहीं है कि जिसकी बात यहाँ पर उपन्यासकार कर रही हैं वह कोई नयी बात है।

भारतीय समाज में उसे सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण उसे आज भी खुलकर स्वीकृति नहीं मिल पायी है लेकिन समाज में ऐसा पहली बार हो रहा है, ऐसा नहीं है। जैसाकि उपन्यास के शीर्षक से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता की उपन्यासकार किस मकसद या विचार या कहे कथानक को लेकर एक नये कलेवर में समस्या को ढालने की कोशिश करने की तरफ इशारा करती हैं। लेकिन इस उपन्यास को पढने के बाद यह समझ पायी हूँ कि आज 21वीं सदी में भी आकर आधी दुनिया में सर्वव्याप्त आधी दुनिया के सच को स्वीकार कर पाना पुरुष समाज के लिए सहज नहीं है जबकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता की एक स्त्री जो भी सोचती है जैसे भी रहने या आजाद रहने की सोचती है उसका सहयोगी कोई और नहीं वह पुरुष ही होता है। अगर किसी प्रकार की स्वतंत्रता को लेकर स्त्री गलत या गुनहगार है तो पुरुष भी बराबर का ही गुनहगार होता है अगर नही है फिर भी दोनों का आपसी सहमति होती है लेकिन हमारा समाज केवल स्त्री पर ही सवाल उठता है उसे ही चरित्रहीन कहता है क्यों? मैं इस बात से भी इनकार नहीं कर रही हूँ की ऐसा नहीं है की समाज में विद्यामान पुरुष ही ऐसा बोलते हैं। पुरुष के अधीन या कहे पुरुष की विचारधारा को स्वत: स्वीकार कर लेने वाली स्त्रियाँ जो प्राचीन काल से चली आ रही मानसिकता या परम्परा की वाहक रही हैं उनका भी मानना यही है।

‘कस्बाई सिमोन’ उपन्यास की नायिका ‘सुगंधा’ और मुख्य नायक ‘रितिक’ दोनों बिना शादी किये साथ रहने का निश्चय करते हैं। दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। लेकिन दोनों ही विवाह बंधन में बधना नहीं चाहते हैं। दिल्ली जैसे- शहर में दोनों नौकरी करते हैं। पहले अलग-अलग रहकर बराबर मिलते है। फिर समाज और पड़ोसियों के व्यंग्य बाणों को झेलते-झेलते काफी थक जाने के बाद भी दोनों अपने निश्चय पर अडिग रहते हैं। यहाँ तक की दोनों के परिवार वालों के कहने पर भी दोनों ने शादी करने से मना कर दिया। उपन्यास की नायिका सुगंधा कभी भी विवाह बंधन में बधना नहीं चाहती थी वह हमेशा कहती है, मैं शादी रुपी समाजिक बंधन से स्वतन्त्र हो जीवनयापन करने में हमेशा विश्वास करती हूँ। ‘रितिक’ सुगंधा से प्रेम करता है। दोनों एक-दूसरे के साथ खुश रहते हैं। यहाँ तक रितिक अपने घर में इकलौता बेटा था उसने पिता के बहुत कहने पर भी उनकी बात नहीं मानी और न ही माँ की बातों को

तवज्जों दिया अंतत: वह अपने जीवन और काम में इतना व्यस्त हो गया कि उसने घर आना जाना ही छोड़ दिया। रितिक को सुगंधा बहुत प्रेम करती थी उसके अलावा उसने किसी के बारे में कभी नहीं सोचा वह उसी के साथ रहना चाहती थी हमेशा लेकिन वह कभी भी विवाह जैसी संस्था में बधना नहीं चाहती थी। किराये के मकान में रहते हुए उन दोनों ने काफी दिक्कतों का सामना किया। और फिर दोनों ने मिलकर अपना मकान भी ले लिया। लेकिन बदलने समाज और नई पुरानी विचारधारा के क्लेश की वजह से दोनों के बीच प्रेम की गहराई कम होती गई। साथ रहते-रहते रितिक के मन में कहीं न कहीं शादी, बच्चा, आने लगा था वह चाहता था शादी और बच्चा पर कहीं न कहीं वह सुगंधा की बातों का भी ध्यान करके उस ख्याल को आने से रोक लेता था। बहुत सी बातें होती हैं दोनों के बीच समय बीतने के साथ झगड़े-लड़ाई होने लगी। जिसकी वजह से दोंनों के बीच दूरिया बढ़ती गई और एक दिन गुस्से में रितिक ने बोल ही दिया ‘रखैल’ शब्द जो किसी भी के लिए उसके स्त्री सम्मान के विपरीत था जिसका मतलब यह था कि यह बात वह इंसान बोल रहा है जो प्रेम करता है जिसकी नज़रों में मेरी इज्जत है।

सुगंधा को यह बात उसे उसके सम्मान के विपरीत लगी और उसने उससे अलग होने का निश्चय किया। वह अलग हो माँ के पास कुछ दिनों के लिए भोपाल चली गई। और ईधर ‘रितिक’ ने भी उसकी सुध नहीं ली। क्योंकि समझौते के मुताबित उसकी प्रेमिका एक स्वतन्त्र स्त्री थी जिसको जाने या अलग होने से रोकना उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर था। अलग होने के बाद सुगंधा अपने ही शर्तों पर जीवनयापन करती रही। उसके जीवन में रितिक के बाद पहले ऋषभ नामक प्रोफेसर आते हैं जो शादी-शुदा होने के बावजूद सुगंधा से सम्बन्ध बनाते हैं। उसके द्वारा गलत व्यवहार किये जाने पर वह उन्हें छोड़ देती है और तीसरा व्यक्ति आकाश आता है जो बैंक में नौकरी करता है उसकी संगति में आती है । उसे वह व्यक्ति काफी अच्छा लगता है। दूसरी तरफ समाज में व्याप्त उपन्यास में गौण कहानी भी चलती रहती है, उसका स्वरूप अलग जरुर है लेकिन वह उतनी की महत्त्वपूर्ण है जीतनी की सुगंधा की कहानी। इस कहानी के माध्यम से यह बताने की कोशिश की गई है कि समाज और समाज के लोगों का नियम और सोच कितनी ओछी है। जब सुगंधा जैसी पात्र अपने जीवन को बेबाक हो दुनिया के सामने सच के साथ जीना

चाहती है तो उसे बहुत सी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है लेकिन दूसरी तरफ वहीं समाज और समाज के लोगों के द्वारा पति की आड में किया जा रहा कुकर्म मान्यता प्राप्त है इसलिए सब माँफ होता है। यह किसी भी रूढ़िवादी समाज की सच्चाई है कि समाज में चुपके-चुपके अनैतिक और भ्रष्ट काम होते रहे हैं। समाज के लोगों का यह दोहरा चेहरा ही उपन्यासकार के द्वारा चिन्हित कराया गया है। सुगंधा की दोस्त कीर्ति का पति और उसका नाजायज सम्बन्धों के बीच के रहस्य का अवलोकन करने पर पाते हैं कि उसकी स्थिति सुगंधा से भी कहीं ज्यादा भयानक है. अंतर बस इतना है कि वह अपने पति की स्वीकृति से कर रही है। लेकिन समाज की नजर में समाज के बने बनाये नियम क़ानून को खोखला वह ज्यादा कर ही रही है और इतना ही नहीं उसका ही पति अपने मुनाफे के लिए कहीं न कहीं उससे करवा रहा है।

आज के आधुनिक समाज में आपसी रिश्तें और इसकी अहमियत दिन-प्रतिदिन घटती चली जा रही है। सच कहे तो समाज और समाज के लोगों द्वारा स्वयं अपनी परम्परा और संस्कृति की झूठी चाल चलकर निभा जरुर रहे हैं दुनिया की नजर में, लेकिन सबसे बड़े धोखेबाज वही लोग बने हुए हैं जो सच में उसकी सुरक्षा का बेड़ा उठाये हुए हैं। सुगंधा अपनी जिंदगी में बहुत से सामाजिक नैतिक दंश झेल-झेलकर आम बन चुकी है उसे अब फर्क नहीं पड़ता है ऐसे समाज और समाज के अनुयायियों से। जिसके भक्षक वह खुद ही बने हुए हैं।

आधुनिक स्त्री की सोच जीवन से त्रस्त होने के बाद -"उफ़! ये विवाह की परिपाटी। गढ़ी तो गई स्त्री के अधिकारों के लिए जिससे उसे और उसके बच्चों को सामाजिक मान्यता, आर्थिक संबल आदि-आदि मिल सके किन्तु समाज ने ही इसे तमाशा बना कर रख दिया। मैं इस तमाशे को नहीं जीना चाहती थी। मैंने सोच रखा था कि मैं कभी विवाह नहीं करूँगी। माँ के अनुभवों की छाप मेरे मन-मस्तिष्क पर गहरे तक अंकित थी। उसे मैं चाहकर भी मिटा नहीं सकती थी।"[90] कहते हैं कि जीवन को अगर सुचारू रूप से जीना है तो हमें अपने भूत और भविष्य को ध्यान में रखकर नहीं चलना चाहिए लेकिन सच्चाई यह है कि दोनों ही किसी का पीछा नहीं छोड़ते हैं। भूत हमें पुन: गलती न करने की शिक्षा देता है लेकिन

साथ-ही साथ भूत की न भूलापाने वाली यादों को भी कुरेदता रहता है जिससे निकल पाना मुश्किल ही होता है। यहाँ पर लेखिका द्वारा विवाह संस्था को नकारने की वजह उसका भूत ही है जिसे वह जानती है। जिसकी वजह से वह विवाह संस्था को स्त्री पात्र के पैरों की बेड़िया समझती है।

वैश्वीकरण के दौर में बदलते सभी रिश्तों के मायने और बदलती प्रेम की प्रगाढ़ता की परिभाषा- “आजकल जमाना ऐसे ही लोगों का है। वही सुखी है जो कामचोर है, वही सुखी हैं जो दादागिरी करते रहते हैं, वहीं सुखी हैं जो अपने अधिकारों को साम-दाम-दण्ड,भेद से पटा कर चलते हैं। मुझमें इनमें से एक भी गुण नहीं हैं। आज के समय में काम करने की योग्यता को गुण नहीं अवगुण की श्रेणी में गिना जाता है। यदि आप सिफारिशी हैं तो सर्वाधिक योग्य हैं।”[91] एक प्रसंग आता है जब रितिक द्वारा पूछा जाता है कि वह बिना शादी किये जीवन व्यतीत करना चाहता है तो नायिका का स्वाभिमान में यह कहना कि-“ये किसने कहा कि मैं तुमसे शादी करना चाहती हूँ? कि तुमसे बच्चे पैदा करना चाहती हूँ? तुम्हें पसंद करती हूँ बस, इसीलिए तुम्हारा साथ चाहती हूँ।’ मैंने कहा था। ‘फिर पसंद? प्रेम नहीं?

‘हाँ हाँ, वही, प्रेम करती हूँ तुमसे।’ मेरे साथ रहोगी, बिना शादी किए? लिव इन रिलेशन?’ रितिक ने चुनौती- सी देते हुए पूछा था और मैं रितिक की जाल में फंस गई थी। कारण मैं अपने जीवन को अपने ढंग से जीना चाहती थी।”[92] 21वीं सदी की स्त्री पूरी तरह से स्वतंत्र हो चुकी है अब उसे किसी चीज के लिए पुरूष पर निर्भर होकर जीवनयापन करना स्वीकार नहीं रहा। वह सचेत हो अपने अस्तित्व की रक्षा स्वयं कर पाने के लिए योग्य हो चुकी है उसे अभी किसी के साये की जरुरत नहीं है। अगर वह पुरुष का साथ चाहती है तो आपसी प्रेम, सौहार्द, और आत्मसम्मान के साथ न कि ‘पुरुष’ रुपी मालिक पति को। पुरुषों द्वारा बनाई गई गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मांग करने लगी हैं। अपने विवाह संस्था को नकारकर पुरुषवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर गहरी चोट भी करती हैं। मध्यवर्गीय समाज में स्त्री का जीवन उच्च वर्गीय समाज और संस्कृति से कहीं अलग है। दोनों के ऊपर सामाजिक बेडियां अलग-अलग रूपों में लागू होती हैं। किसी के लिए बेड़ियाँ, बेड़ियाँ है, तो किसी के लिए विकास के उच्चतर शिखर तक पहुँचने का आधार। “सुगंधा तुम्हारा यह अपना जीवन

है, अपना निर्णय है लेकिन इस पूरे मामले पर एक बार ठण्डे दिमाग से सोचना। तुम नीना गुप्ता, सुष्मिता सेन या करीना कपूर नहीं हो, तुम एक कस्बे की मध्यवर्ग की लड़की हो, ये सब मध्यवर्ग और महानगरों के लोगों के जीने के तरीके हैं, तुम जैसी लडकियां दुःख ही पाती हैं, चैन-सुकून, अधिकार और सम्मान नहीं। आगे तुम स्वयं समझदार हो।”[93] ऑफिस के कर्मचारी सिकरवार के द्वारा यह कथन एक कस्बाई लड़की के लिए सच में कठिन है। समाज के जो लोग बड़े-बड़े सेलिब्रेटी के लिए उनके जीवन जीने के तरीके और रहन-सहन को सराहते हैं और उनको सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। वही लोग अपने समाज की किसी आम लड़की के दुश्मन हो जाते हैं, तब इनकी समझ में समाज की परम्परा और संस्कृति का विघटन होने लगता है। जिसकी तरफ सुगंधा की विचारधारा को स्वीकारते हुए भी सिकरवार उसे समझाने के उद्देश्य से कुछ बात कहता है। “स्त्रियों के लिए प्रेम का पात्र बार-बार बदलना संभव नहीं होता है। देह पात्र बदल सकते हैं, नेह-पात्र नहीं।”[94]

रितिक के साथ स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करती हुई सुगंधा सोचती है कि वह स्वतंत्र होते हुए भी कहीं न कहीं स्वभावत: “स्त्री स्वयं ढल जाने देती है पुरुष की इच्छाओं के अनुरूप।”[95] जिसको वह स्त्री की सहज स्वभाव की देन मान स्वीकार कर आगे बढ़ जाती है। आधुनिक स्त्री स्वतंत्र जीवनयापन व्यतीत करना जरूर चाहती है कर भी रही हैं लेकिन जिसकी वजह से वह समाज और परिवार पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती है कहीं न कहीं स्वयं भी उसे स्वीकार कर उसके साथ को ही जीवन का सुखद पल है जिसे महसूस करना भी चाहती है। ऐसे में आधुनिक स्त्री द्वन्द्वग्रस्त हो जीवनयापन करने के चक्कर में अकेलापन की शिकार होती हैं। जबकि सच्चाई यह है की जब प्रकृति ने ही दोनों को अधूरा-अधूरा बनाया है। दोनों के आपसी मिलन और प्रेम-सौहार्द से ही सृष्टि की कल्पना की जा सकती है, तो किसी के द्वारा किसी को नकार के किसी के वजूद की कल्पना करना महज़ मूर्खता के और कुछ नहीं है, क्योंकि जब एक-दूसरे के संसर्ग के बिना दोनों के अस्तित्व को नहीं स्वीकारा जा सकता है तो आपसी समझ और बराबरी के साथ जीने की कल्पना करना जरुरी है न कि किसी के द्वारा किसी के नकार में जीवन की सच्चाई है और न ही ख़ुशी। यही प्रकृति का नियम है। “बोउवार ने ठीक कहा था कि औरत को यदि

स्वतंत्रता चाहिए तो उसे पुरुष की रुष्टता को अनदेखा करना ही होगा।......हमारे भारतीय परिवेश में, हमारे मन-मस्तिष्क में परम्पराएं इस तरह ठूंस-ठूंस कर भर दी जाती हैं कि उनमें भले-बुरे को छांटने की कला हम भूल चुके होते हैं। यहाँ बंद दरवाजों के पीछे बनने वाले प्रतिकूल रिश्ते मान्य होते हैं, खुली सडक पर बनने वाले अनुकूल रिश्ते नहीं।"[96]

सुगंधा अपनी जिन्दगी अपने अनुसार जीने का निर्णय ले चुकी थी। यह निर्णय भारतीय परिवेश में मान्य नहीं है और न ही एक मध्यवर्गीय स्त्री इस तरह के कदम के बारे में ही सोच ही सकती है। लेकिन सुगंधा देश-दुनिया के रीति-रिवाज, समाज, संस्कृति से वाकिफ होते हुए भी, वह अपने अस्तित्व की पहचान तथा योग्य होने की वजह से किसी के अधीन हो जीवनयापन करना नहीं चाहती है। ऐसे में स्त्री स्वतन्त्र जीवनयापन का निश्चय वह पुरुष संसर्ग से न कर के समाज के उस रूढ़िवादी व्यवस्था से करती है जिसमें एक स्त्री की सहजता को समाप्त कर बेड़ियों में बाँधने जैसा व्यवहार किया जाता रहा है।

अभी तक भारतीय समाज में विवाह बन्धन बहुत सुचारू रूप से चलता रहा है। क्योंकि स्त्री अपने अस्तित्व के प्रति समझौता बराबर करती आई है। जहाँ उसने विद्रोह किया है, अपने हक की आवाज उठायी वहाँ सम्बन्ध-विच्छेद जैसी स्थिति बनना शुरू हो जाती है। जहाँ तक मेरा मानना है कि अभी तक जो सम्बन्ध चलते आ रहे हैं उसमें स्त्री का बड़ा योगदान रहा है । इसके दो कारण हो सकते हैं- पहला समाजिक मान्यताओं का बिना तर्क पालन करते रहना और दूसरा स्त्री का आत्मनिर्भर न होना।

आधुनिक स्त्री का स्वयं के फैसलों पर अडिग और आत्मविश्वासी होना तथा शिक्षित और जागरूक होने के साथ आत्मनिर्भर होना, यह सबसे बड़ा कारण रहा है और आज भी है। ऐसी स्त्रियाँ अपने 'स्व' के प्रति सचेत हैं। "स्वतंत्रता प्रिय स्त्री सदा संदेह की दृष्टि से देखी जाती है।"[97] सुगंधा का यह कथन आज सच में अपना अस्तित्व रखता है। "संबंधों में 'उपयोगिता ह्रास नियम' लागू होता है। तृप्ति की पुनरावृत्ति के बाद मन का ऐसा संतृप्त घोल तैयार हो जाता है कि उसमें और प्रेम और उत्साह, तथा काम-भावनाएं भी व्यर्थ होने लगती हैं, जैसे पेट भर चुकने के बाद थाली में बची हुई रोटी उपयोगिताहीन

हो जाती है। वैसे ही रोज सामने खड़ा रहने वाला साथी भी उबाऊ लगने लगता है। इस ऊब का विकल्प पुरुष आसानी से ढूंढ लेता है किन्तु स्त्रियाँ अपनी सहेलियों से बतकाव करके, खरीददारी करके या टेली धारावाहिकों को विकल्प के रूप में अपना लेती हैं। मेरे जैसी औरतें अपवाद हो सकती हैं पर किस सीमा तक? मुझे अपनी सीमा का पता नहीं।"[98]

उपन्यास में पात्र कौशिक और शाण्डिली की एक पौराणिक कहानी भी चलती है। जिसमें स्त्री सतीत्व और पति सेवा करने की तरफ इशारा किया गया है। जिसमें पति को जब अपनी गलती का बोध होता है और स्त्री शक्ति का पता चलता है तो वह अपनी गलती पर क्षमा भी मांगता है। उपन्यास में ऐसी पौराणिक कहानी के माध्यम से बताया गया है कि भारतीय समाज पुरुषों की श्रेष्ठा का समाज रहा है। जिस व्यवस्था को स्त्रियों ने सहज रूप से स्वीकार कर लिया था लेकिन आधुनिक समाज में यह विचारधारा कमजोर पड़ी है। स्त्री-विमर्शों की दुनिया में वाद-विवाद और संवाद की गति तेज हुई है।

21वीं सदी ने 'स्त्री चेतना' को और अधिक उभारने का कम किया है। स्त्रियाँ जागरूक पहले भी थी लेकिन कुछ ही को पता था कि उसका स्वयं का अस्तित्व भी है। लेकिन एक विमर्श के रूप में भारतीय समाज की स्त्रियाँ अपने स्व के अस्तित्त्व के लिए स्त्री-चेतना, स्त्री-विमर्श के साथ अपने अधिकारों के लिए खुलकर सामने आने का साहस करती हैं। इतना ही नहीं अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठती हैं।

सुगंधा को समझाते हुए उसकी सहेली कीर्ति उससे कहती है कि जो भी करना है शादी कर लो फिर करों कोई कुछ नहीं जान पायेगा इतना ही नहीं वह समाज जो तुम्हे आज गलत-सही बोल रहा है वही तुम्हें इज्जत व सम्मान भी देगा। और रही बात दूसरी अगर शादी नहीं करोगी तो बच्चे कहाँ से होंगे ? ऐसे में अभी तो ठीक है लेकिन बुढ़ापे में कौन तुम्हारी सेवा करेगा। कीर्ति की बात का जवाब देती हुई सुगंधा का यह कथन वर्तमान संवेदनहीनता की तरफ मार्मिक चोट करती है। "आजकल कौन से बच्चे अपने माँ-बाप के बुढ़ापे का सहारा बन रहे हैं? नई कालोनियों की ओर नजर दौड़ाओं तो वहां बच्चों के द्वारा

छोड़े गए बूढ़े पति-पत्नी ही दिखाई पड़ते हैं। वे भले ही गर्व से कहते फिरें कि हमारा बेटा अमेरिका में है, हमारा पोता लंदन में है, हमारी बेटी कनाडा में ब्याही है, क्या अंतर पड़ता है इससे?"[99] मनुष्य जीवन भर संघर्षशील रहता है। अपने बच्चों के प्रति समर्पित भाव से वह आजीवन संघर्ष करता है लेकिन जीवन के अंतिम समय में वह अकेला रह जाता है। आधुनिक शिक्षा व्यवसाय भी इसी पर केन्द्रित होती जा रही हैं जिसमें संवेदना या कहे नैतिक विचारों के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। समय और समाज की आवश्यकताओं ने उज्ज्वल भविष्य की महत्त्वाकांक्षा ने इंसान को उच्चतम शिखर पर पहुँचाया जरूर है, लेकिन जीवन की वास्तविक मानवीय संवेदना से दिन-प्रतिदिन दूर करता जा रहा है।

"कहने को ये दुनिया ग्लोबल गाँव में परिवर्तित हो गई है लेकिन एक-दूसरे के बीच की वास्तविक दूरियां बढ़ती जा रही है। गाँवों में फिर भी लोग एक-दूसरे को पहचानते हैं, एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार होते हैं लेकिन इस ग्लोबल गाँव में कोई किसी को नहीं पहचानता है, या यूं कहना चाहिए कि कोई किसी को पहचानना ही नहीं चाहता है। हर व्यक्ति अपनी नाक से आगे नहीं देखना चाहता है। फिर हम किस नाते-रिश्ते की बात करते हैं?"[100] परिवर्तन समाज का नियम है। लेकिन वह परिवर्तन (बदलाव) कहाँ तक सम्भव है। या अंधाधुंध बदलाव विकास की पहचान है। ऐसे तीव्र विकास की गति में कहीं न कहीं हम मानवीय संवेदना और आपसी सौहार्द को खोते हुए स्वार्थी और संवेदनहीन होते जा रहे हैं।

आधुनिक स्त्री सम्बन्ध रिश्तों के बीच अपनापन, प्रेम का अहसास सब चाहती है लेकिन वह बहुत जल्दी उससे ऊब भी जा रही है। आधुनिक सम्बन्ध जो भी हो उसमें दिन-प्रतिदिन ठहराव की कमी होती जा रही है। स्त्री स्वयं समझ नहीं पा रही है उसे क्या चाहिए और क्या नहीं। रिश्ते बहुत ही सहज और नाजुक होते हैं उसमें दिमाग से काम लेने पर सच में सहजता संकुचित हो जाती है और फायदा ज्यादा दिखने लगता है। इसलिए जब स्त्री अपने अनुसार रिश्तों की नजाकत को नहीं समझ पाती है तो वह अपने अनुसार रिश्तों को तर्क के तराजू पर तौलती है। "कुछ 'स्पेस' तो होना ही चाहिए पारस्परिक सम्बन्धों में, वरना सम्बन्धों में ठहराव आने लगता है। किसी ठहरे हुए पानी की तरह उसमें भी सड़ांध पैदा होने लगती है जो उस सम्बन्ध से जुड़े लोगों को बीमार बना देती है।"[101]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि समाज और सूचना प्रौद्योगिकी का अटूट सम्बन्ध है। क्योंकि टेक्नोलॉजी के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान का उद्देश्य ही समाज और समाज के लोगों तक सूचना पहुंचाने से है । अगर समाज और समाज के लोगों का अस्तित्व ही न रहे हो सूचनाओं का कोई वजूद नहीं रह जाएगा। विश्व समाज को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए तकनीकी यंत्रों के माध्यम से समाज की रूपरेखा परिवर्तित हो विकास कर रही है। ‘सूचना-प्रौद्योगिकी’ यंत्रों के माध्यम से ही विश्व के लोगों को एक ही समय में एक साथ जोड़ने में सफल हो रहे हैं । भले ही ‘सूचना-प्रौद्योगिकी’ का मुख्य उद्देश्य विश्व स्तर पर बाजार और व्यापार को बढ़ावा देना तथा विकासशील देश में अपना उपभोक्ता पैदा करना तथा बाजारीकरण की संस्कृति को जन्म देने से है।

आज 21वीं सदी का दौर और समाज के विकास की गति दिन-प्रतिदिन बहुत तेज होती जा रही है। जिसका प्रभाव वास्तविक दुनिया को धूमिल करता हुआ आभासी दुनिया का निर्माण कर रहा है। इतना ही नहीं इंसान की इंसानियत और उसकी सहजता एक-दूसरे के प्रति उसकी संवेदना सूखती जा रही है। मनुष्य सजीव प्राणी होते हुए भी मशीन बनता जा रहा है। दिन-रात पूँजी इकट्ठा करने ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने के लिए वह जीवन की सच्चाई, यहाँ तक की अपने सहज रिश्तों के बीच भी समझौता करने से नहीं चूक रहा है। पारिवारिक धरोहर के रूप में व्याप्त आपसी प्रेम रिश्तों की अहमियत आदि की बलि चढ़ाते हुए बाजारीकृत समाज और संस्कृति के बीच आदमी का स्वयं का जीवन और अस्तित्व वस्तु की भांति नफे-नुकसान जैसा उपभोक्ता मात्र बनकर रह गया है। समाज के लोगों की गति धरातल मार्ग से कम वायु मार्ग से ज्यादा तीव्र हुई है। सूचना का जंजाल इतना फ़ैल चुका है कि उसमें से सही सूचना प्राप्त कर पाना असम्भव सा होता जा रहा है। गलत जानकारी देना या बेवकूफ बनाने का तंत्र बढ़ता जा रहा है। जिसका प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में समाज पर पड़ रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के आ जाने से जितना हमारा जीवन सहज और सफल हुआ है उतने ही हम टेक्नोलॉजी के गुलाम होते जा रहे हैं, इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए हमें ‘सूचना प्रौद्योगिकी’

का इस्तेमाल सोच समझकर और सकारात्मक कार्यों के लिए ही किया जाना चाहिए। क्योंकि मनुष्य जीवन में होने वाली किसी भी प्रकार की अति स्वयं का ही नुकसान करती रही है।

संदर्भ-सूची:

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सूचना समाज, अनामिका पब्लिकेशर्स एवं डिस्ट्री ब्यूतर्स (प्रा)लि. नई - दिल्ली -110002, पृष्ठ सं. 32
2. https://hi.wikipedia.org wikki
3. सम्पादन-पंकज चतुर्वेदी, प्रतिनिधि कविताएँ संग्रह (गुलाम कविता डबराल), पेज-116
4. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाई अस्मिता और हिन्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-32 प्रथम संस्करण-1992, पृष्ठ सं.59
5. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सूचना समाज, अनामिका पब्लिकेशर्स एवं डिस्ट्री ब्यूतर्स (प्रा)लि. नई दिल्ली -110002, पृष्ठ सं. 108
6. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सूचना समाज, अनामिका पब्लिकेशर्स एवं डिस्ट्री ब्यूतर्स (प्रा)लि. नई दिल्ली -110002, पृष्ठ सं. 190
7. जोशी. ज्योतिष, संस्कृति विचार, मेघा बुक्स-दिल्ली-32, पृष्ठ सं. 80
8. जोशी. ज्योतिष, संस्कृति विचार, मेघा बुक्स-दिल्ली-32, पृष्ठ सं. 83
9. दत्तात्रय मुरुमकर, भूमण्डलीकरण और हिंदी कहानी- पृष्ठ सं-18
10. सच्चिदानंद सिन्हा, भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, (वाणी प्रकाशन-नई दिल्ली-02) पृष्ठ सं.47
11. https://samalochan.blogspot.in/2014/05/blog-post_31.html,
12. अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ. सं.215
13. रमेश उपाध्याय https://samalochan.blogspot.in/2014/05/blog-post_31.html,
14. अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 64
15. अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 100

16.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 146

17.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 166

18.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 222

19.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 227

20.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 264

21.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 322

22.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 301

23.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं.340

24.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 341

25.अखिलेश- निर्वासन पृष्ठ सं. 352

26.रवीन्द्र कालिया-मुन्नी मोबाइल, कवर पेज से

27.सुधीश पचौरी आलोचक का कथन, मुन्नी मोबाइल उपन्यास के कवर पेज से

28.अपनी माटी-ई पत्रिका वर्ष-2, अंक-21, जनवरी-2016

29. http://hindi:webdunia.com/hindi-books-review

30.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 9

31.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 10

32.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 66

33. मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं.66

34.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 67

35.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 73

36.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 93

37.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 97

38.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 98

39. मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं.105

40.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 106

41.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 107

42.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 147

43.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 204

44.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 221

45.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 221

46.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 229

47.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 302

48.मनोज सिंह, उपन्यास हॉस्टल के पन्नों से पृष्ठ सं. 307

49.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 9

50.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 9

51.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 15

52.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 12

53.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 23

54.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 31

55.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 45

56.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 59

57.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 67

58.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. 83

59.रूप नारायण सोनकर, सूअरदान पृष्ठ सं. ‘उपन्यास की भूमिका से’

60.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार पृष्ठ. सं. -‘उपन्यास की भूमिका से

61.सम्पादन-ओमप्रकाश सिंह, शीतांशु, उपन्यास का वर्तमान, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-02, पृष्ठ सं. 404

62.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ सं. 23

63.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 32

64.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 41

65.सम्पादन-ओमप्रकाश सिंह, शीतांशु, उपन्यास का वर्तमान, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002 , पृष्ठ सं. 407

66.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 52

67.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 62

68.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 62

69.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 64

70.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 66

71.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 67

72.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 76

73.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 77

74.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 77

75.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 97

76.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 102-103

77.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 128

78.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 133

79.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 138

80.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 144

81.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 220

82.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 220

83. संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 221

84.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 226

85.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. संजीव 226

86.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, उपन्यास कवर पेज से

87.संजीव, रह गई दिशाएँ इसी पार, पृष्ठ. सं. 163

88.सम्पादन-ओमप्रकाश सिंह, शीतांशु, उपन्यास का वर्तमान, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ सं. 409

89.सम्पादन-ओमप्रकाश सिंह, शीतांशु, उपन्यास का वर्तमान, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ. सं. 411

90.सम्पादन-ओमप्रकाश सिंह, शीतांशु, उपन्यास का वर्तमान, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ. सं. 412

91.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 13

92.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 26

93.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 31

94. शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 98

95.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 116

96.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 76

97.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 117

98.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 149

99.शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 171

100. शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स. 193

101. शरद सिंह, कस्बाई सिमोन, पृष्ठ. स.200

अध्याय-पाँच

हिन्दी उपन्यासों की भाषा और वैश्विक समाज

5.1- भाषा की संप्रेषणीयता और वैश्विक समाज

5.2-चयनित उपन्यासों में अंग्रेजी और स्थानीय बोलियों का हस्तक्षेप

5.3-इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा और साहित्य

हिन्दी उपन्यासों की भाषा और वैश्विक समाज

भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने भावों एवं विचारों को एक-दूसरे तक आसानी से पहुंचाने में सफल हो पाते हैं। समाज की निर्मित किसी भाषा के माध्यम से ही संभव हुई है। भारतीय समाज में हिन्दी भाषा और उसका साहित्य बहुत विस्तृत स्तर पर मौजूद है। साहित्य ही वह जरिया है जिसके माध्यम से तत्कालीन समय एवं समाज की स्थिति को समझा जा सकता है। वैश्वीकृत दौर में समाज के बदलने के साथ साहित्य की भी रूपरेखा में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। “भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी समाहार की संस्कृति। जो भी यहाँ आता है वह इस देश के तीज-त्योहार से, मूल चेतना से, व्यक्तियों के स्वाभिमान से इतना प्रभावित होता है और यहीं का बनकर रह जाता है इस समाहार की संस्कृति के कारण भाषा का बहुत विकास हुआ है। हमारी हिन्दी ने अन्य किसी भी कारण से कोई गुरेज नहीं किया कि- उसे अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपनाया है। अंग्रेजी, उर्दू, पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्दों को सहजता से आत्मसात किया है। हिन्दी ने सदैव ही शरणागत की रक्षा की है। विविधता में एकता इसकी विशेषता रही है।”[1]

भारत एक बहु आयामी तथा बहुभाषी समाज है। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी स्थिति, अपना परिवेश और अपनी संस्कृति होती है। भाषिक संरचना की दृष्टि से देखा जाय तो प्रत्येक प्रान्त की अपनी एक विशेष ‘भाषा’ या बोली रही है। कहीं पंजाबी, कहीं तमिल, तेलगु तो कहीं बांग्ला, मराठी और गुजरती। इस सभी जगहों पर लोगों द्वारा जो भाषा समझी बोली जाती है या जिसके माध्यम से जहाँ हिंदी प्रचलन में नहीं है वहाँ भी हिन्दी भाषा के द्वारा संवाद स्थापित किया जा सकता है। इसकी यह वजह भी हो सकती है कि हिंदी भाषा मात्र एक भाषा न होकर राष्ट्रभाषा है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है। ‘भाषा भावों की अनुगामिनी होती है।’ भाषा के माध्यम से हम अपनी बात एक-दूसरे तक पहुँचाने में सफल हो पाते हैं। किसी भी भाषा का एक सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य होता है। जिसके माध्यम से

भाषा अपने क्षेत्र विशेष का निर्माण करने में भी सफल होती है। भारत एक विशाल देश है। यहाँ पर हिन्दी भाषा के साथ अन्य भाषा और बोलियाँ भी विद्यमान हैं। जिनमें से 22 मुख्य भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल किया गया है।

हिन्दी भाषा की उत्पति 'सिन्धु' शब्द से मानी जाती है। प्राचीन समय में 'सिन्धु नदी' के आस-पास का क्षेत्र 'सिन्धु क्षेत्र' कहलाता था। 'सिन्धु' शब्द की 'स' ध्वनि को आक्रमणकारियों द्वारा 'ह' ध्वनि कहा गया और उस पर ईरानी (फारसी) का प्रभाव बताया जाता है। इस प्रकार 'सिन्धु' शब्द 'हिन्दु' शब्द बना और 'सिन्धी' शब्द से 'हिन्दी' रूप सामने आया है। यही आगे चलकर 'खड़ी बोली' हिन्दी के रूप में व्यवहृत होने लगी। 'हिन्दी नयी चाल में ढली- भारतेंदु' के कथानक को सार्थक करती हुई हिन्दी भाषा का परिष्कृत रूप सामने आया। "हिन्दी की यह शक्ति पहली बार दिखी हो, ऐसा नहीं है, हिन्दी 'नई चाल में ढलने' के बाद पहला आकस्मिक परिवर्तन छायावाद के दौर में दिखता है जब भाषा में एक गुणात्मक परिवर्तन हुआ। हजारों नये शब्दों के प्रवेश के साथ ही खड़ी बोली हिन्दी सहसा अवयस्क से वयस्क हो गई। भाषा में होने वाले दूसरे आकस्मिक परिवर्तनों का दौर संभवत: 1980 के आस-पास का रहा होगा जब वैश्वीकरण, मुक्त बाजार, उदार नीति, नयी प्रौद्योगिकी और सूचना क्रांति ने संक्रमणकालीन समाजों को जन्म दिया। इस समय हम फिर से एक बार हिन्दी में बहुत से नये शब्दों के प्रवेश को देख सकते हैं। इन परिवर्तनों ने हिन्दी की एक नयी संरचना निर्मित की और उसकी शुद्धता को दरकिनार करते हुए संप्रेषणीयता पर बल दिया।"[2]

आज हिन्दी पूरे भारत में 'राजभाषा' के रूप में विराजमान है। भारतीय भाषा परम्परा में आज हिन्दी का वहीं स्थान है जो प्राचीनकाल में संस्कृत भाषा का था। भारत का आधा हिस्सा 'हिन्दी भाषी' है। जहाँ पर सहज भाव से हिन्दी बोली और समझी जाती है। साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी में सृजनशीलता की अद्भुत क्षमता है। 'हिन्दी' भाषा साहित्यिक दृष्टि से भी समृद्ध भाषा है। हिन्दी भाषा एक ऐसी भाषा है जिसमें भाषा समाहार की अद्भुत शक्ति विद्यमान है। इसलिए भी हिन्दी अपनी शुरूआती दौर से ही अनेक भाषाओं के आक्रमण और संक्रमण के बावजूद अपनी पहचान को परिष्कृत

कर सहज एवं जीवंत रूप को प्राप्त करती हुई, आज समकालीन दौर में भी हिन्दी भाषा अपनी अनोखी पहचान और सार्थकता बनाये हुए है, जिसे हिन्दी भाषा के विकास का सूचक कहा जा सकता है। भाषा एक समाज सापेक्ष क्रिया है जैसे-जैसे समाज बदलता रहता है वैसे-वैसे भाषा में भी बदलाव आता रहता है। इस परिवर्तनशील समय में भाषा का स्वरूप भी विकसित हो रहा है। "लोक जीवन में भाषा का उद्देश्य भले ही एक-दूसरे के बीच संवाद तक सीमित हो या कहे की सूचना विचार अपनी भावनाओं को एक-दूसरे तक पहुँचाने का ही माध्यम रहा हो लेकिन जब हम व्यापक दृष्टि से इस पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि "विभिन्न संस्कृतियों के संवर्धन और सामुदायिक मेलजोल बनाये रखने में इनकी बेजोड़ भूमिका होती है।"[3]

आज 21वीं सदी में हिन्दी अब किसी एक क्षेत्र-विशेष की भाषा नहीं रही। वह वैश्विक हो तकनीकी कार्यों में भी प्रवेश कर रोजगार की भाषा बन रही है। हिन्दी भाषा विदेशों में भारतीय और उनकी भाषा हिन्दी एक रूप ग्रहण कर भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में पूरे विश्व में स्वीकार की जा रही है। वैश्वीकरण के इस दौर में भारत में व्यापर और बाजार को बढ़ावा देने के लिए, हिन्दी भाषा के ज्ञान के बिना यहाँ के अधिकतम लोगों से संवाद करना संभव नहीं होगा। आज भाषा का दृश्य और श्रव्य दोनों रूप कंप्यूटर, इंटरनेट और सूचना-प्रौद्योगिकी द्वारा एक व्यापक रूप ग्रहण करने में सफल हो रही है। यह सब मीडिया की ही देन है। मीडिया के माध्यम से आज हिन्दी वैश्विक स्तर पर विराजमान हो रही है। जिसमें पत्रकारिता, जनसंचार, जनमाध्यम और प्रिंट इलेक्ट्रोनिक मीडिया, सिनेमा, विज्ञापन, न्यू मीडिया आदि शामिल हैं।

"इक्कीसवीं शती बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही हैं और स्थलीय व भौगिलिक दूरियाँ अपनी अर्थव्यवस्था खो रही हैं। वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनर्संगठन की प्रक्रिया से गुजर रही है। ऐसी स्थित में विश्व की शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है। यदि अठारहवीं शताब्दी आस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व का प्रमाण देती हैं तथा

बीसवीं सदी अमेरिका और सोवियत संघ के प्रभुत्व के रूप में विश्व विख्यात है। आज स्थित यह है कि इक्कीसवीं सदी, विश्व समुदाय की मानें तो भारत और चीन की है। क्योकिं भारत और चीन विश्व की सबसे तेजी से उठने वाली अर्थव्यवस्था में से है। इन दोनों देशो के पास अकूत प्राकृतिक सम्पदा है तथा युवा मानव संसाधन है। जब किसी राष्ट्र को विश्व समुदाय में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व और स्वीकृति मिलती है तो उसके प्रति अपनी निर्भरता महत्त्वपूर्ण हो जाती है और वह राष्ट्र भी स्वयं महत्त्वपूर्ण बन जाता है। भारत की विकासमान अंतर्राष्ट्रीय स्थिति हिन्दी के लिए वरदान है।”[4]

पिछले दो तीन सालों में समाचार की भाषा में भारी बदलाव हुआ है। सूचना क्रांति ने भारतीय जीवन शैली पर भारी प्रभाव डाला। समाज बदला तो भाषा बदली और मीडिया का रूप भी बदल गया है। वर्तमान समय सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से वास्तविक दुनिया को आभासी दुनिया में तीव्र गति से बदल रहा है। मीडिया जगत में तरंगों की क्रांति के रूप में सूचनाओं का स्वरूप भाषा के माध्यम से ही संप्रेषित हो रहा है। जिसमें भाषा अहम भूमिका अदा कर रही है। लेकिन इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इस बढ़ते मीडिया के दौर में एक क्षेत्र-विशेष की भाषा अर्थात क्षेत्रीय बोलियों का या तो खात्मा होगा या वह वैश्विक स्तर पर विकसित हो संप्रेषण का माध्यम बनेगी। मातृभाषाओं के संरक्षण के लिए विश्व स्तर पर काम शुरू कर दिया गया है। “मातृभाषाओं के लिए विश्व स्तर पर यूनेस्को वर्ष-2000 से हर साल अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाता है और विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए देशी भाषाओं और संस्कृतियों का संरक्षण तथा बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करता है। बहुभाषिकता राष्ट्रों-समुदायों के बीच उपजी भ्रांतियों, मदभेदों को पाटने में सेतु का कार्य मिथकों-लोकोक्तियों से गुथें होने के कारण मातृभाषा के जरिये सीखने समझने की पर्याप्त, निर्बाध व सहज गुंजाइश रहती है।”[5] वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी भाषा और साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। भारत जैसे विशाल देश जो कि बाजार का सबसे बड़ा हब है, जहाँ पर व्यापार-प्रवाह के लिए हिन्दी भाषा ही एक माध्यम है जिससे आपसी संप्रेषण जमीनी स्तर तक सम्भव हो सकेगा। समकालीन मीडिया में हिन्दी भाषा की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने हिन्दी भाषा को रोजगार से जोड़ा है। हिन्दी भाषा को व्यावसायिक जगत की

भाषा से जोड़ने में विज्ञापनों का काफी बड़ा हाथ है। भारत में आर्थिक उदारीकरण, अर्थव्यवस्था के कारण आयी बहु-राष्ट्रीय कम्पनियाँ ने पाया की हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो भारत में एक बड़ा बाजार उपलब्ध करा सकती है। इसका एक कारण यह भी है कि भारतीय किसी भी भाषा का सम्बन्ध केवल भाषा तक सीमित न होकर पूरे भाषा-भाषी समाज से हैं जहाँ तक यह भाषा आसानी से बोली समझी जाती है। जब हम एक भाषा को केंद्र में रखकर बात करते हैं तो साथ ही साथ उससे सम्बन्धित समाज और संस्कृति का भी एक इतिहास जुड़ा होता है। जिसके बिना किसी भाषा पर बहस नहीं की जा सकती है। वर्तमान दुनिया बदलते भाषिक संप्रेषण के साथ विचारधारा, समाज और संस्कृति का तेवर भी बदल रहा है। टेक्नोलॉजी, बाजार और मीडिया के प्रवेश ने समाज और संस्कृति की संरचना को परिवर्तित कर दिया है। जिसके साथ ही भाषा की संवेदना भी शून्य होती चली जा रही है। बाजारीकरण ने समाज और संस्कृति के बाह्य जगत को बदलने में सफल रही तो मानवीय संवेदना को भी सुखानें से भी पीछे नहीं रही। बदलते समय और समाज के साथ मानवीय सम्वेदना शून्य हो सारे रिश्ते बाजार से खरीद कर लायी गई वस्तु के समान आकर्षण समाप्त होने के बाद व्यर्थ हो जाती है। 'कुंवर नारायण' अपनी कविता के माध्यम से मानवीय संवेदना की बदलती झांकी प्रस्तुत करते हैं-

"जब भी एक कहता है कि भावनाओं का रिश्ता तिजारत से बड़ा है

दूसरा जवाब देता है कि हर रिश्ता,

आर्थिक-बुनियाद पर खड़ा है।"

भाषा की मानवीय सम्वेदना दिन-प्रतिदिन घट रही है। सनसनी फ़ैलाने हेतु 'मीडिया भाषा' का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। भाषिक संवेदना की शून्यता मात्र खबर बनकर रह गई हैं। बाजारीकृत संस्कृति ने शब्द से उसकी जीवन्तता ख़त्म कर उसे बेजान बना दिया है। कवि 'निलय उपाध्याय' की कविता में अभिव्यक्ति समाज और संस्कृति की बेचैनी का एक दृश्य इस प्रकार है।

"बेचते-बेचते

खरीद लेने वालों पर टिका था बाजार

खरीदते-खरीदते बिक जाने वालों पर टिकी थी,

यह दुनिया”

वैश्वीकरण के दौर मैं भाषा समाज और संस्कृति का नया रूप मीडिया की ही देन है। आधुनिकता की भाषा में कहे तो बिना मीडिया क्रांति के कथाकथित ‘पिछड़े समाज और रूढ़िवादी संस्कृति से मुक्त पाना संभव न था। भारतीय समाज और संस्कृति में जहाँ ‘वैसुधेव कुटुम्बकम’ की भावना का तात्पर्य ‘पूरा विश्व परिवार है’ था। वहीं दूसरी तरफ आज ‘वैश्वीकरण’ का मतलब- ‘पूरा विश्व बाजार’ है। जहाँ वस्तु बनायीं जाती है, वस्तु बेची जाती है। जहाँ समाज बाजार है, लोग उपभोक्ता हैं और बाकी जो बचे उत्पादक या व्यापारी। मानवीय सम्वेदना मात्र छल है और कुछ भी नहीं। आज के समाज की यह नई सोच है। इसलिए भी समाज की हर-एक वस्तु का वजूद उसके बाजारी मूल्यों पर आधारित होता है। भाषा का अस्तित्व भी नई सोच को आत्मसात कर लेने मात्र से बचा रह सकता है। मीडिया सूचनाओं का जंजाल है। मीडिया जब उद्योग बन जाती है तो उसका बाजार लाभ कमाना मुख्य उद्देश्य हो जाता है। ‘इसी लाभ का शिकार कहीं न कहीं हमारी भाषाएँ भी हो रही हैं। जिससे भाषा तो व्यावसायिक हो रही है लेकिन भाषा की जीवन्तता पर खतरा बढ़ता जा रहा है। इस बात से इंकार भी नहीं किया जा सकता है।

जहाँ तक भाषा या हिन्दी भाषा की ‘लिपि’ का प्रश्न है, जिसका सम्बन्ध मुख्य रूप से हिन्दी भाषा के अस्तित्व और पहचान से जुड़ा है। शुरूआती दौर में जब हिन्दी ‘फॉण्ट’ का विकास नहीं हुआ था उस समय हिन्दी ‘रोमन लिपि’ में लिखी जाती थी और रोमन में ही हिन्दी सामग्री भी ‘इंटरनेट’ पर डाली जाती थी। उस समय तक ‘देवनागरी लिपि’ में हिन्दी के लिए फॉण्ट की समस्या थी। लेकिन देखते ही देखते ‘न्यू मीडिया की क्रांति’ ने शीध्र ही इस समस्या को भी दूर कर दिया। ‘गूगल ट्रांसलेशन साफ्टवेयर’ के आ जाने से ‘यूनिकोड फॉण्ट’ ने हिन्दी भाषा और दूसरे अन्य भाषाओं की दुनिया में क्रांति ला दी।

जिसने न्यू मिडिया के विकास का रास्ता भी खोल दिया है। वर्तमान समय में हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए ‘एम. एच. आर. डी.’ और ‘यू.जी.सी.’ जैसी संस्था द्वारा ‘ई.पी.जी.पाठशाला प्रोजेक्ट’ के माध्यम से हिन्दी के पाठ्यक्रम को ऑनलाइन विश्व स्तर पर उपलब्ध करवाने और हिन्दी भाषा के वैश्विक विकास के लिए सराहनीय प्रयास किया जा रहा है। जिसके माध्यम से हिन्दी भाषा और साहित्य का परिष्कृत रूप विश्व स्तर पर सबको उपलब्ध कराया जाएगा। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा बहुत पहले ही अपनी सारी किताबें हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ऑनलाइन भी उपलब्ध करवा दी गई हैं। भूमण्डलीकरण और हिन्दी पुस्तक की सम्पादक कल्पना वर्मा के अनुसार “जो नई तकनीक है चाहे इंटरनेट हो, ई-मेल, ई-बुक, ई-कामर्स, सभी में हिन्दी का सफल प्रयोग हो रहा है। इंटरनेट पर हिन्दी की पुस्तकें, अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ दूसरे देशों के विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित बारह हजार पृष्ठों का ‘विश्व हिन्दी कोश’ इन्टरनेट पर उपलब्ध है। हिन्दी साहित्य के लगभग दो लाख पृष्ठ महात्मा गांधी अंतर्राष्टीय विश्वविद्यालय द्वारा इंटरनेट पर डाले गए हैं। डिस्कवरी चैनल, दो कार्टून चैलन आदि द्वारा हिन्दी में ज्ञानवर्धक सूचनाएँ प्रसारित होती हैं। टेलीविजन तथा रेडियों ने भी हिन्दी ने अपना वैश्विक स्थान बना लिया है।”[6] जिसमें सामाजिक विज्ञान के साथ विज्ञान की भी किताबें हिन्दी भाषा में उपलब्ध हैं। समकालीन समाज पूर्ण रूप से टेलीविजन, इंटरनेट, मोबाइल, फेसबुक, ट्विटर, व्हाटऐप आदि तकनीकी परिवेश को ‘साइबर वर्ल्ड’ के रूप में जाना जा रहा है, जो कि किसी भी देश काल सीमा से परे है, व्यापक है और विस्तृत है। इस हद तक कि मानव मन की भावनाएं पूर्ण रूप से स्वच्छंद होकर विचरण कर रही हैं। यहाँ पर न किसी को कोई बंधन है और न ही किसी तरह का कोई अवरोध। हर कोई अपनी स्थिति के अनुसार स्वतंत्र है और स्वच्छंद भी। लेकिन युवा पीढ़ी आज के अस्त-व्यस्त जीवन में भी एहसास को सहेजना चाहती है। ‘कुंवर नारायण’ कविता- ‘नई किताबें’ में इसी तरह के अहसास को रेखांकित किया गया है।

“अपने लिए हमेशा खोजता रहता हूँ।

किताबों की इतनी बड़ी दुनिया में,

एक जीवन संगिनी

थोड़ी अल्हड़, चुलबुली, सुन्दर आत्मीय किताब

जिसके सामने मैं भी खुल सकूं

एक किताब की तरह पन्ना पन्ना

और वह मुझे भी

प्यार से मन लगा कर पढ़े।।"

आज की युवा पीढ़ी चाहती तो है प्यार करना लेकिन मशीनीकरण के युग में स्वयं मशीन बनकर जीने को मजबूर है। इसलिए किसी अज्ञात कवि ने ठीक ही लिखा है-

नौकरी इस जन्म के लिए बहुत जरुरी है,

इसलिए प्रेम को अगले जन्म के लिए स्थगित करता हूँ।

वर्तमान समय में भाषा पर पड़ रहे अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता है लेकिन पुन: हिन्दी अपना एक रूप बदलकर वैश्विक दौर में विकास के पथ पर अग्रसर हो रही है। भाषा विकास की दृष्टि से यह संक्रमण का काल है। लेकिन धीरे-धीरे इस काल में भी ठहराव आएगा और हिन्दी भाषा का विश्वव्यापी रूप सभी पर राज करेगा। हिन्दी भाषा के विकास में भाषा का मीडियाकृत होना एक ऐतिहासिक घटना है। इसने हिन्दी का एक बहुत बड़ा जन-क्षेत्र तैयार किया है, जिसकी कल्पना नहीं की गई थी।

समकालीन मीडिया के दौर में हिन्दी भाषा 'हिन्दी संस्कृति' में अन्तर्निहित अस्मिताबोध को नये सिरे से समझने की जरुरत है तो दूसरी तरफ हिन्दी की अन्य बोलियों से सम्बन्ध दृढ़ करने की भी जरुरत है। इतना ही नहीं हमें 'उपभोक्तावादी संस्कृति' की बोली 'हिंग्लिश' के साथ संवाद करने और 'शुद्ध हिन्दी' भाषा रूपी मिथक को भी तोड़ने की जरुरत है। हिन्दी भाषा का प्रारम्भ से ही समाहार रूप रहा है न कि

शुद्धता जैसी बेड़ियों से जकड़ी रही है संस्कृत भाषा की तरह। हिन्दी भाषा अपनी प्रकृति के अनुसार अन्य भाषाओं से आये शब्दों का परिष्कार कर समायोजन करती और विकसित होती रही है। कोई भी भाषा अपने समय में जितनी उदार और सहज होती है वह समय के साथ-साथ बदलती रहती है। समय के साथ वह उतनी ही लोक प्रिय भाषा के रूप में विराजमान होती है। संस्कृत और लैटिन भाषा का उदाहरण हमारे सामने है। यह कहना गलत न होगा कि इन दोनों भाषा के अनुयायियों ने इसे लोगों के सामने सीमित किया।

इन भाषाओं ने अपने आपको व्याकरण के साथ जितना शुद्धतावादी रवैया अपनाया उतनी ज्यादा ये भाषाएँ सिमट कर रह गईं। 21वीं सदी सूचना-प्रौद्योगिकी और मीडिया के माध्यम से संस्कृत भाषा को भी पुन: जीवनदान देने हेतु इसके भाषायी ज्ञान के भंडार को विश्व स्तर पर पहुँचाने हेतु का काम शुरू हो गया है। यह बदलते समय और भाषा के प्रति बदलती मानसिकता की ही मांग है। “प्रख्यात आलोचक-विचारक डॉ. नामवर सिंह ने भी कहा है कि इक्कीसवीं सदी में भाषा और साहित्य का भविष्य बाजार तय करेगा। भाषा के विकास और उसके बदलाव के अध्येता डॉ.रामविलास शर्मा ने भी खडी बोली की उत्पत्ति का श्रेय बाजार को दिया है। बाजार ने खड़ी बोली के साथ-साथ अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि क्षेत्रीय बोलियों को भी लोकप्रियता प्रदान की है। ‘मैडोना’ जैसी ‘पॉप स्टार सिंगर’ को भी कबीर के पदों को गाने के लिए बाजार ने ही विवश या प्रेरित किया। इंडियन ओशेन ग्रुप ने गोरख पाण्डेय के ‘हिलेला झकझोर दुनिया’(भोजपुरी) गीत को गाया। अस्सी करोड़ की लोगों की भाषा का आश्रय लिए बिना आज विश्व की व्यावहारिक और व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन सम्भव नहीं।”[7] इस प्रकार हिन्दी व्यावहारिकता के साथ-साथ व्यावसायिक दुनिया में तीव्रता से अपना परचम लहराने के लिए सफल हो रही है। अब वह समय दूर नहीं है जब समाज में बनी हिन्दी भाषा के प्रति लोगों की उदासीनता स्वत: समाप्त हो जाएगीं। “हिन्दी समकालीन भूमण्डलीकरण के दौर में तेजी से एक सशक्त, सर्वत्र उपस्थित विश्व भाषा बन चली है। उसके अनेक स्तर अनेक रूप, अनेक शैलियाँ हैं और एक नयी अन्तरंग किस्म की बहुलता है। मुक्त बाजार, ग्लोबल जनसंचार, तकनीकी क्रान्ति और हिन्दी क्षेत्रों के

विराट उपभोक्ता बाजार ने हिन्दी को एक नयी शिनाख्त और ताकत दी है। संस्कृतवाद का दामन छोड़ बोलियों को अपने में समोकर उर्दू से दोस्ती स्थापित कर अंग्रेजी से सहवर्ती भाव में विकास पाती हिन्दी अपना 'ग्लोबल ग्लोकुल' बना रही है।-सुधीश चौधरी"[8] हिन्दी भाषा बदलते समय और समाज के साथ अपने आपको हमेशा आत्मसात की भावना से सहजता से बदलती और विकसित होती रही है। "जब सन 2000 में हिन्दी का पहला 'वेव पोर्टल' अस्तित्त्व में आया तभी से इंटरनेट पर हिन्दी ने अपनी छाप छोड़नी प्रारम्भ कर रही, जो अब रफ़्तार पकड़ चुकी है। नई पीढ़ी के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी ने भी इसकी उपयोगिता समझ ली है। मुक्तिबोध, त्रिलोचन जैसे हिन्दी के महत्त्वपूर्ण कवि प्रकाशकों द्वारा उपेक्षित रहे। इंटरनेट ने हिन्दी को प्रकाशकों के चंगुल से मुक्त कराने का भी भरसक प्रयास किया है। इंटरनेट पर हिन्दी का सफर 'रोमन लिपि' से प्रारम्भ होता है। और 'फॉण्ट' जैसी समस्याओं से जूझते हुए धीरे-धीरे यह 'देवनागरी लिपि' तक पहुँच जाता है। 'यूनिकोड, मंगल, जैसे 'युनिवर्सल फोंट्स' ने देवनागरी लिपि को कंप्यूटर पर नया जीवन प्रदान किया है। आज इंटरनेट पर हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित लगभग सत्तर ई-पत्रिकाएँ देवनागरी लिपि में उपलब्ध है।"[9] टेक्नोलॉजी ने भारतीय भाषाओं और बोलियों को इंटरनेट के माध्यम से प्रगति पथ पर अग्रसर किया है।

"अभिव्यक्ति" हिन्दी की पहली ई-पत्रिका है जिसने आज तीस हजार से भी अधिक पाठक हैं। अभिव्यक्ति के बाद अनुभूति रचनाकार हिन्दी नेस्ट, कविताकोश संवाद आदि ई-पत्रिकाएँ इंटरनेट पर अपनी छटा बिखेर रही हैं।"[10] वैश्वीकृत दौर में हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग बढ़ रहा है। हिन्दी भाषा और साहित्य वैश्विक स्तर पर लगातार लोकप्रिय हो रही है। यह कहना सही है कि "अगला दौर नवउदारवाद के बाद की हिन्दी का है, जो पिछले पंद्रह-बीस वर्षों से चल रहा है। इस दौर में दैनिक-साप्ताहिक अखबारों की संख्या में भारी इजाफा हुआ। इससे भी आगे बढ़कर हिन्दी भाषा पर मिडिया, टीवी चैनलों का असर पड़ा। इस नये मीडिया पर एक तरह की खिचडी हिन्दी चल रही है, जिसमें अंग्रेजी के शब्दों का धुआंधार प्रयोग चल रहा है। इसी का असर दैनिक अखबारों की हिन्दी पर भी पड़ा है। जिन अंग्रेजी शब्दों के लिए हिन्दी शब्द सुलभ हैं, उनका भी प्रयोग किया जा रहा है।

भूमण्डलीकरण का सबसे गहरा प्रभाव मिलावट का चलन है। यह मिलावट खानपान से लेकर भाषा तक में है। –नामवर सिंह”[11] हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है । बदलते समय और समाज में सूचना-प्रौद्योगिकी के आ जाने से भारतीय परिवेश में हिन्दी भाषा सभी के द्वारा बोली-समझी जाने वाली भाषा के रूप में विकसित हो रही है। वैश्विक दौर में टेक्नोलॉजी और ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ से अनभिज्ञ लोगों का विकास असम्भव है इसलिए टेक्नोलॉजी के इस दौर में टेक्निकल यंत्रों के माध्यम से जुड़कर ही हम विश्व स्तर पर अपना परचम लहरा सकते हैं। इसलिए हिन्दी भाषा और साहित्य भी बाजार और ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ के माध्यम से विश्व स्तर पर अपनी महत्ता का ज्ञान का गुणगान करती हुई विकसित हो रही है।

5.1- हिन्दी भाषा की संप्रेषणीयता और वैश्विक समाज

वैश्वीकृत दौर में हिन्दी भाषा का वैश्विक स्वरूप देखा जा सकता है। हिन्दी भाषा अब किसी क्षेत्र विशेष की भाषा न रहकर विश्व स्तर की भाषा हो गई है। वैसे देखा जाय तो ‘अंग्रेजी’ और ‘चाइनीज’ भाषा को छोड़कर तीसरे स्थान पर ‘हिन्दी’ भाषा के बोलने समझने वाले विश्व के हर कोने में मिल जाएंगे। वैश्विक स्तर पर हिन्दी का प्रचार-प्रसार भारत से दूसरे देशों को गए भारतीय मजदूरों अर्थात गिरमिटिया मजदूरों द्वारा ज्यादा हुआ है। जिसके माध्यम से वर्तमान समय में हिन्दी भाषा विश्व के कई देशों में फ़ैल चुकी है और एक संप्रेषणीय भाषा के रूप में सहज रूप से बोली समझी जा रही है। वैश्वीकरण के दौर में बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से देश के कोने-कोने तक हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार करने का मुख्य कारण यह भी है कि कम्पनियों को अपना समाज बेचने खरीदने के लिए ज्यादातर ग्राहक मध्यवर्गीय समाज के लोग थे ऐसे में उनसे संवाद के लिए उसकी सम्पर्क भाषा हिन्दी में अपनी सूचनाएं प्रसारित करने और उनके द्वारा संवाद स्थापित करने हेतु इंटरनेट की भाषा के रूप ने हिन्दी का विकास

और टेक्नोलॉजी के माध्यम से हिन्दी भाषा के साथ-साथ हिन्दी से सम्बंधित अन्य क्षेत्रीय बोलियों की लिपि को भी कम्प्यूटर की-बोर्ड पर उतारा गया।

वर्तमान समय में हिन्दी इंटरनेट की भाषा के रूप में पूरे विश्व में फ़ैल चुकी है। अंग्रेजी की भांति हिन्दी विश्व प्रसिद्ध भाषा के रूप में विराजमान हो चुकी है। वैश्विक दौर में हिन्दी की बोलियों पर स्थानीयता का प्रभाव देखा जा सकता है। बहुत ही रोचक और जीवंत रूप में साहित्य के माध्यम से बोलियों का प्रयोग किया जा रहा है। "आज पूरे संसार में करीब 2800 भाषाएँ बोली जाती हैं जिनमें से 12 भाषाएँ मात्र साहित्यिक महत्त्व की हैं। यदि बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से देखें तो सारे संसार में पहला स्थान चीनी भाषा का, दूसरा स्थान अंग्रेजी का और तीसरा स्थान हिन्दी का है। हिन्दी भाषा का प्रचलन भारत, नेपाल, मलेशिया, इंडोनेशिया, सूरीनाम, फिजी, गुयाना, मोरिशस ट्रिनिडाड एवं टोबैगों जैसे करीब पचास देशों में हैं।"[12] आभासी दुनिया के विश्व पटल पर हिन्दी भाषा और साहित्य विकसित हो दुनिया के कोने-कोने तक पहुँच रहा है और साथ ही साथ हिन्दी भाषा बोल-चाल सम्वाद स्थापित करने के एक भाषायी माध्यम के रूप में विकसित हो रही है।

"भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति भाषा का प्रयोग अपने परिवेश, स्थिति तथा संदर्भ के अनुसार करता है' आज के परिवेश एवं संदर्भ के अनुसार हिन्दी भाषा केवल साहित्यिक या सम्प्रेषण की भाषा नहीं रही। वह तो कामकाज, कार्य पद्धति, विज्ञान, तकनीक, प्रौद्योगिकी, विधि चिकित्सा वाणिज्य के साथ-साथ संगणक, सेल्युलर, इंटरनेट, सैटेलाईट सूचना सुपर हाइवे की भाषा बनने लगी है। संचार माध्यमों की समाज सापेक्ष्य सेवा माध्यम(सर्विस टूल्स) के रूप में प्रयुक्त हो रही है। सामाजिक सन्दर्भ के गतिशील प्रवाह में अपने-अपने गुणों को बढ़ा रही है। वह संचार की भाषा बन भाषाई क्षमता तथा भाषा व्यवहार को गति प्रदान कर रही है। संचार भाषा के सभी गुण हिन्दी में है। जिसके कारण वह आज विश्व भाषा बन रही है।"[13] हिन्दी भाषा ही भारतीय समाज में राष्ट्र भाषा बनने के योग है। क्योंकि हिन्दी भाषा की सहजता मानव मन की गहराई अपनी सहज मातृभाषा में ही सम्भव होती है। हिन्दी भाषा की महत्ता को बताते हुए "सरदार बल्लभ भाई पटेल ने कहा है कि- हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि राष्ट्रभाषा

की उन्नति बढ़ाने और उसकी सेवा करे, जिससे कि सारे भारत में वह बिना किसी संकोच या संदेह के स्वीकृत हो। हिन्दी भाषा का पट महासागर की तरह विस्तृत होना चाहिए जिसमें मिलकर और भाषाएँ अपना बहुमूल्य भाग ले सके। राष्ट्रभाषा न तो किसी प्रान्त न किसी जाति की है। वह सारे भारत की भाषा है।"[14] हिन्दी ही वह भाषा है जिसके माध्यम से पूरे भारत वर्ष के लोगों को एकता के सूत्र में बाधा जा सकता है। "व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी में सरलता, बोध सुलभता सुचारुता अधिक है। उसका लचीला रूप केवल भारतीय भाषाओं को ही नहीं अपनाता बल्कि विदेशी भाषाओं को भी वह सहजता से अपनाता है। हिन्दी की देवनागरी लिपि और वैज्ञानिकता को देख बाजार क्रांति ने उसे अधिक अपनाया है । आज के संचार युग के दौर में भाषा वैज्ञानिकों तथा विशेषज्ञों ने भविष्य वाणी करते हुए कहा है कि सूचना-संचार में केवल 14 भाषाएँ जीवित रहेंगी। उसमें हिन्दी भाषा का नाम है।"[15]

21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में अन्य भाषा बोलियों की शब्दावली और वैश्विक समाज की कुछ झांकियां इस प्रकार हैं- वैश्विक समाज और संस्कृति से जुड़े कुछ उदाहरण- भ्रष्टाचार लोकतंत्र के लिए आक्सीजन है, है कोई ऐसा राष्ट्र जहाँ लोकतंत्र हो और भ्रष्टाचार न हो ? जरा नजर दौड़ाइए, पूरी दुनिया पर, ये छोटी बड़ी राजनीतिक पार्टियाँ क्या हैं? अलग-अलग छोटे-छोटे संस्थान, भ्रष्टाचार के प्रशिक्षण केन्द्र, सिद्धांत मुखौटे हैं जिनके पीछे ट्रेनिंग दी जाती है।" [16]

वैश्वीकृत समाज और समाज की भाषा का बदलता तेवर संकलित उपन्यासों की भाषा के उदाहरण द्रष्टव्य हैं-**'उपन्यास: एक ब्रेक के बाद- अलका सरावगी**-भारत में **कम्पनियों** के प्रवेश ने भौतिक रूप से जहां देश समाज का विकासदर को आगे बढा रहा है वहीँ दूसरी तरफ हम देखते हैं कि भारतीय मानवता और सम्वेदना के गुण शून्य होती जा रही है। "**इण्डिया** की **'इकोनॉमिक बूम'** या आर्थिक उछाल के साथ-साथ इण्डिया में धीरज और सहनशीलता के गुण डूब गए। अब साफगोई का जमाना भी गया कि आप किसी चुभते हुए सच को बेझिझक कह डालें।"[17]

भारत यानी “इण्डिया के लोग दुनिया भर की फैक्टारियां खरीदते घूम रहे हैं। टाटा ने इंग्लैण्ड में स्टील फैक्टरी खरीद ली और बिडला ने अमेरिका में अलमूनियम की। के.वी. अपने अंदाज में हँसकर कहते हैं-**चीन का ड्रैगन 2007** में 9 प्रतिशत जीडीपी में बढ़ोतरी दिखाए तो क्या, इण्डिया का हाथी उससे एक सूता ऊपर 9.1 प्रतिशत तक पहुँचने वाला है।”[18]

“भारतीय कला और संस्कृति का बदलता स्वरूप और भारतीय कलाओं का विदेशीकरण गुरु की डायरी में लिखी बात की वास्तविकता “मैं-जो सब कुछ जानता हूँ, आनेवाले कल को भी और गुजरे हुए कल को भी तो खैर जानता ही हूँ। खरीद लो, खरीद लो, इसके पहले कि भारतीय कला **‘इनफ़ोसिस’** बन जाए और सारा माल विदेश जाने लग जाय। अब **‘आर्ट’ और ‘ब्लू चिप** में कोई अंतर नहीं बचा है।”[19]

उपन्यास: ग्लोबल गाँव का देवता-रणेन्द्र “पीजीटी गर्ल्स रेजिडेंशियल स्कूल। प्रिमिटिव ट्राइव्स आदिम जनजाति परिवार की बच्चियों के लिए आवासीय विद्यालय में विज्ञान शिक्षक।”[20] इस नौकरी से ख़ुशी के साथ-साथ यह दुःख भी था की आदिवासी इलाके के स्कूल है जहाँ का जीवन कठिन है। “ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता है ‘वेदांग’। यह ऊँगली पकड़कर बाँह पकड़ने वाली बात लगती है। यह कम्पनी है विदेशी और नाम रखा है **‘वेदांग’**, जैसे प्योर देशी हो। कितना चालू-पूर्जा है इसी से पता चलता है।”[21] ग्लोबल गाँव के देवता खुश थे। जो लड़ाई वैदिक युग में शुरू हुई थी, हजार-हजार इन्द्र जिसे अंजाम नहीं दे सके थे, ग्लोबल गाँव के देवताओं ने वह मुकाम पा लिया था। असुर-बिरिजिया, बिरहोर-कोरबा, आदिम जाति-आदिवासी सब मुख्यधारा में शामिल होने ही वाले थे।”[22] यही नियत है। वर्तमान आदिवासी समाज की इस वैश्विक दौर में उनका जीवन हमेशा संकटग्रस्त बना रहेगा अगर वे मुख्यधारा में शामिल नहीं होते हैं। क्योंकि अब उनके लिए पहले जैसा जीवनयापन संभव नहीं रहा।

उपन्यास: दौड़- अलका सरावगी- “प्रतिस्पर्धा से प्रतिस्पर्धा की तरफ जाती इस अंधी दौड़ में रिश्ते-नाते, मानवीयता, संवेदना शहर, सपना, लगाव, परम्परा सबका सब अर्थहीन, दकियानूस और बीता

हुआ उच्छवास भर है। यहाँ रिश्ते बहुत व्यावहारिक, रस्मी और सतही हैं। यहाँ शहर का अर्थ केवल रोजगार में खुलता है। यहाँ स्मृतिया एकदम व्यर्थ हैं और सपने सिर्फ तरक्की से जुड़े हैं। इस बाजार ने वह सब कुछ लील लिया है जो मनुष्य को मनुष्य बने रहने की ताकत देता है।"[23]

वैश्विक समाज की शिक्षा व्यवस्था – "समाज की तरह शिक्षा में भी वर्गीकरण आता जा रहा था। एम्.बी.ए में लड़के वर्ष भर पढ़ते, प्रोजेक्ट बनाते, रिपोर्ट पेश करते और हर सत्र की परीक्षा में उत्तीर्ण होने को जी तोड़ मेहनत करते। एम्.एम्.एस. में रईस उद्योगपतियों, सेठों के बिगड़े शहजादे एक.आर.आई. कोटे से प्रवेश लेते, जमकर वक्त बरबाद करते और दो की जगह तीन साल में डिग्री लेकर अपने पिता का व्यवसाय सभालने या बिगाड़ने वापस चले जाते।"[24]

अखिलेश अपने उपन्यास निर्वासन में कहते हैं- "देश इक्कीसवीं सदी की ओर ले जाया जा रहा था और संसार भूमण्डलीकरण की तरफ। दुनिया एक गाँव बनने के लिए फुदक रही थी। इसी घनचक्कर में हमारे बड़े-बड़े शहरों को रेलों के मार्फत परस्पर सुबह शाम के लिए जोड़ा जा रहा था। ट्रेन राजधानी से राजधानी को, बड़े नगर को बड़े नगर से वाबस्ता कर रही थीं।"[25] प्रस्तुत उदाहरणों के माध्यम से हिन्दी भाषा की संप्रेषणीयता और उसके वैश्विक संदर्भ को समझा जा सकता है। हिन्दी भाषा में देश-विदेश में घटित होने वाली घटनाओं अर्थशास्त्र, बाजार, राजनीति और यहाँ तक की 21वीं सदी की धरोहर 'सूचना प्रौद्योगिकी और बाजार' से सम्बन्धित शब्दावलियों को हिन्दी भाषा बहुत ही सहजता से स्वीकार कर संप्रेषणीय भाषा के रूप में विकसित हो रही है। बदलते समय, समाज और संस्कृति अर्थात वैश्वीकृत उपभोक्तावादी संस्कृति तथा बाजारीकृत समाज में वैश्विक स्तर पर भारतीय परिवेश में हिन्दी भाषा एक समृद्ध राष्ट्र-भाषा के रूप में विश्व स्तर पर पहुँच रही है। "भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में बाजार ने हिन्दी का स्वरूप अखिल भारतीय कर दिया है। चेन्नै में कभी हिन्दी-विरोधी और हिन्दी-ओडिगे (हिन्दी भागाओं) का दौर था। इन प्रदेशों में विरोध के फलस्वरूप हिन्दी समाचार का प्रसारण बंद करना पड़ा था, परन्तु आज चेन्नै के अतिरिक्त बंगलूर और हैदराबाद उन शहरों में शामिल हैं जहाँ हिन्दी फ़िल्में अधिक कारोबार कर रही हैं। 'हिन्दुस्तान' की सम्पादक मृणाल पांडे कहती हैं- 'यह

परिवर्तन संस्कृति-प्रेरित नहीं है बल्कि ‘बाजार’ इसके लिए जोर लगा रही है।”[26] बदलते समय के साथ हिन्दी भाषा में अन्य कई भाषाओँ के शब्द शामिल हुए हैं जिसका स्वरूप हम उपन्यास के उदाहरणों के माध्यम से देख चुके हैं। इन भाषाओ के मिश्रण से हिन्दी भाषा दिन-प्रतिदिन समृद्ध हो रही है। जिस वजह से वह हर भाषा-भाषी लोगों के बीच संप्रेषण का माध्यम बनती जा रही है। हिन्दी भाषा बोलने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है जिसकी वजह वैश्वीकरण है। जिसकी वजह से वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी का स्वरूप बदला है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भाषा केवल साहित्य का विषय नहीं है वरन वह हमारी संस्कृति, राष्ट्रीय सद्भाव, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक समता और नैतिक मूल्यों की संवाहक भी है। हमारे देश में हिन्दी एक भाषा ही नहीं, यह एक पूरी संस्कृति की सूचक है, हमारी पहचान है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वैश्वीकरण के युग में हिन्दी के वैश्विक रूप में बढ़ावा देना हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास ही है।

“भारत की सभ्यता संस्कृति और धर्म को देखते हुए अन्य भाषाओँ की भांति हिन्दी में भी कई कोर्स शुरू किये गए हैं। भूमण्डलीकरण के बाद से इसमें तेजी से बदलाव देखने को मिला। खुद अमेरिका में हिन्दी का 45 वर्ष पुराना इतिहास है। आज स्थिति यह है कि वहाँ पर 100 से भी ज्यादा संस्थानों में हिन्दी की पढ़ाई होती है, जो हिन्दी की उपयोगिता में चार चाँद लगा रहे हैं।”[27] इस वैश्वीकरण के दौर में ‘बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी’ अर्थात ‘इंटरनेट टेक्नोलॉजी’ के विकास के साथ-साथ हिन्दी भाषा जो कि वर्तमान समय में भारतीय समाज की राज्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है, पूरे विश्व में लोगों के बीच संपर्क भाषा तथा सम्प्रेषण भाषा के रूप में अपना स्थान बना पाने में सफल हो रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वतर्मान वैश्विक दुनिया में हिन्दी भाषा के साथ-साथ अन्य भाषा और क्षेत्रीय बोलियों को बढ़ावा मिल रहा है। इंटरनेट के माध्यम से किसी भी भाषा बोली की लिपि में आसानी से लिखा जा सकता है। टेक्नॉलोजी के युग में भारतीय भाषा हिन्दी के अलावा अन्य भाषा के बारे में तो नहीं कह सकते लेकिन यह कहना सोलह आना सच है कि हिन्दी वैश्विक स्तर पर सम्पर्क

भाषा के रूप में सर्वत्र व्याप्त हो रही है। आने वाले समय में हिन्दी भाषा-भाषी के बिना विकास की राह अवरुद्ध है।

5.2-चयनित उपन्यासों में अंग्रेजी और स्थानीय बोलियों का हस्तक्षेप

हिन्दी भाषा प्राचीनकाल से अर्थात जब से अस्तित्व में आयी है। अपनी समाहार शक्ति के कारण कभी भी, कहीं भी कमजोर भाषा के रूप में चरितार्थ नहीं हुई है। बदलते समय, समाज और संस्कृति के बीच होने वाले बदलाव या विकास के साथ हिन्दी भाषा ने अन्य भाषा बोलियों से आने वालें शब्दों को सहजता से हिन्दी रंग में रंग लिया । हिन्दी भाषा अपने इसी गुण के कारण विकसित होती हुई, हिन्दी खडी बोली के रूप में अपना सफर शुरू करके आज भारत राष्ट्र की एक समृद्ध और विश्व स्तर पर ज्यादा से ज्यादा लोगों द्वारा बोली समझी जाने वाली भाषा बन गई है। “सोवियत संघ रूस के विघटन के बाद विश्व में तेजी से अमेरिकी साम्राज्यवाद ने विश्व बाजार के नाम पर पूँजीवाद के नये रूप की परिकल्पना की। दरअसल भूमण्डलीकरण, उदारीकरण के नाम पर पूँजीवाद का विश्व बाजार बनाने का लक्ष्य था जो कि अब पूरा होता नज़र आ रहा है। जिसके चलते नव विकसित, अर्थविकसित और पूर्णत: विकसित बाजार में पूँजीवाद का व्यापार-प्रवाह किया जा सके। उदारीकरण की यह छद्म तानाशाही हमसे न केवल हमारी मनुष्यता छीनती है बल्कि हमारी संवेदना का अपहरण करके हमें कुण्ठित बना रही है। बाजार में आज हर चीजें या तो बिक रही है या तो जीवित रहने के लिए बदल रही है। उन्हीं बदलती चीजों में से है एक हमारी मातृभाषा हिन्दी भी है। हिन्दी को बदलना था क्योंकि उसे जीवित रहना था। वरिष्ठ साहित्यकार राजेन्द्र यादव का कहना है कि “भाषा कभी बनती-बिगडती नहीं बल्कि विकसित होती है अर्थात हमारी हिन्दी विकसित हो रही है। उसमें आत्मसात करने की भावना व्याप्त है।”[28] वैश्वीकृत समाज में हिन्दी भाषा और साहित्य वैश्विक स्तर पर अपना परचम लहराने में सफल हुई है।

21वीं सदी बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के यंत्रों के माध्यम में सूचनाओं का संसार बन गया है। ऐसे समाज में तीसरी दुनिया के देशों पर अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए किसी भी देश की भाषा को जानना समझना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि भाषा ही वह शक्ति है किसी देश को मुकम्मल रूप से जानने और समझने के लिए। भाषा के माध्यम से हम किसी देश के समाज और उसकी संस्कृति को गहराई से जान समझ सकते हैं। हिंदी भाषा में आत्मसात करने की अद्भुत शक्ति है जिसकारण आरम्भ से लेकर वर्तमान समय तक लगातार विकसित तथा समृद्ध होती रही है। वैश्वीकरण की घटना भारतीय समाज में घटित होने वाली एक ऐतिहासिक घटना है जिसने पूरे भारतीय समाज को 'ग्लोबल' बना दिया है। वैश्वीकरण के माध्यम से पूरे विश्व में बिना किसी रुकावट के पूँजी, श्रम, ज्ञान, वस्तु एवं विचारों का भी आवागमन सहज हो पाया है। इंटरनेट और सूचना यंत्रो के माध्यम से वास्तविक समाज आभासी दुनिया का निर्माण कर रहा है। इंटरनेट की भाषा मुख्यत: अंग्रेजी है। अंग्रेजी भाषा को आधार बनाकर इन सूचना यंत्रो का विकास सम्भव हो पाया है लेकिन धीरे-धीरे बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से भारतीय भाषा हिन्दी के साथ-साथ उसकी क्षेत्रीय बोलियों को भी महत्त्व मिलने लगा है। भारतीय भाषा हिन्दी और हिन्दी की बोलियों के आधार पर कम्प्यूटर देवनागरी लिपि की 'स्क्रिप्ट' विकसित कर 'की-बोर्ड' तैयार हो चुके हैं। बाजार और व्यापार को अत्यधिक बढ़ावा देने हेतु भारतीय भाषाओं को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। रही बात हिन्दी के वैश्विक स्वरूप का तो वह बिना किसी व्यवधान के एक समृद्ध भाषा बन रही है। हिन्दी विदेशी भाषा के शब्दों को बहुत ही प्रेम के साथ आत्मसात करती हुई विकसित हो रही है।

कोई भी भाषा अपने समाज और संस्कृति की पहचान होती है। जिसके माध्यम से कोई भी उस देश के समाज और संस्कृति के साथ उस देश की वास्तविकता के सच से वाकिफ हो सकता है क्योंकि भाषा का अस्तित्व और उसकी अस्मिता उस देश के अस्तित्व और अस्मिता की पहचान होती है। अपनी भाषा के बिना कोई भी देश अपने सहज अस्तित्व को खो सकता है, जिससे वैश्विक दौर में कोई पहचान कायम नहीं हो पाएगा।

“भाषायी अस्मिता का तात्पर्य है- भाषा बोलने वालों की अपनी पहचान। भाषा की इसी पहचान का सम्बन्ध सत्ता से है जो हमें ताकत देता है। यह भी कहा गया है कि भाषा की पहचान का गहरा सम्बन्ध ‘लिपि’ की पहचान से जुड़ा है क्योंकि वे एक संस्कृति के दौरान विकसित हुई हैं।”[29] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैश्वीकरण का सकारात्मक पक्ष शक्ति देता है। “भूमण्डलीकरण के मूल में ‘वसुधैव कुटुम्बकम’ का उदात्त भारतीय दर्शन तमाम विश्व को एक परिवार के रूप में रहने की प्रेरणा देता है मगर ये दर्शन यह कहीं नहीं कहता कि अपनी पहचान को विलीन कर दो, अपनी जड़ों को खो दो या अपनी संस्कृति की मर्यादा को भूल जाओ। इसमें सीधे-सीधे अपने स्वाभाविक स्वरूप को सहज रूप से बाकी दुनिया से जोड़ने का सन्देश निहित है।”[30]

वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व की लगभग सारी भाषाएँ टेक्नोलॉजी से जुड़ रही हैं। वर्तमान समय में किसी भी भाषा को जानने समझने के लिए किसी स्थानीय लोगों से सम्पर्क करने की जरूरत नहीं है, इंटरनेट के माध्यम से सारी भाषाएँ और उससे सम्बंधित बोलियाँ सूचना प्रौद्योगिकी यंत्रों के माध्यम से विश्व स्तर पर सहज रूप से उपलब्ध हैं किसी भाषा को जानने और समझने के लिए देश के किसी भी कोने से सूचना आसानी से प्राप्त की जा सकती है। “इक्कीसवीं सदी बीसवीं सदी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली सदी सिद्ध हो रही है। ‘विज्ञान एवं तकनीक’ के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है और स्थलीय व भौगिलिक दूरियाँ अपनी अर्थव्यवस्था खो रही हैं। वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनर्संगठन की प्रक्रिया से गुजर रही है। ऐसी स्थित में विश्व की शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है। यदि अठारहवीं शताब्दी आस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व का प्रमाण देती हैं और बीसवीं सदी में अमेरिका और सोवियत संघ के प्रभुत्व के रूप में विश्व विख्यात है। आज स्थित यह है कि इक्कीसवीं सदी, विश्व समुदाय की मानें तो भारत और चीन की है। भारत और चीन विश्व की सबसे तेजी से उठने वाली अर्थव्यवस्था में से है। क्योंकि इन दोनों देशो के पास अकूत प्राकृतिक सम्पदा है तथा युवा मानव संसाधन है। जब किसी राष्ट्र

को विश्व समुदाय में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व और स्वीकृति मिलती है तो उसके प्रति अपनी निर्भरता महत्त्वपूर्ण हो जाती है और वह राष्ट्र भी स्वयं महत्त्वपूर्ण बन जाता है। भारत की विकासमान अंतर्राष्ट्रीय स्थिति हिन्दी के लिए वरदान है।"[31]

भूमण्डलीकरण के दौर में भारत का आर्थिक माहौल बदलने के साथ ही यहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को भी प्रभावित किया है। विदेशी फिल्में भारतीय परिवेश में और भारतीय फ़िल्में विदेशी परिवेश में भाषा और साहित्य खानपान वेशभूषा आचार-व्यवहार सब आपस में घुलने मिलने लगे, लेकिन भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसके साहित्य इस माहौल का क्या असर हुआ है? किस तरह वैश्वीकृत समाज उसे प्रभावित कर रहा है आदि प्रश्नों की परताल करते हुए आलोचक पुरुषोत्तम अग्रवाल का कहना है कि-"भूमण्डलीकरण ने भारतीय जीवन को गहरे में जाकर प्रभावित किया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दी ख़त्म हो जाएगी और अंग्रेज़ी उसका स्थान ग्रहण कर लेगी।"[32]

हिन्दी उपन्यासों में समाज में व्याप्त अग्रेंजी और अन्य हिन्दी की क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव को निम्न उदाहारणों के माध्यम से समझ सकते हैं। अलका सरावगी का उपन्यास **'एक ब्रेक के बाद'** का एक उदाहरण है**-** "अब यह दुनिया असली रही कहाँ? **कंप्यूटर की 'वर्चुअल रियेलिटी'** ही जिन्दगी की सच्चाई है।"[33] अंग्रेजी भाषा का सहज प्रयोग।

सत्यनारायन पटेल के उपन्यास-'गाँव भीतर गाँव' में स्थानीयता की झलक- "कुछ धनपाशु, सफेद हाथी, और लोकतंत्र के गिद्ध या उनकी आज्ञा के पालन में उनके गुलाम, मातहत उन्हें खरीदेंगे। **चक्की में पिसवायेंगे। थाली में रैंदेंगे-गूंथेंगे।** तवे पर, चुल्हे पर और गैस की आंच पर सकेंगे। खौलते तेल में तलेंगे। मालिक की थाली में परोसेंगे। मालिक अपने गंदे-संदे दांतों से चबायेंगा। लेकिन मुक्ति वहाँ भी नहीं मिलेगी। खवखड़ी आंतें कतरा-कतरा रस, ऊर्जा और सारा सत्व लेंगी। दानों को आम-अवाम की तरह निचोड़ लेंगी। **आम-अवाम से दाने लोकतंत्र के गिद्धों की हगार बन जायेंगे।** हगार फिर खाद

का दाना, फिर अनाज का दाना, फिर वही पूरा चक्र। उफ़! इस चक्र-कुचक्र से मुक्ति चाहिए।”[34] प्रस्तुत उदाहरण में ग्रामीण भाषा का ठेठपन का प्रयोग दृष्टव्य है।

21वीं सदी की उपन्यास लेखिका **‘महुआ मांझी’ का उपन्यास-‘मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ’** में वैज्ञानिक शब्दावली का उदाहरण- “विकिरण जीवित प्राणी के **जीन** के साथ तो छेड़छाड़ करता ही है, यह स्त्री पुरुष की **जनन** क्षमता को भी प्रभावित करके उन्हें बाँझ बना देने की ताकत रखता है। जो प्राणी विकिरण या **रेडियोंधार्मिता या रेडिएशन** के जितना निकट सम्पर्क में आता है, वह उतना अधिक प्रभावित होता है। विकिरण एक ही सेल में लाखों म्यूटेशन पैदा कर सकता है। मनुष्य के सेल में करीब 3.5 खरब (बिलियन) डी.एन.ए. के जोड़े होते हैं।”[35] प्रस्तुत उदाहरण में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है।

इसी क्रम में **संजीव के वैज्ञानिक उपन्यास- ‘रह गई दिशाए इसी पार’** में अंग्रेंजी शब्दों का प्रभाव व्यापार और बाजार की तुलना को भारतीय और विदेशी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है “इंसान के बनने की वैज्ञानिक प्रक्रिया- “हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर बनता है पानी। नाइट्रोजन, कार्बन से मिलकर बना ‘एमीनो एसिड।’ माने केमिस्ट्री की भाषा में आदिम है ‘इलेक्ट्रान।’ अमीनो एसिड का विकसिततम रूप हुआ इंसान। और इस आदमी की लिप्सा का कोई अंत नहीं। वह लड़ाईयां मोल लेता है, पैंतरे चलता है, छल करता है। उसे जीत चाहिए। पूरे ब्रह्माण्ड पर जीत। ब्रह्माण्ड का अंत है पर इस मनुष्य की लिप्सा का कोई अंत नहीं।”[36] प्रस्तुत उपन्यास में वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग दृष्टव्य है।

काशीनाथ सिंह का उपन्यास ‘काशी का अस्सी– स्थानीयता और भाषा के देशीपन की जीवन्तता की अद्भुत झांकी प्रस्तुत की गई है। उदाहरण दृष्टव्य है- **“खडाऊं पहनकर पाँव लटकाए पान की दुकान पर बैठे तन्नी गुरु से एक आदमी बोला-‘किस दुनिया में हो गुरु! अमरीका रोज-रोज आदमी को चन्द्रमा पर भेज रहा है और तुम घंटे-भर से पान घुला रहे हो?**’ मोरी में ‘पिच’ से पान की पीक थूककर गुरु बोले- **देखौ! एक बात नोट कर लो ! चन्द्रमा हो या सूरज- भोसड़ी के**

जिसको गरज होगी, खुदै यहाँ आएगा।"[37] प्रस्तुत उदाहरण में ठेठ देशीपन बनारसी संवाद दृष्टव्य है।

"ग्लोबल गाँव का बड़ा देवता है 'वेदांग'। यह ऊँगली पकड़कर बाँह पकड़ने वाली बात लगती है। यह कम्पनी है विदेशी और नाम रखा है 'वेदांग', जैसे प्योर देशी हो। कितना चालू-पूर्जा है इसी से पता चलता है।"[38]

प्रस्तुत उदाहरणों में एक ही संवाद में अंग्रेजी, हिन्दी और देशी भाषा के मुहावरे का प्रयोग बहुत ही सहजता से किया गया है। उदाहरण है- "आपको पता नहीं दुनिया कितनी तेजी से आगे बढ़ रही है, अब घर्म,दर्शन और अध्यात्म जीवन में हर समय रिसने वाले फोड़े नहीं हैं। आप सरल मार्ग के शिविर में कभी जा कर देखिए।"[39] आदिवासी समाज की झलक -"जाम्बीरा और मेन्जारी दोनों एक-दूसरे को पसंद करते हैं लेकिन मेन्जारी के पिता ने बेटी की शादी का वधू मूल्य इतना ज्यादा रखा है जिसे अभी **जाम्बीरा** अदा करने में अपने आपको समर्थ नहीं पाता है । वह सोचता है कि लड़की को भगा कर शादी कर लेना ही ज्यादा ठीक रहता है। लेकिन "जाम्बीरा ऐसा नहीं करेगा। समाज में बड़ी बदनामी होगी। उम्र भर सुनने पड़ेंगे लोगों के ताने । कहेंगे- **हट्टा कट्टा मर्द और गोनोंग तक जुटा नहीं पाया।** भाग गया लड़की को लेकर । ढेरों नुकसान करा दिया बेचारे लड़की के बाप का..."[40]

शरद सिंह का उपन्यास **कस्बाई सिमोन** का उदाहरण दृष्टव्य है- "शिवा भी गया था ? मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया । शिवा रितिक का लंगोटिया मित्र है लेकिन इसका मतलब ये तो नहीं कि उसके सामने लंगोट लगाकर ही घूमो। क्या आवश्यकता थी उसे साथ ले जाने की? अब मैं उसका सामना कैसे करुँगी? उफ़ ! इट्स डिस्गस्टिंग !"[41] हिन्दी लेखिका अलका सारावगी का कहना है –"यह सच है कि अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। लेकिन साथ ही भाषा के स्तर पर एक नयी शब्दावली का भी गठन हो रहा है। जो आज के जीवन यथार्थ को पकड़ने में मददगार हो रही है और इस तरह हिन्दी एक समृद्ध भाषा बन रही है।"[42]

वैश्वीकरण के इस युग में यह कहना गलत नहीं होगा कि हिन्दी भाषा को रोजगार से जोड़कर ही हिन्दी भाषा की उन्नति के साथ-साथ हिन्दी के प्रति लोगों की मानसिकता को सहजता से बदला जा सकता है। वैश्वीकृत उपन्यासों का शिल्प पक्ष भाषा की गुणवत्ता के सन्दर्भ में- "भाषा पर किसी भी बहस की शुरुआत करने से पहले यह जान लेना जरुरी है कि वह एक सामाजिक वस्तु है। मानसिक संकल्पना के साथ-साथ वह एक सामाजिक यथार्थ भी है; व्याकरणिक इकाई होने के साथ-साथ वह संस्थागत प्रतीक भी है और सम्प्रेषण का अन्यतम उपकरण होने के साथ-साथ वह हमारी सामाजिक अस्मिता का एक सशक्त माध्यम भी है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हर भाषा एक निश्चित समुदाय के व्यक्तियों को भावना, चिन्तन और जीवन-दृष्टि के धरातल पर एक दूसरे के नजदीक लाती है और उन्हें आपस में जोड़ती और बांधती है।"[43]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समय बदला, समाज बदला और समाज की झांकी प्रस्तुत करने वाला साहित्य और साहित्य की मान्यताएं भी बदली। बदलते समय और समाज के साथ साहित्य का भी विकास होता रहा है जिसके माध्यम से समाज का सच यथार्थ के धरातल पर अवतरित हुआ । किसी भी समाज की मुकम्मल जानकारी प्राप्त करने के लिए तथ्यों के संकलन से कहीं ज्यादा उस समय का साहित्य समाज की सच्चाई का बहुत ही संवेदनशील तरीके से गहराई से हमारे सामने दिखाने में सफल होता है।

21 सदी के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित समाज बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी से निर्मित समाज की देन है। जिसकी झलक हमें साहित्य के माध्यम से प्राप्त होती है। 21 सदी के उपन्यासों में बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव की वजह से 'हिंग्लिश भाषा'के शब्दों का प्रयोग अत्यंत तीव्र गति से हो रहा है। हिन्दी भाषा और साहित्य आने वाले समय में अपना परचम लहराएगा।

5.3-इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा और साहित्य

21वीं सदी के दौर में वैश्वीकरण के मुख्य वाहक के रूप में ‘बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी’ की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ‘सूचना-प्रौद्योगिकी’ का सीधा सम्बन्ध भाषा से है। बिना किसी भाषा के माध्यम से ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ के यंत्रों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। क्योंकि सूचना का जंजाल भाषा की ही देन है। भाषा के माध्यम से ही संवाद स्थापित किए जा सकते हैं। वर्तमान दुनिया वर्चुअल रिअलिटी सूचना के आधार पर गतिशील हो संचालित हो रही है। बिना सूचना के वर्तमान दुनिया में गतिशीलता नहीं आ सकती है। किसी भी देश की गतिशीलता के लिए अर्थात विकसित होने के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय भूमिका अदा करने का काम वह सूचना और भाषा के माध्यम से ही सम्भव है। वर्तमान दुनिया शारीरिक कम मानसिक कार्य ज्यादा मात्रा में करने के प्रति सक्रिय हो रही है जिसका एक मात्र आधार भाषा का ज्ञान है। हिन्दी भाषा और साहित्य इंटरनेट और कंप्यूटर के माध्यम से विश्व के कोने-कोने पहुँचकर सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। भारतीय साहित्य हो या किसी भी देश या भाषा का साहित्य हो, अब वह किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित न रहकर पूरे विश्व स्तर पर ‘वर्चुअल दुनिया’ में उपलब्ध हो रही हैं। जिसे कहीं से भी ऑनलाइन प्राप्त किया जा सकता है। इंटरनेट की दुनिया में ‘हिन्दी भाषा और साहित्य’ का भविष्य उज्ज्वल है। “इक्कीसवीं सदी कई अर्थों में विकास की सदी है। सूचना-प्रौद्योगिकी ने तो इस सदी में सबसे अधिक विकास किया है। आज विश्व को जितना सबल, सुलभ, समुन्नत और सशक्त बनाने में अन्य संसाधनों का महत्त्व है, उससे कहीं अधिक ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ का महत्त्व है। उसके माध्यम से ही मानव को एक-दूसरे के निकट लाने का काम किया है। जिससे उसकी भौगोलिक दूरियां ही समाप्त नहीं हुई, बल्कि उसकी मानसिकता में भी परिवर्तन आया है। अब पहले से भी अधिक उदार, ज्ञानसम्पन्न, सहयोगी, सभ्य, समन्वयी, संकीर्णता से मुक्त, सुविधा सम्पन्न और रचनाशील प्रवृत्ति से युक्त है। ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ भाषा आधारित होती है, इसलिए भाषा और सूचना प्रौद्योगिकी का अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है।”[44] वर्तमान दुनिया में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से भाषा का विकास तीव्र गति से हो रहा है। इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा वैश्विक स्तर पर

संवाद स्थापित करती हुई सम्प्रेषणीय बन रही है। “हिन्दी समकालीन भूमण्डलीकरण के दौर में तेजी से एक सशक्त, सर्वत्र उपस्थित विश्वभाषा बन चली है। उसके अनेक स्तर, अनेक रूप, अनेक शैलियाँ हैं और एक नयी अन्तरंग किस्म की बहुलता है। मुक्त बाजार, ग्लोबल, जनसंचार, तकनीकी क्रांति और हिन्दी क्षेत्रों के विराट उपभोक्ता बाजार ने हिन्दी को एक नयी शिनाख्त और ताकत दी है। संस्कृतवाद का दामन छोड़ बोलियों को अपने में समोकर उर्दू से दोस्ती स्थापित कर अंग्रेजी से सहवर्ती भाव में विकास पाती हिन्दी अपना ‘ग्लोबल ग्लोकुल’ बना रही है।”[45] वर्तमान दुनिया में हिन्दी कथा-कहानी या कहे कि कविता तक ही सीमित होकर नहीं रह गई है वह विश्व स्तर पर संवाद स्थापित कर चहुमुखी अपने समाज और संस्कृति को हिन्दी भाषा में व्याप्त आकंठ ज्ञान का प्रसार-प्रचार कर रही है। “जब हम हिन्दी साहित्य की आज बात करते हैं, तब उसे खड़ी बोली में रचित काव्य-कृतियों तक ही सीमित नहीं करते। इसमें प्रसाद, पन्त, निराला, प्रेमचन्द, अज्ञेय, मुक्तिबोध, आदि की रचनाओं के साथ-साथ अवधी, ब्रज, मैथिली आदि बोलियों के साहित्यकार यथा जायसी, सूर, तुलसी, विद्यापति, आदि की कृतियों को भी समाहित करने में संकोच नहीं करते। इन विभिन्न बोलियों के माध्यम से अभिव्यक्ति होने वाला साहित्य एक है क्योंकि इनकी रचना करने वाले हिन्दी भाषाई समाज की जातीय अस्मिता एवं साहित्यिक चेतना एक है।”[46]

हिन्दी की कुछ महत्त्वपूर्ण “अभिव्यक्ति अनुभूति, साहित्य कुञ्ज, गद्यकोश, कविता कोश, हिन्दी युग्म, प्रवासी टुडे, प्रवासी दुनिया,प्रभा साक्षी डॉट काम ऐसी ही प्रचलित साइट्स हैं। महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा ने हिन्दी समय के नाम से अपना वेबसाइट शुरू किया है। इसमें बहुत से उपन्यासों, कहानियों, निबंध संग्रहों, यात्रा वृतांत, रिपोर्ताज, डायरी आदि को पढ़ा जा सकता है। अलग-अलग विधाओं की पुस्तकें यहाँ उपलब्ध है। “जो नई तकनीक है चाहे इंटरनेट हो, ई-मेल, ई-बुक, ई-कामर्स, सभी में हिन्दी का सफल प्रयोग हो रहा है। इंटरनेट पर हिन्दी की पुस्तकें, अखबार,पत्र-पत्रिकाएँ दूसरे देशों के विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित बारह हजार पृष्ठों का विश्व हिन्दी कोश इन्टरनेट पर उपलब्ध है। हिन्दी साहित्य के लगभग दो लाख पृष्ठ महात्मा गांधी

अंतर्राष्टीय विश्वविद्यालय द्वारा इंटरनेट पर डाले गए हैं। डिस्कवरी चैनल, दो कार्टून चैलन आदि द्वारा हिन्दी में ज्ञानवर्धक सूचनाएँ प्रसारित होती हैं। टेलीविजन तथा रेडियों ने भी हिन्दी ने अपना वैश्विक स्थान बना लिया है।”[47] 21वीं सदी में हिन्दी भाषा का लगभग साहित्य इंटरनेट पर मौजूद है। जो साहित्य अभी इंटरनेट पर नहीं आ सका है उसके लिए भी काम जारी है। एम्.एच.आर.डी. यू.जी.सी. के द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य का स्नातकोत्तर स्तर का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम ऑनलाइन आ चुका है। अब घर बैठे उसके कोई भी कहीं से इंटरनेट के माध्यम से हिन्दी भाषा और साहित्य से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

“वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में सम्पूर्ण विश्व एक परिवार के रूप में निकट आया है। ‘बहु राष्ट्रीय’ कम्पनियों का निर्माण हुआ है। इन कम्पनियों से वस्तुओं का उत्पादन बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। इन वस्तुओं को बेचने के लिए बहुत बड़ा उपभोक्ता वर्ग चाहिए। यह उपभोक्ता वर्ग भारत में दिखाई दे रहा है। इसीलिए वे भारत में आकर अपने माल की खपत के लिए विज्ञापनों द्वारा वस्तुओं का प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं। तब उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हो रहा है कि विज्ञापन किस भाषा में दें। अब वे हिन्दी भाषा की अनिवार्यता को महसूस कर रहे हैं, क्योंकि भारत के 80 फीसदी से भी अधिक लोग हिन्दी भाषा बोलते और समझते हैं। इसलिए बहु राष्ट्रीय कम्पनियों ने विज्ञापन के लिए हिन्दी भाषा को चुना है। इसका और भी एक कारण यह है कि हिन्दी दुनिया की सबसे अधिक सहज, सरल, एवं लचीली भाषा है।”[48] जिस कारण ‘वर्चुअल दुनिया’ में आने वाले तकनीकी शब्दों को आत्मसात करती हुई आगे बढ़ रही है। अन्य भाषा बोलियों से आने वाले शब्दों को भी अपने आपमें सहजता से स्वीकार करती हुई समृद्ध हो रही है। “भूमण्डलीकरण के औजार बाजार और मीडिया ने न सिर्फ हिन्दी को बल्कि अपनी देहरी तक सीमित अन्य भाषाओँ को भी विस्तार दिया है। प्रौद्योगिकी ने इसे आसान बनाया है। एक-बार फिर भाषा निर्णायक रूप में बदल रही है। हम एक ऐसे ‘संक्रमण बिन्दु’ पर खड़े हैं, जहाँ से हमें भाषा की ताकत और कमजोरियों के सवाल से भी दो चार होना होगा। मीडिया में हिन्दी के बढ़ावें को देखकर जो लोग खुश हो रहे हैं, उन्होंने स्थिति पर गहराई से विचार ही नहीं किया है। इसका अर्थ है,

जनता को लगातार एक ऐसी भाषा में बनाएं रखना, जिसमें ज्ञान नहीं, दैनिक सूचनाएँ ही अधिक हो, ज्ञान का केन्द्रीयकरण इस मायने में अंग्रेजी भाषा के पक्ष में और अधिक हुआ है।"[49]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि "भूमण्डलीकरण के सन्दर्भ में यह भ्रम फैलाया जाता है कि यह मात्र आर्थिक प्रक्रिया है। दरअसल यह बाजार और संचार की मिली-जुली प्रक्रिया से निर्मित है। इसलिए भूमण्डलीकरण के परिणाम भी मिले-जुले ही रहेंगे। बाजार की जरूरतों ने यातायात और संचार साधन में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और भौगोलिक दूरियां समेट दीं। दूसरी तरफ संचार माध्यम ने ग्लोबल विलेज, ग्लोबल संस्कृति की संकल्पना को जन्म दिया। यह नया साइबर संसार बस एक क्लिक से जुड़ गया है। भाषा इस साइबर क्रांति का अभिन्न अंग है।"[50] सामान्य रूप से भाषा, साहित्य और संस्कृति– ये तीनों अपने आप में स्वतन्त्र स्वायत्त संस्थान के रूप में जाने जाते हैं। "भाषा समस्त साहित्य और संस्कृति की पहचान है। भाषा के द्वारा ही साहित्य और संस्कृति का स्वरूप बनता है। यही नहीं भाषा तो किसी भी समाज, समूह से लेकर व्यक्ति तक की पहचान होती है। भाषा, इसी प्रकार किसी भी समूह, समाज या राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति और समृद्धि का, एक साथ प्रमाण और कारण दोनों है।"[51]

समकालीन समय में अब हिन्दी केवल साहित्य की भाषा नहीं रही, बल्कि उसका चौमुखी विकास हो रहा है। हिन्दी भाषा अंग्रेजी भाषा की भांति अपना विस्तार कर रही है। हिन्दी भाषा आज साहित्य और विचार की भाषा मात्र का माध्यम न होकर सांस्कृतिक और सामाजिक विकास की भी भाषा है। हिन्दी अगर आज देश के विकास की गति के साथ विकासशील से विकसित होने की ओर तीव्र गति से बढ़ रही है, तो वह सूचना क्रांति रूपी मीडिया की ही देन है। जिसके माध्यम से हिन्दी भाषा का तेवर काफी हद तक बदला है। इस बात को स्वीकार करने में किसी को कोई गुरेज नहीं होनी चाहिए कि हिन्दी भाषा को वैश्विक स्तर पर लाने में समकालीन मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका रही है। अंतत: भाषा समाज और संस्कृति की महत्ता को नेल्सन मंडेला के शब्दों में कहें तो 'जब किसी को कोई बात उस भाषा में बताते हैं जिसे वह जानता है तो कथन उसके मस्तिष्क तक पहुँचता है और जब उसकी अपनी भाषा में बताते हैं तो संवाद दिल को छू जाता है।' वर्तमान दुनिया में हिन्दी भाषा बहुत ही समृद्ध हो रही है लेकिन

मानवीय संवेदना और सहजता की भांति भाषा की भी सहजता और उसकी संवेदना दिन प्रतिदिन घटती जा रही है इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है। वैश्वीकृत समाज की बाजारूभाषा में मरती सम्वेदना को 'कुँवर नारायण' की कविता "भाषा की ध्वस्त पारिस्थितिकी में कविता" में रेखांकित बिम्ब!

एक भाषा जब सूखती

शब्द खोने लगते अपना कवित्त

भावों की ताजगी

विचारों की सत्यता

बढ़ने लगते लोगों के बीच

अपरिचय के उजाड़ और खाइयाँ"[52]

इस प्रकार हिन्दी भाषा मात्र एक भाषा या एक संवाद का माध्यम ही नहीं है बल्कि वह हम भारतीयों की पहचान है, हमारा अस्तित्व और हमारी शान है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के इस दौर में बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा का प्रवेश उसके उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। स्वदेश सिंह का कथन सही प्रतीत होता है कि "इंटरनेट और मोबाइल के दौर में हिन्दी और भी तेजी से उभर कर सामने आई है, क्योंकि अब तो तकनीक और भी सस्ती हुई है, साक्षरता दर और शहरीकरण भी पहले के मुकाबले काफी बढ़ा है। बाजार तो 'सप्लाई और डिमांड' पर चलता है। हिन्दी की डिमांड तेजी से बढ़ी है तो विभिन्न माध्यमों से हिन्दी का प्रसार भी तेजी से बढ़ा है।"[53] इस प्रकार इंटरनेट की दुनिया में हिन्दी भाषा और साहित्य विश्व स्तर पर पहुँच देश के विकास में अपना योगदान दे रहा है।

संदर्भ-सूची:

1. संपादक, वर्मा कल्पना,भूमण्डलीकरण और हिन्दी,लोकभारती,प्रकाशन-इलाहाबाद-पृ. सं.142
2. संपादक, वर्मा कल्पना,भूमण्डलीकरण और हिन्दी,लोकभारती,प्रकाशन-इलाहाबाद-पृ. सं.154
3. दैनिक जागरण समाचार पत्र (23फरवरी2018)-हरीश बडथ्वाल-लेख-‘स्वदेशी भाषाओं की अनदेखी’ पृष्ठ सं.-8
4. संपादक, वर्मा कल्पना,भूमण्डलीकरण और हिन्दी,लोकभारती,प्रकाशन-इलाहाबाद-पृ. सं.168
5. दैनिक जागरण समाचार पत्र (23फरवरी2018)-हरीश बडथ्वाल-लेख-‘स्वदेशी भाषाओं की अनदेखी’ पृष्ठ सं.-8)
6. संपादक, वर्मा कल्पना,भूमण्डलीकरण और हिन्दी,लोकभारती,प्रकाशन-इलाहाबाद-पृ. सं.42
7. वहीं पृष्ठ सं.148
8. संपादक, वर्मा कल्पना,भूमण्डलीकरण और हिन्दी,लोकभारती,प्रकाशन-इलाहाबाद-पृ. सं. 151
9. लेख-‘इन्टरनेट की दुनिया में हिन्दी’-घर्मेन्द्र प्रताप सिंह -जनसत्ता-25 अगस्त 2015)
10. लेख-‘इन्टरनेट की दुनिया में हिन्दी’-घर्मेन्द्र प्रताप सिंह -जनसत्ता-25 अगस्त 2015)
11. लेख-‘हिन्दी हैं हम, परिशिष्ट, दैनिक भास्कर, 14 सितम्बर-2011
12. महिपाल सिंह, देवेन्द्र मिश्र, विश्व बाजार में हिन्दी- पृ. सं.190)
13. डॉ शैलजा पाटील, वैश्विकता के संदर्भ में हिन्दी- पृ.सं.30
14. डॉ.शैलजा पाटील, वैश्विकता के सन्दर्भ में हिन्दी- पृ.सं.51
15. डॉ.शैलजा पाटील, वैश्विकता के सन्दर्भ में हिन्दी- पृ.52

16. काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ.सं.34

17. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद पृ.सं. 10

18. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद पृ.सं. 13

19. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद पृ.सं. 209

20. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता पृ. सं. 7

21. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता पृ. सं.80

22. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव का देवता पृ. सं.100

23. धीरेन्द्र अस्थाना-लेख-बाजार में खड़े रिश्ते, दौड़ उपन्यास के परिशिष्ट से,

24. ममता कालिया, दौड़, पृ. सं. 22

25. अखिलेश, निर्वासन, पृ. सं. 100

26. अमित कुमार सिंह, भूमण्डलीकरण और भारत, पृ. सं. 99

27. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी, पृ. सं.135-36

28. (ग्लोबलाइजेशन के दौर में ग्लोबल होती हिंदी ऑनलाइन)

29. सम्पादक-विमलेश कान्ति वर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, मालतीओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड नई- दिल्ली, पृ. सं. 45-46

30. सम्पादक-विमलेश कान्ति वर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, मालतीओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड नई- दिल्ली, पृ. सं.433

31. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी, पृ. सं.168

32. http://www.bbc.com/hindi/india/2012/120912globlisation_hindi_akd

33. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद पृ.सं.15

34. सत्य नारायण पटेल, गाँव भीतर गाँव पृ.सं. 9-10

35. महुआ मांझी, मरण गोड़ा नीलकंठ हुआ पृ. सं. 160

36. संजीव, रह गई दिशाए इसी पार, पृ.सं.114
37. काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ. सं. 11
38. रणेंद्र,ग्लोबल गाँव के देवता पृ.सं. 80
39. ममता कालिया दौड़ पृ. सं. 48
40. महुआ माझी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ पृ. सं. 29
41. शरद सिंह, कस्बाई सिमोन पृ सं. 128
42. http://www.bbc.com/hindi/india/2012/120912globlisation_hindi_akd
43. डॉ.रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,भाषाई अस्मिता और हिन्दी, वाणी प्रकाशन- दिल्ली-32 प्रथम संस्करण-1992 पृ. सं. 17
44. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी, पृ. सं. 331
45. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी, पृ. सं.151
46. डॉ.रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,भाषाई अस्मिता और हिन्दी, वाणी प्रकाशन- दिल्ली-32 प्रथम संस्करण-1992 पृ. सं. 18
47. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी, पृ. सं. 42
48. प्रो. डॉ.अम्बादास देशमुख, वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भाषा और साहित्य, पृ.सं.201
49. www.Abhivyakti-hindi.org- इन्टरनेट की दुनिया में हिन्दी का भविष्य- भास्कर जुयाल-
50. सम्पादक-कल्पना वर्मा, भूमण्डलीकरण और हिन्दी, पृ. सं. 159
51. संपादक-विमलेश कान्ति वर्मा, भाषा साहित्य और संस्कृति, मालतीओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड नई- दिल्ली, पृ. सं. 1
52. http://www.hindisamay.com/content/3047/1/कुँवर-नारायण-कविताएँ-भाषा-की-ध्वस्त-पारिस्थितिकी-में
53. दैनिक जागरण,23 अक्टूबर-2018, पृ.सं.09

उपसंहार

वैश्वीकृत समाज का आभासी पटल

उपसंहार- वैश्वीकृत समाज और 21 वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों का समग्र विश्लेषण करने के पाश्चात्य यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सन 1990-91 में सोवियत संघ के विघटन के बाद वैश्वीकरण और उसकी विचारधारा ने भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में ही नहीं, भारतीय समाज और संस्कृति को भी वैश्विक बनाने में सफल रहा है। जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक संरचना पर लगातार पड़ता है। जहाँ तक वैश्वीकरण की बात है वह एक विचारधारा के माध्यम से वैश्विक स्तर पर 'विश्व ग्राम' की अवधारणा के रूप में कार्य करने में सफल हो रही है । किसी भी देश या वर्ग, जाति, समुदाय पर इसका प्रभाव अपनाने वालों की समझ पर आधारित है कि कोई कैसे और किस स्तर तक जहाँ तक जरुरी हो वैश्वीकरण की विचारधारा से सहयोग ले न कि वैश्वीकरण को अपने पर हावी होने दें अर्थात बाजारीकृत संस्कृति तथा टेक्नोलॉजी यंत्रों का प्रयोग सचेत हो करें । जहाँ तक भारतीय परिवेश का प्रश्न है अभी तक ऐसी कोई सीमा रेखा नहीं खिचीं है जिससे निर्धारण किया जा सके कि किस हद तक वैश्वीकरण की विचारधारा को आत्मसात करना है और कहाँ आकर रुक जाना है, अपने समाज, संस्कृति और उसके मूल्यों की हिफाजत के लिए। क्योंकि दिन-प्रतिदिन सामाजिक मानवीय मूल्य विघटित तथा मानवीय संवेदनाएं क्षीण हो रही हैं। भारतीय परिवेश में विज्ञान की प्रगति ने पर्यावरणीय क्षति को भी जन्म दिया है। जिस पर आधारित मानव जीवन जितना सहज हुआ है उतना ही अन्य आधुनिक बीमारियों जैसे ऊब, घुटन,अकेलापन, अजनबीपन, संत्रास आदि का शिकार भी हो रहा है। जिसका स्वरूप हमें 21वीं सदी के हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से दृष्टव्य है।

मानव सभ्यता का इतिहास बहुत पुराना है जो सदियों से चला आ रहा है। समय और समाजिक गतिविधियों के कारण लगातार परिवर्तन होता रहा है। भारतीय परिवेश में 20वीं सदी से पहले और बाद में भी समाज में परिवर्तन होते रहे हैं। लेकिन वह परिवर्तन किसी न किसी आन्दोलन या बड़ी घटना के परिणामस्वरूप होता रहा है। वह चाहे आजादी की लड़ाई के लिए आवाहन रहा हो या सामाजिक बुराईयों के सुधार हेतु आन्दोलन हुए हो। 20वीं सदी का समाज काफी उथल-पुथल भरा रहा है। जिसकी

आहट और चीख की गूँज हमें उस समय के साहित्यिक कृतियों में सुनाई पड़ती है। पाश्चात्य विचारधारा आधुनिकता और उसके बाद उत्तर-आधुनिक विचारधारा का प्रभाव भारतीय समाज संस्कृति पर सहज रूप से पड़ने लगा था इसके लिए किसी भी तरह की सामाजिक घटना या आन्दोलन नहीं हुआ। क्योंकि इसका आगमन सूचना-प्रौद्योगिकी- मोबाईल, इंटरनेट आदि सूचना यंत्रो के माध्यम से शांत और सहज रूप से समाज के लोगों के बीच आकर्षण का केन्द्र बन फलता-फूलता रहा। पश्चिमी समाज अर्थात वैश्वीकरण के प्रभाव की चर्चा करें तो सन 1990-91 में 'सोवियत संघ के विघटन' और 'पूँजीवादी विचारधारा' की जीत, वैश्वीकरण की प्रक्रिया को पूरे विश्व पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए 'फ्री' छोड़ दिया। जिसका प्रभाव परिवार, समाज, समुदाय वर्ग, जाति, समूह अर्थात पूरे सामाजिक संरचना पर पड़ा। इस प्रकार धीरे-धीरे भारतीय समाज की वास्तविक दुनिया 'वैश्वीकृत समाज' का रूप धारण करने लगती है। वैश्वीकृत समाज में बाजारीकृत संस्कृति और टेक्नोलॉजी का आकर्षण वास्तविक दुनिया के लोगों को वर्तमान आभासी दुनिया बराबर आकर्षित कर रही है। 21वीं सदी में पहुँचकर वास्तविकता जैसी कोई चीज बची ही नहीं है इस धरा पर।

वैश्वीकरण के आने के बाद समाज में विमर्शों का जन्म हुआ, वह चाहे स्त्री विमर्श हो या दलित विमर्श या आदिवासियों के जल, जंगल जमीन से जुडा प्रश्न हो, सभी विमर्शों को साहित्य के माध्यम से समाज तक पहुंचा पाने में सफल हुए है। साहित्य या अन्य संगोष्ठियों के दौरान स्त्री, दलित और आदिवासी लेखकों एवं कवियों ने स्वयं अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी। उन सभी में शोषणकारी व्यवस्था के प्रति नकार या विरोध का यह स्वर वैश्वीकृत समाज की देन कहीं जा सकती है। वैश्वीकरण के दौर में कोई चीज या जानकारी किसी की व्यक्तिगत नहीं रह गई है। सभी के लिए सारी चीजें और जानकारियां उपलब्ध है, कोई भी उसे पैसे से खरीद सकता है और प्रयोग कर सकता है, कभी भी और कहीं भी। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन और आपसी रिश्तों के बीच भी काफी हद तक बदलाव हुए हैं। बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी ने समाज के लोगों का जीवन बहुत ही सहज और आरामदायक बनाया है तो उसे वास्तविक जगत से धीरे-धीरे अलग कर 'वर्चुअल रिअल्टी' अर्थात सोशल मीडिया के आभासी

दुनिया में बंधता जा रहा है। उदाहरण स्वरूप सोशल मीडिया पर दिन-प्रतिदन दोस्तों की संख्या बढती जा रही है लेकिन वहीं व्यक्ति अपने वास्तविक दुनिया में नितान्त अकेला भ्रमण करने के लिए अकेला होता जा रहा है। जिसका समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस वैश्वीकृत दौर में तीव्रता से बदलते समाज की सम्पूर्ण झांकी स्पष्ट नहीं हो पायी है। साहित्य सृजन हेतु अभी बहुत कुछ शेष है।

वर्तमान मानव जीवन और समाज के विकास का सफर वास्तविक दुनिया से होते हुए आभासी दुनिया में पहुँच चुका है। जहाँ पर ‘जैवमंडल की संरचना’ को निर्मित करते वाले अंग ‘वायुमंडल, जलमंडल और स्थल मंडल तीनों पर्यावरण के मुख्य भाग मनुष्य की क्रियाकलापों की वजह से काफी हद तक अपनी वास्तविकता खो चुके हैं। आभासी दुनिया में उनके होने का भान तो किया जा सकता है लेकिन वास्तव में समागम नहीं किया जा सकता। और न ही शुद्धता रूपी किसी स्वच्छ एवं वास्तविक पर्यावरण का दावा ही किया जा सकता है। वायुमंडल, जलमंडल और स्थलमंडल तीनों के प्रभावित होने की वजह से जैवमंडल में निवास करने वाले पृथ्वी के सभी प्रकार के जीव-जन्तु और मनुष्यों का जीवन संकटग्रस्त होता जा रहा है। जिसकी जानकारी अभी समाज और समाज के लोगों को नहीं महसूस हो पा रही है। प्रकृति रूपी तत्त्वों का दोहन करना कहाँ तक जायज है...? विचारणीय प्रश्न है!

21वीं सदी का युग देश में भौतिक सुख-सुविधाओं के विकास में सार्थक सिद्ध जरूर हो रहा है इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है लेकिन क्या यह मानवता और मानवीय संवेदना के स्तर पर भी सचेत और सहज हो रहा है या दिन-प्रतिदिन मानवीय सम्वेदना शून्य होती जा रही है। जिस व्यक्ति के वास्तविक जीवन में जितना अकेलापन है उसके जीवन में उतने ही ज्यादा ‘वर्चुअल दुनिया’ में दोस्त हैं। इतना ही नहीं उनको जानने वालों की संख्या भी उतनी ही बढ़ती जा रही है। मानवीय सम्वेदना अब ‘सिम्बोलिक भाषा’ के रूप में ही सभी के सामने पहुँच पा रही हैं। वास्तविक जीवन में किसी के पास समय ही नहीं है किसी के दुःख-सुख को सुनने या जानने के लिए। आज की युवा पीढ़ी ज्यादातर टेक्नोलॉजी यंत्रो के माध्यम से आभासी दुनिया की तरफ ज्यादा आकर्षित है। उदाहरण स्वरूप देखे तो ‘टेलीफ़ोन’

आधुनिकता की देन है जिसने इंसान का जीवन सहज बनाया। टेलीफोन के माध्यम से सूचनाओं का आदान-प्रदान आसानी से और बहुत कम समय में एक-दूसरे के पास पहुँचने लगा। एक परिवार या कहें एक गाँव में एक-दो टेलीफोन हुआ करते थे जिसको सभी प्रयोग किया करते थे उस समाज में यह तय होता था कि फोन आने पर घर का मुख्य सदस्य ही फोन उठाएगा। जिसकी वजह से सभी एक साथ बैठकर बात सुनते और आनन्द लेते रहे हैं। ‘मोबाइल क्रान्ति’ ने लोगों के बीच और ज्यादा सहजता प्रदान कर व्यक्तिगत बना दिया। अब सभी के पास अपना मोबाइल है जो जब चाहे जिससे चाहे बात कर सकता है। अब घर परिवार, समाज और समुदाय में एक-दूसरे से ज्यादा करीब होने के बावजूद रिश्तों की महत्ता कम हुई है। किसी के होने न होने या दूर होने का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। इंटरनेट, मोबॉईल, कंप्यूटर आदि के माध्यम से 24 घंटे किसी भी व्यक्ति से सामने आडियों-वीडियों कॉल पर आसानी से बात की जा सकती है। इंटरनेट आदि के माध्यम से समाज में व्यक्ति विशेष की दुनिया वास्तविक जगत में जितनी सिमटती जा रही है आभासी पटल पर उसके उतने ही जानने वाले हैं और उतना ही अपने जीवन में व्यस्त इंसान बनता जा रहा है। टेक्नोलॉजी के बिना आज का मानव अपाहिज है। उसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। टेक्नोलॉजी ने जीवन को सुविधा भोगी और सहज बनाया है तो दूसरी तरफ अकेला करके ‘वर्चुअल दुनिया’ में सभी को एक साथ जोड़ने का भी काम किया है।

वैश्वीकरण से पहले बाजार और समाज की भौतिक जगह तय हुआ करती थी। अपनी आवश्यकता के अनुसार लोग जाकर समान की खरीददारी करते और बेचते थे लेकिन 21वीं सदी में बाजार लोगों के घरों में प्रवेश कर चुका है। अब हमें बाजार जाने की जरूरत नहीं है बाजार स्वयं हमारे घर में प्रवेश कर हमें बताने लगा है की क्या हमारे लिए जरुरी है और क्या नहीं। घर, बाजार और क्रेता-विक्रेता के बीच की दूरियां समाप्त हो गई हैं। वर्तमान समाज बाजार और समाज के लोग ‘उपभोक्ता’ बने हुए हैं। ‘सूचना-प्रौद्योगिकी’ के माध्यम से बाजार लोगों के घरों में प्रवेश कर वैश्विक स्तर पर वस्तुओं सेवाएँ एवं जानकारियों का आदान-प्रदान सहज रूप में सभी तक पहुंचाने का काम कर रहा है। वैश्वीकरण के

विकास और पूरे विश्व पर अपना परचम लहराने का काम उसके मुख्य वाहक बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के द्वारा सम्भव हो पाया है। जिसके माध्यम से पूँजी और पूंजीवादी विचारधारा तीसरी दुनिया के देशों पर अपना आधिपत्य कायम करने में सफल हुई है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास को ध्यान में रखकर समाज में होने वाले बदलाव की गतिविधियों को समझा जा सकता है। जैसा कि आदिकाल से समाज अपने अलग-अलग रूपों में बढ़ता विकसित होता रहा है। भारतीय समाज अपने हर समय में वह चाहे आदिकाल हो या भक्तिकाल या रीतिकालीन समाज में घटित होने वाली सभी घटनाओं का दस्तावेज हमें उस समय में लिखे जा रहे साहित्यिक विधाओं के अलग-अलग रूपों हिन्दी भाषा या क्षेत्रीय बोलियों में मिल जाएँगे। समाज में घटित होने वाली आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सारी घटनाओं का पुट उस समय के साहित्य में लिपिबद्ध मिलता है। भारतीय समाज आधुनिकता के इस दौर में बहुत ही तीव्र गति से बदल रहा है। 21वीं सदी में बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी के आ जाने से भारतीय समाज और संस्कृति का पारंपरिक ढाचा कमजोर हुआ है। उसकी जगह पर आधुनिक सामाजिक उपभोक्तावादी समाज और संस्कृति का पूरे विश्व में ग्रामीण स्तर पर स्थानीयता को संक्रमित करके नये समाज की तरफ अग्रसर हो रहा है। जहाँ पर जीवन की शून्यता अमानवीय संवेदनहीनता और स्वार्थी विचारधारा का बोलबाला दिन-प्रतिदिन इंसान को मशीन बना रहा है।

आधुनिक युवा-पीढ़ी अपनी चीजों के प्रति जागरूक और समाज की रूढ़ियों से निकल अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। लेकिन इस बढ़ते 'संचार माध्यमों और टेक्नोलाजी' का भारी मात्रा में प्रयोग कहीं न कहीं हमारी युवा-पीढ़ी को शराब, सिगरेट और सेक्स की ओर भी आकर्षित कर रही है।

21वीं सदी के बच्चे अपनी सहज उम्र या दूसरे शब्दों में कहे तो अपनी सहजता और कोमल एहसास को बहुत ही कम उम्र में खोकर ज्यादा तीव्र गति से जिंदगी में शार्टकट सफलता प्राप्त करने के लिए लालाहित होते जा रहे हैं। जमीनी स्तर पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो महसूस करते हैं कि आपसी सम्बन्धों

रिश्तों और परिवार समाज के बीच जो अपनी सांस्कृतिक विरासत रही है उसका पतन हो रहा है और वर्तमान समाज आभासी दुनिया के आकर्षण में उपभोक्तावादी संस्कृति का अनुयायी बनता जा रहा है। सोशल मीडिया के प्रसार-प्रचार के माध्यम से चीजें सहज और स्पष्ट हुई हैं लेकिन विज्ञापन के क्षेत्र में इसका अत्याधिक प्रयोग स्त्री जीवन और उनकी सहजता को मात्र वस्तु बनाकर रख दिया है। आज स्त्री हो या समाज का कोई भी मुद्दा हो उसे केवल फायदा-नुकासान देखकर ही तौला जा रहा है।

विज्ञान की प्रगति और उसके माध्यम से हो रहे आविष्कार 21 सदी की सबसे बड़ी और निखरती हुई अर्थव्यवस्था का प्रतीक है। ‘रह गई दिशाएं इसी पार’ उपन्यास में संजीव के द्वारा वर्णित समाज संवेदनशून्य तथा क्षणिक सुख की प्राप्ति में मानवीय रिश्तों की बहुत ही सहजता से बलि देने से नहीं चूक रहा है। विज्ञान की सम्भावना ने इंसान को जितना सुखदायी जीवन मुहैया कराया है, उससे कहीं ज्यादा पर्यावरणीय सुन्दता और मानवीय रिश्तों को खोखला कर उन्हें संवेदनशून्य भी बना रहा है। उपन्यास में विज्ञान की प्रगति इंसानी बच्चा उत्पन्न करना ‘टेस्ट ट्यूब बेबी’ की सफलता का प्रश्न है। इसके माध्यम से विज्ञान ने समाज में वर्षों से चली आ रही असमर्थता को दूर करने का काम किया है। विज्ञान की प्रगति समाज में बहुत सी सामाजिक रूढ़ियों का शिकार होने वाली स्त्रियों के सामने एक विकल्प के रूप में उपलब्ध हुआ है। समाज में यह एक तरह का बहुत बड़ा बदलाव है, जो टेक्नोलॉजी के माध्यम से सम्भव हो सका है।

समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयाँ जैसे ऊँच-नीच, जाति-पाति, भेद-भाव, अमीरी-गरीबी आदि जितने भी तरह की विषमता समाज में व्याप्त हैं उसका कहीं न कहीं खंडन आधुनिक समाज की विचारधारा तथा उसके प्रति जागरूकता ने किया है। समाज का एक तबका जो तमाम तरह के शोषण को भोगता हुआ भी चुप रहा है। शोषण व्यवस्था को अपनी नियति समझकर उसे पीढ़ी दर पीढ़ी झेलता रहा, बिना किसी सवाल और जवाब के। समाज में व्याप्त ऐसी शोषणवादी व्यवस्था कहीं न कहीं कमजोर हुई है। ‘गाँव भीतर गाँव’ उपन्यास में उपस्थित समाज कहीं न कहीं हमें हमारे पहले के समाज और संस्कृति से वाकिफ करवाता हुआ समाज में चली आ रही रूढ़िवादी मान्यताओं और व्यवस्था के प्रति नई पीढ़ी

का प्रतिनिधित्व करने वाली 'रौशनी और रागिनी' जो की अछूत समाज से सम्बन्ध रखती हैं, उनका अपने समाज के प्रति जागरूकता, शिक्षा एवं ज्ञान मध्यवर्गीय समाज को जागरूकता प्रदान कर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी करती हैं। स्त्री शिक्षा और जागरूकता तथा समाज के हित में उनका योगदान वर्तमान समाज की देन हैं।

जहाँ 21वीं सदी से पहले स्त्री समाज अर्थात 'सुमन राजे' की भाषा में 'आधा इतिहास' कही जाने वाली स्त्री समाज खुलकर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती है। समाज में यह बदलाव वैश्वीकृत समाज की जागरूकता और वैश्विक स्तर पर सूचनाओं और प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही सम्भव हो पाया है।

उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में पर्यावरणीय क्षति के साथ मानवीय संवेदना को भी विषय बनाया गया है। वैश्वीकृत भारत में विमर्शों की बात करें तो वह निम्न मध्यवर्ग दलित समाज तथा स्त्री समाज अस्मिता का प्रश्न उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता तथा एकनिष्ठता का सूचक है। आदिवासी समाज भी अपनी पहचान को धूमिल होने से बचाने के लिए संघर्षशील है। जल, जंगल, जमीन की लड़ाई में वे अपने समाज और संस्कृति को बचाने की लड़ाई लग रहे हैं । आदिवासियों की जमीन से यूरेनियम जैसे जहरीली खनिजों को पृथ्वी से बाहर निकाल सम्पूर्ण मानव और प्रकृति जगत को जहरीला बनाया जा रहा है। मानव स्वयं की स्वार्थी प्रवृत्ति के लिए वैज्ञानिक आविष्कार कर रहा है। अर्थात खुद के पैर में खुद ही कुल्हाड़ी मारने का काम किया जा रहा है। स्वार्थ और लालच की आड़ में अन्धा मनुष्य प्राकृतिक वातावरण का नाश करता हुआ आभासी पटल में सांस लेने को उत्सुक है। बिना आभासी दुनिया के उसका जीवन अब सहज नहीं रहा। कहते हैं हमारा शरीर क्षित, जल, पावक, गगन और समीर इन्हीं पाँचों तत्वों से मिलकर निर्मित हुआ है। प्रकृति रूपी ये पाँचों तत्व दिन-प्रतिदिन प्रदूषित हो अपनी सहजता खोते जा रहे हैं, जिससे मनुष्य शरीर भी तमाम तरह की असहजता एवं बीमारियों से ग्रसित हो, क्षीण होता जा रहा है। जिसके माध्यम से सम्पूर्ण समाज अपंगता की तरफ बढ़ता जा रहा है। समाज में संक्रमणीयकरण के कारण एक उच्च प्रकार के जीन का जन्म तो सम्भव है जिससे काफी मात्रा में किसी भी चीज को चाहे वह फसल हो या मनुष्य अपने स्वार्थ के अनुसार उनके पैदावार की मात्रा को बढ़ाया

जा सकता है। लेकिन उनकी उर्वरक शक्ति को उनकी सहजता हो दूसरे शब्दों में कहे तो उनमें स्वत: प्रजजन शक्ति को उत्पन्न नहीं किया जा सकता। मनुष्य के जीन के साथ होने वाले प्रयोग भी इसी तरह के हैं जिसकी वजह से उनके अंदर की मानवीय सम्वेदना की शून्यता को देखा जा सकता है।

भारतीय समाज और परिवार की एक अनोखी परम्परा रही है जो पीढ़ी दर पीढ़ी उसी रूप में सुचारू रूप से चली आ रही है। भारतीय समाज और परिवार समुदाय के कुछ नियम क़ानून होते हैं। शिशु के जन्म से पहले से ही उसके परिवार में समाज के द्वारा बनाए गये संस्कार शुरू हो जाते हैं। बहुत ही व्यवस्थित घर-परिवार और रिश्तों की एक मजबूत बागडोर होती है जिसको पकड़कर जीवन की भव-धारा की नैया को पार करने की मान्यताएं रही हैं। लेकिन वर्तमान आधुनिक समाज और मान्यताएं काफी हद तक कमजोर हुई हैं और दूसरे शब्दों में कहे तो टूट रही है। समाज में अगर किसी वर्ग का दोहरा शोषण हुआ है तो वह है स्त्रियाँ। कहते हैं कि स्त्रियों की कोई जाति नहीं होता इसीलिए शायद समाज के हर वर्ग की स्त्रियाँ बहुत पहले से अपने ही घर में अपने और बाहरी समाज और लोगों के शोषण का शिकार होती रही हैं। लेकिन आधुनिक महिलाऐं वह चाहे किसी भी वर्ग जाति समूह की क्यों न हो। अपने अधिकारों के प्रति सचेत और जागरुक हुई हैं। शरद सिंह का उपन्यास ‘कस्बाई सिमोन’ में नायक और नायिका का बिना शादी किए साथ रहने का फैसला कहाँ तक जायज है? यह कह पाना कठिन है क्योंकि हर समय और समाज का अपना एक नजरिया होता है जिसके कुछ नियम क़ानून तथा कायदे होते हैं। ‘कस्बाई सिमोन’ की नायिका पश्चिमी स्त्री स्वतंत्र विचारधारा से प्रभावित होती है। वह समाज में व्याप्त पितृसत्तामक व्यवस्था को नकारती है। किसी भी सामाजिक मूल्यों को नहीं मानती वह अपने अनुसार जीवनयापन करने में विश्वास रखती है। वह वर्तमान समाज को चुनौती देते हुए कहती है कि ‘समाज में आप शादी के बाद अगर कुछ करते हो तो वह जायज है लेकिन बिना शादी के ‘स्त्री-पुरुष’ का साथ रहना जायज नहीं है। क्योंकि वह सामाजिक नियमों के विरुद्ध है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द में भी गोदान के माध्यम सन 1936 में ही भविष्यवाणी कर दी थी गोदान उपन्यास के पात्र ‘मालती और मेहता’ के माध्यम से कि आने वाले समय में पढ़ी-लिखी लडकियाँ-लड़के जब किसी पर आश्रित नहीं रहेंगे, अपना

जीवन निर्वाह स्वयं कर पाने के सक्षम होंगे, तो वे किसी भी तरह के बन्धन में बधकर रहना स्वीकार नहीं करेंगे। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास गोदान के माध्यम से समाज में जिस रिश्तों की झलक दिखलायी थी उसका यथार्थ रूप हमें बड़े-बड़े शहरों में देखने को मिल जायेगा। 21वीं सदी में यह आम बात होती जा रही है। समाज में होने वाला यह बदलाव स्त्री और पुरुष के बीच समानता का भाव और एक-दूसरे की महत्ता का सूचक हो सकता है। समाज में वह क्रियाकलाप जो पहले के समाज में छुपाने की चीज रही है, वहीं आज वैश्वीकृत दौर में स्वीकारोक्ति रूप में सामने आ रहे हैं।

मशीनीकरण युग में मानवीय श्रम का मूल्य कम होता जा रहा है क्योंकि उसकी जगह मशीनों ने ले लिया है। जिसकी वजह से समाज में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। एक जो कम पढ़ा-लिखा और अंग्रेजी न जानने वाला है उसके लिए रोजगार पाना कम होता जा रहा है क्योंकि घर के छोटे-मोटे काम के लिए ऐसे वर्ग का एक समय में बहुत महत्त्व था इनके अभाव में बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है लेकिन अब वह स्थिति नहीं रही। लोगों के घरों में मशीनों के आ जाने से वाल्टर भोंगरा का उपन्यास –‘लौटते हुए’ में आदिवासी समाज की स्त्री पात्र मार्था और सलोमी आदि आयागिरी का काम करने वाली आधुनिक मानसिकता और शहरी लोगों की गन्दी हवस का शिकार बनने लगती हैं। अब ‘आया गिरी’ का काम ‘पार्टटाइम’ के हिसाब से हो गया है वह भी किसी को जरूरत पड़ी तो। महंगाई की मार इतनी है कि अब ‘आयागिरी’ से प्राप्त धन से खर्च चलाना ही मुश्किल हो गया है घर के लिए क्या बचाएँगे। अर्थात ‘संचार क्रान्ति और टेक्नोलाजो’ के आ जाने से आपसी रिश्तों के बीच सहजता कम हुई है और लोग एकाकी और स्वार्थी तथा मशीनीकृत जीवनयापन की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। मानवीय सम्वेदनाएँ और सहज रिश्तों की अहमित परिवार और समाज आदि सभी मानवीय रिश्तें प्रभावित हुए हैं जिसकी वजह से परिवार समाज और आपसी रिश्तों के बीच संवेदना की कमी होती जा रही है।

वैश्वीकरण के दौर में वर्तमान मनुष्य उपभोक्ता तथा समाज बाजार का रूप धारण कर चुका है। यहाँ पर संसार की आन्तरिक और भौतिक सभी तरह की चीजों का मोल-भाव सम्भव है। पैसे से अपनी आवश्यकतानुसार सब कुछ ख़रीदा और बेचा जा सकता है। कहते थे की शालीनता और विनम्रवता

अर्थात मानवीय संवेदनाएँ बिना मोल बिकती हैं, उससे सब कुछ ख़रीदा जा सकता है। अब वह भी बिकाऊं वस्तु मात्र होती जा रही हैं। ममता कालिया का उपन्यास ‘दौड़’ तथा अलका सरावगी का उपन्यास ‘एक ब्रेक के बाद’ में इसका बहुत ही सार्थक उदाहरण पेश किया गया है। विज्ञापन की दुनिया में इंसान और इंसानियत का ‘मोल-भाव’ बाजार की माँग के आधार पर तय होने लगा है। वर्तमान समाज वैश्वीकृत दौर में शिक्षा का बाजार फैलाता जा रहा है। सभी लोग उस बाजार की आंधी में तबाह हो रहे हैं। उपन्यास ‘रेहन पर रग्घू’ जाने अनजाने समाज के सभी लोग पैसे की दुनिया का निर्माण बहुत ही रूचि के साथ कर रहे हैं, लेकिन मानवीय सम्वेदना और शिक्षा के वास्तविक ज्ञान को बहुत पीछे छोड़ते जा रहे हैं। वर्तमान समाज की मांग और आवश्यकता ने शिक्षा का बाजारीकरण कर उसको मात्र व्यवसायी बना दिया है। जिसकी चपेट में पूरा मानव समाज अपने आपको मशीन बनाने से नहीं चूक रहा है। पूरी सिद्दत के साथ वास्तविकता और मानवता को भूलता हुआ आभासी पटल की बनावटी जीवन को ही वास्तविक मानकर तीव्र गति से आगे बढ़ता हुआ अपने अस्तित्व का भान ही नहीं कर पा रहा है। मशीन जैसे यंत्रों की निर्मित करने वाला मनुष्य स्वयं मशीन बनता जा रहा है। आभासी दुनिया का आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है अगर ऐसे ही होता रहा तो वास्तविकता मिट जायेगी और हम मशीन के पूरी तरह गुलाम हो जाएगें। हमारी सांसे मशीन के ऊपर निर्भर करेंगी। हम शुद्ध हवा पानी के अधिकारी तभी है जब हमारे पास मशीन हो। वर्ना प्रकृति प्रदत्त तत्व जो हमारे लिए रक्षक तत्व रहे हैं वहीँ हमारी गलतियों की वजह से हमारे लिए जान लेवा सिद्ध हो होंगे।

सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से विश्व पटल पर सूचनाओं का जंजाल फैलता जा रहा है। ‘इंटरनेट और मोबाइल’ के माध्यम से वैश्विक स्तर पर सूचनाओं का आदान-प्रदान सहज रूप से हो रहा है। अब कोई भी जानकारी किसी एक वर्ग विशेष तक सीमित न रहकर समाज के सभी वर्ग जाति समुदाय के लोगों तक इंटरनेट के माध्यम से सहज हो बिना किसी रोक-टोक के पहुँच रही है। प्रदीप सौरभ का उपन्यास ‘मुन्नी मोबाइल’ में हम देखते हैं कि एक साधारण गाँव से आयी स्त्री मुन्नी ‘मोबाइल और कंप्यूटर’ के माध्यम से देश-विदेश में हो रहे घटनाक्रम की जानकारी रखने लगती है। इन्हीं ‘सूचना प्रौद्योगिकी’ यंत्रों

के माध्यम से वह लगातार विकास पथ पर बढ़ती जाती है। लेकिन धीरे-धीरे विकसित होती हुई 'मुन्नी' ज्यादा से ज्यादा पैसे कमाने की लालची होती जाती है । उसे इस बात का भी गर्व होता है कि वह अनपढ़ होते हुए भी पढ़े-लिखे लोगों के बराबर कमा लेती है। धीरे-धीरे वह अपने विकास के सफर में उत्थान से होती हुई पतन की ओर अग्रसर होती रहती है जिसका उसे भान नहीं हो पाता अंत में उसे उसी लालच की वजह से अपनी जान गवांनी पड़ जाती है। यह बात यहीं तक ही समाप्त नहीं हो जाती बल्कि उसकी बेटी उसकी आदतों का शिकार हो चुकी होती है और चितकबरी कॉल गर्ल के नाम से विश्व स्तर पर प्रसिद्ध हो जाती है। माँ मुन्नी मोबाइल द्वारा शुरू किया गया कारोबार उसी रूप में आगे बढ़ता है बस अब उसका स्वरूप बदलकर विकसित हो, वैश्विक हो गया है। बाजार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आवागमन से सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक समाज की सभी गतिविधियों पर प्रभाव पर रहा है, जिसकी वजह से मानवीय व्यवहार में भी काफी दूरियाँ बढ़ती जा रही है। अगर ऐसे ही तीव्र गति से परिवर्तन होते रहे तो आने वाला समय 'पोस्ट ग्लोबलाइजेशन' में पहुंचकर मशीनीकृत समाज में परिवर्तित हो जाएगा जहाँ पर मानवीय संवेदना तार-तार हो जायेगी। समाज में मनुष्य तो रह जायेगे लेकिन उनके अन्दर की संवेदना सूख गई होगी। इतना ही नहीं टेक्नोलॉजी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करती हुई 'रोबोट समाज' की निर्मित कर चुकी होगी। जिसमें वास्तविक मनुष्य की खोज कर पाना मनुष्य का मनुष्य के लिए ही असम्भव हो जाएगा।

भाषा के स्तर पर देखे तो भाषा में शुद्धतावाद का खात्मा हुआ है। सभी भाषाओं के शब्द हिन्दी भाषा में शामिल हो हिन्दी भाषा को समृद्ध कर रहे हैं। वैश्वीकृत समाज में हिन्दी भाषा का विकास इसलिए भी तीव्र हो रहा है क्योंकि 'बाजार और सूचना प्रौद्योगिकी' के बढ़ने और इसके अत्याधिक प्रयोग से हिन्दी भाषा के सम्प्रेषण का क्षेत्र विकसित हुआ है। वर्तमान समय में हिन्दी मात्र एक भाषा के रूप में न होकर एक माध्यम के रूप में संवाद स्थापित कर रही है। वैश्वीकृत समाज में हिन्दी भाषा की आवश्कता ही हिन्दी भाषा के विकास में सहायक सिद्ध हो रहा है। भाषा की सहजता और संप्रेषणीयता किसी भाषा की जीवन्तता और उसकी ताजगी को हमेशा बनाए रखती है। हिन्दी भाषा सम्प्रेषण का क्षेत्र विकसित

हुआ है इसलिए भाषा का विकास वैश्विक स्तर पर सम्भव हो पाया है। वैश्वीकृत दौर में बाजारीकृत उपभोक्तावादी संस्कृति और सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से हिन्दी साहित्य और भाषा का भविष्य उज्ज्वल है। टेक्नोलॉजी के प्रयोग ने हिन्दी भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। कंप्यूटर के माध्यम से हिन्दी भाषा और साहित्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच रही है। वैश्वीकृत दौर में हिन्दी भाषा ही नहीं बल्कि पूरे विश्व स्तर पर हिन्दी भाषा की अन्य बोलियाँ भी विकसित हो रही हैं। हिन्दी भाषा अपनी समाहार शक्ति के कारण अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषा तथा बोलियों से शब्द ग्रहण करती हुई विश्व स्तर पर अपना परचम लहरा रही है। एक समय था जब हिन्दी साहित्य किताबों और पुस्तकालयों तक ही सीमित थी हिन्दी भाषा साहित्य की जानकारी एवं पत्र-पत्रिकाएँ कुछ ही लोगों तक ही पहुँच पा रही थी। लेकिन वैश्वीकृत भारत में सूचना प्रौद्योगिकी और कंप्यूटर, इंटरनेट आदि टेक्नोलॉजी के माध्यम से हिन्दी साहित्य और भाषा का ज्ञान विश्व स्तर पर सभी के लिए आसानी से उपलब्ध करवाया जा रहा है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के द्वारा हिन्दी साहित्य और भाषा को विश्व स्तर पर सभी लोगों तक पहुँचाने के लिए ‘एम.एच.आर.डी.’ ‘यू. जी. सी.’ के द्वारा ‘ई.पी. जी. पाठशाला,’ मूक ऑनलाइन पाठ्यक्रम के माध्यम से हिन्दी भाषा और साहित्य से सम्बंधित सारी जानकारी इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त करायी जा रही है। हिन्दी भाषा हमारे देश में एक विषय के रूप में ही नहीं बल्कि यह हमारे पढ़ाई-लिखाई, रहन-सहन, भेष-भूषा अर्थात हमारी पहचान है हिन्दी। हिन्दी भाषा हमारे संवाद का माध्यम है जिस भाषा में हमारा विचार विनिमय सहज रूप से सम्भव हुआ है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके माध्यम से एक स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव है। हमारे भारतीय समाज में शिक्षा का बहुत ही व्यावहारिक महत्त्व रहा है। समाज में प्राचीन काल से शिक्षा ज्ञान प्रदान करने हेतु दी जाती रही है। शिक्षा सभ्य एवं स्वथ्य समाज के लिए नैतिक ज्ञान आदि के लिए दी जाती रही है लेकिन वैश्वीकृत दौर में शिक्षा का रूप बहुत बदल गया है। शिक्षा ज्ञान व्यवहार से काफी अलग ‘कैरियर ओरिएंटेड’ अर्थात व्यावसायिक होती जा रही है। वर्तमान दुनिया में शिक्षा मतलब नौकरी प्राप्त करना है। अगर आपके पढ़ने के बाद नौकरी मिली तो समझों आप शिक्षित हैं। अगर किन्ही कारणों से आपको नौकरी नहीं मिल

पायी तो आप बेरोजगार होने के साथ-साथ समाज की नज़रों में व्यर्थ और अशिक्षित घोषित कर दिए जाओगे। वर्तमान दुनिया में शिक्षा का मतलब नौकरी से है बिना नौकरी कोई किसी पढ़े लिखा का कोई औचित्य नहीं रहा।

वैश्वीकृत समाज का समग्र मूल्यांकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि बदलते समय और समाज की गतिशीलता को रोका नहीं जा सकता है लेकिन वैश्वीकरण के प्रभाव की लहर को मोड़ा जा सकता है। वैश्वीकरण के दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था विकास की सूचक है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है। वैश्वीकरण ने समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता से परदा उठाया है। समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जाति-पाति, छूत-अछूत अमीरी-गरीबी, स्त्री-पुरुष, दलित समाज सभी को एक मंच मुहैया कराने तथा आपसी समरसता स्थापित करने का काम किया है। समाज में व्याप्त तमाम तरह की विसंगतियों को दूरकर हासिये के समाज को नया जीवन देने का भी काम किया है। वैश्वीकरण के कुछ अवगुणों को छोड़ दिया जाय तो विश्व स्तर पर सभी को एकता के सूत्र में बाँधने में सार्थक सिद्ध हो रहा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची (Bibliography)

आधार–ग्रन्थ (Primary Source)

1. अखिलेश, निर्वासन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2014)

2. कालिया, ममता. दौड़
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2000)

3. ‘तरूण’, वाल्टर भेंगरा. लौटते हुए
सत्य भारती प्रकाशन,रांची झारखण्ड (2005)

4. पटेल, सत्यनारायण. गाँव भीतर गाँव
आधार प्रकाशन,पंचकूला (2015)

5. माझी, महुआ. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2012)

6. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता
ज्ञानपीठ प्रकाशन,नई दिल्ली(2010)

7. सरावगी, अलका. एक ब्रेक के बाद
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2008)

8. सिंह शरद, कस्बाई सिमोन

सामयिक प्रकाशन दिल्ली (2010)

9. सिंह, काशीनाथ. काशी का अस्सी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2006)

10.सिंह, काशीनाथ. रेहन पर रग्घू
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2008)

11.सिंह, मनोज. हॉस्टल के पन्नों से
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2011)

12.सोनकर, रूपनारायण. सूअरदान
अनिरुद्ध बुक प्रकाशन, दिल्ली (2010)

13.सौरभ, प्रदीप. मुन्नी मोबाइल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2009)

14.संजीव, रह गईं दिशाएँ इसी पार
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2001)

सहायक ग्रन्थ सूची: (Secondary Source)

1. अग्रवाल, रोहिणी. समकालीन कथा साहित्य: सरहदें और सरोकार, आधार प्रकाशन,पंचकूला

2. अरविन्द जैन, औरत होने की सजा
   राजकमल प्रकाशन-दिल्ली-110002

3. एम.एन.श्री निवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन
   राजकमल प्रकाशन-110032

4. काबरा कमल नयन, वैश्वीकरण (विचार, नीतियाँ और विकल्प)
   प्रकाशन संस्थान,नई दिल्ली-110002

5. काबरा, कमल नयन. वैश्वीकरण के भँवर में भारत
   प्रकाशन संस्थान,नई दिल्ली,सं.2008

6. कालिया ममता सपनों की होम डिलीवरी
   राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-110002

7. कुमार, वीरेन्द्र. हिन्दी उपन्यासों में मार्क्सवादी चेतना
संजय प्रकाशन, नई दिल्ली-1994

8. खेतान, प्रभा. वैश्वीकरण ब्रांड, संस्कृति और राष्ट्र,
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

9. खेतान, प्रभा. बाज़ार के बीच: बाजार के खिलाफ,
वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली-2004

10.गुप्ता आशा उच्चतर शिक्षा के बदलते आयाम,
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निर्देशालय
2011

11.गुप्ता, रमणिका. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी,
वाणी प्रकाशन,दिल्ली, सं.2002

12.चतुर्वेदी, जगदीश्वर. नंदीग्राम मिडिया और भूमण्डलीकरण,
आनामिका पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
प्रा.लि.दिल्ली, सं.2008

13.चतुर्वेदी, जगदीश्वर सूचना समाज,
अनामिका पब्लिकेशर्स एवं डिस्ट्री

ब्यूतर्स (प्रा)लि.नई दिल्ली -110002

14.चन्द्र, विपिन. समकालीन भारत,
अनामिका पब्लिशर्स एंड
डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन,2011

15.चन्द्र, विपिन आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्री ब्यूटर्स,
दिल्ली -2001

16.जलील, वी. के.अब्दुल, समकालीन हिन्दी उपन्यास
(समयऔर सम्वेदना),
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

17.जोशी, रामशरण. (सम्पादक) वैश्वीकरण के दौर में, समयांतर
प्रकाशन, दिल्ली, 2006

18.जोशी, ज्योतिष. उपन्यास की समकालीनता
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-2007

19.जोशी. ज्योतिष, संस्कृति विचार,

	मेघा बुक्स-दिल्ली-32,
20.जोशी, रामशरण.	मीडिया और विमर्श सामयिक प्रकाशन. दिल्ली-110002
21.जैन, महेन्द्र राजा.	नामवर विचार कोश नई किताब दिल्ली-110032
22.जैन, अरविन्द्र.	औरत अस्तित्व और अस्मिता राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002
23.जैन महेन्द्र राजा	नामवर विचार कोश प्रकाशन नई किताब शाहदरा दिल्ली-110032
24.ठाकुर स्नेह,	आज का समाज स्टार पब्लिकेशन प्रा.लि. दिल्ली-110002
25.डक, डॉ टी.एम.	सामाजिक चिन्तन (भाग दो) हरियाणा साहित्यप्रकाशन अकादमी,चंडीगढ़
26.डबराल मंगलेश	प्रतिनिधि कविताएँ
27.डॉ. नगेन्द्र	साहित्य का समाज शास्त्र

नेशनल पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली

28.मोहन नरेन्द्र, आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ,
आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली -1973

29.डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाई अस्मिता और हिन्दी,
वाणी प्रकाशन, दिल्ली-32
प्रथम संस्करण-1992

30.डॉ.कन्हैया लाल नन्दन(सं.) चेतना का आत्मसंघर्ष (हिन्दी उत्सव ग्रन्थ
2007)भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद
नई दिल्ली-110002

31.डॉ बैजनाथ सिंहल उत्तर आधुनिकता स्वरूप और आयाम
हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला

32.तिवारी, डॉ रामचन्द्र. हिन्दी का गद्य साहित्य
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-2014

33.दत्तात्रय मुरुमकर, भूमण्डलीकरण और हिन्दी कहानी

पुस्तक प्रतिष्ठान, नई दिल्ली-110002

34.दुबे, अभय कुमार. (सम्पादक) भारत का भूमण्डलीकरण,
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-110002

35.दोषी, एस.एल. आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव
समाजशास्त्रीय सिद्धांत,
रावत पब्लिकेशन, जयपुर -2005

36.पालीवाल कृष्णदत्त, हिन्दी आलोचना समकालीन
परिदृश्य,सामयिक बुक्स
नई दिल्ली-110002

37.पालीवाल, सूरज, हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और
प्रतिरोध,
शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली-110032

38.पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका
हरियाणा साहित्य अकादमी,पंचकूला

39.पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि,
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2005

40.पाठक, अभिजात, आधुनिकता, वैश्वीकरण और अस्मिता
आकार बुक, दिल्ली-110091

41.पचौरी, सुधीश. उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श
वाणी प्रकाशन, दिल्ली-सं.2008

42.पंत,पुष्पेश. वैश्वीकरण (प्रकाशन विभाग सूचना और
प्रसारण), मंत्रालय भारत सरकार,सं-2009

43.पाण्डेय, अशोक कुमार. शोषण के अभयारण्य (वैश्वीकरण के
दुष्प्रभाव और विकल्प का सवाल)
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली-32

44.पंडित, सुरेश. वैश्वीकरण के दौर में समाज और संस्कृति
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली-110032

45.बिहारी, बजरंग. दलित साहित्य की अंतर्यात्रा
नवारूण प्रकाशन, गाज़ियाबाद,2015

46. बी.के. नागला भारतीय समाज शास्त्रीय चिन्तन

रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली110002

47.मदान, इन्द्रनाथ. आलोचना की धारणाएँ,
हरियाणा साहित्य अकादमी,चंडीगढ़

48.मदान, इन्द्रनाथ. आधुनिकता हिन्दी उपन्यास
राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-110002

49.मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास,
लोक भारती, प्रकाशन, इलाहाबाद-1996

50.मिश्र, गिरीश. बाज़ार और समाज, स्वराज प्रकाशन
नई-दिल्ली-110002

51.मिश्र शिवकुमार, साहित्य और सामाजिक संदर्भ
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली-110002

52.यादव, राजेन्द्र और वर्मा, अर्चना. अतीत होती सदी और स्त्री का
भविष्य,राजकमल प्रकाशन,

नई दिल्ली-110002

53.यादव राजेन्द्र
उपन्यास स्वरूप और संवेदना
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-1997

54.राजिमवाले अनिल,
वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति और उत्तर-
औद्योगिक समाज,
हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय
दिल्ली-विश्वविद्यालय

55.राय, गोपाल.
हिन्दी उपन्यास का इतिहास,
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2005

56.विश्व इतिहास- स्पेक्ट्रम-
प्रकाशन-स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि.

57.शुक्ला, उमा.
भारतीय नारी: अस्मिता की पहचान
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद -1994

58.शर्मा,श्री राम.(सं.)
समकालीनहिन्दीसाहित्य:विविध विमर्श
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

59.श्रीवास्तव, परमानन्द.	उपन्यास का पुनर्जन्म, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-1995
60. श्रोत्रिय. प्रभाकर,	वैश्वीकरण के दौर में, चुने हुए निबंध एन.बी.टी., 2013
61.सिंह कवल जीत,	वैश्वीकरण? वैश्वीकरण समर्थन बौद्धिक छल का खुलासा (अनुवाद-जीतेन्द्र गुप्ता) संवाद प्रकाशन,मुंबई:मेरठ-401208
62.सिंह नामवर (सं.)	आधुनिक हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
63.सिंघल, बैजनाथ.	उत्तर आधुनिकता स्वरूप और आयाम हरियाणा पंचकूला प्रकाशन
64.सिंह, अमित कुमार.	वैश्वीकरण और भारत (परिदृश्य और विकल्प), सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2009
65.सिन्हा, सच्चिदानंद.	वैश्वीकरण की चुनौतियाँ

	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002
66.सिंह, प्रभाकर.	उपन्यास: मूल्यांकन के नये आयाम प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, वाराणसी-2014
67.सिंह, अमित कुमार.	वैश्वीकरण और भारत-परिदृश्य और विकल्प सामयिक प्रकाशन. दिल्ली, 2009
68.सिंह, बच्चन.	आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास नई दिल्ली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
69.सिंह, बच्चन	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-110002
70.सिंह, प्रभाकर.	उपन्यास: मूल्यांकन के नये आयाम प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, वाराणसी, 2014
71.संपादक –आर अनुराधा,	न्यू मिडिया-इन्टरनेट की भाषा चुनौतियाँ और संभावनाएं ,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2012

72.शर्मा कुमुद	आधी दुनिया का सच सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली -110002
73.शर्मा डॉ. कुसुम	साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास विविध प्रयोग श्याम प्रकाशन जयपुर संस्करण-2008
74.शाही, विनोद,	समय के बीज आख्यान (ग्रामीण जीवन के कालजयी उपन्यास) आधार प्रकाशन,पंचकुला -2015
75.संपादक-डॉ कन्हैयालाल नंदन,	चेतना का आत्म संघर्ष 21वीं सदी हिन्दी उत्सव ग्रन्थ
76. सम्पादक-राजकिशोर	स्त्री,परम्परा और आधुनिकता वाणी प्रकाशन दिल्ली-110002
77.संपादक, वर्मा कल्पना,	भूमण्डलीकरण और हिन्दी, लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद
78.सम्पादक-सिंह ओमप्रकाश/शीतांशु,	उपन्यास का वर्तमान

	प्रकाशन संस्थान, दिल्ली-110002
79.संपादक-विमलेश कान्ति वर्मा,	भाषा साहित्य और संस्कृति मालतीओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड नई- दिल्ली
80.महात्मा गाँधी अंतर्राष्टीय विद्यालय वर्धा	आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मलेन (आलेख और प्रतिवेदन)

अंग्रेजी के लेख:-

1. Appadurai, A. 1997. *Modernity at large: cultural dimension of globalisation,* London: public world.
2. Anthony Scaperlanda.2002. *Global Society in 2052,* published by Taylor & Francis, Ltd.
3. Andre Beteille.1992. *Caste and Family: In Representation of Indian Society*, published by-royal Anthropological institute of Great Britain and Ireland.
4. George Martine.2005.*Population/Development/Environment trends in a Globalized context: challenges for the 21st century*, published by Universita degli studi di roma “La Sapienza”
5. Patricia H. Werhane.2007. *Women Leaders in a Globalized world,*published by Springer
6. Raghuvir Sinha.1974. *Social Change in Contemporary Hindi literature,* published by sahitya Akademi.
7. Y.Gurappa Naidu.2006.*Globalisation and its Impact on Indian society*, published by Indian political science association.

पत्र-पत्रिकाएँ :

1. आलोचना
2. नया ज्ञानोदय
3. तद्भव
4. हंस
5. जनसत्ता- 23,24Oct-2015, 3,17, 20, 29 Nov-2015, 3,4,12Dec-2015
6. संवाद पथ –अंक जनवरी-मार्च-2017
7. नया ज्ञानोदय सितंबर-2015
8. गवेषणा पत्रिका अंक-106/2016
9. आजकल पत्रिका अगस्त-2018
10. दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण)
11. The Hindu
12. Indian Express